सितारों के खेल

[उपन्यास]

सितारों के खेल—एक विवेचना

[ओंकार शरद्]

अश्क जी हिन्दी के माने हुए नाटककारों में गिने जाते हैं। साहित्य में अश्क सर्व-प्रथम कवि के रूप में आये, फिर कहानी लेखक, फिर उपन्यासकार और फिर नाटककार के रूप में। कहने का तात्पर्य यह कि अश्क की प्रतिभा ने साहित्य का कोई पक्ष नहीं छोड़ा। बीच में उपन्यास और कहानियों की ओर उनकी रुचि अधिक थी, परन्तु अब कविता और नाटक की ओर अधिक झुकाव है और कहानियाँ कभी-कभी ही दिखायी देती हैं। परन्तु इसके ये माने नहीं कि अश्क के साहित्य का कहानी या उपन्यास-पक्ष दब गया है। इधर वे एक और बड़ा उपन्यास 'गर्म राख' के नाम से लिख रहे हैं। उसका कुछ भाग 'मनोहर कहानियाँ' में धारावाहिक रूप से छपा भी है और उसे देखकर लगता है कि 'गिरती दीवारें' से 'गर्म राख' कम महत्वपूर्ण न होगा। 'गर्म राख' के बाद वे फिर कविता लिखेंगे, कहानी व नाटक? कुछ नहीं कहा जा सकता! कलाकार की धुन है—कभी यह, कभी वह!

कहानियाँ तो अश्क जी ने बहुत काफ़ी और बहुत अच्छी लिखी हैं, परन्तु उपन्यास उनके (गर्म राख को यदि अभी न गिनें तो) केवल दो हैं। पहला 'सितारों के खेल', दूसरा 'गिरती दीवारें'। दोनों उपन्यासों के रचना-काल में दस वर्ष का व्यवधान है। दोनों ही उपन्यास एक सीधी लकीर के दो छोर हैं। एक को पढ़कर दूसरे का सही-सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। विषय-वस्तु और आकार-प्रकार में भी दोनों दो किनारे ही कहे जायेंगे।

सचाई तो यह है कि अश्क जी का 'सितारों के खेल' जब पहले पहल छपा तो सितारों की टिमटिमाहट की भाँति केवल छिटपुट प्रकाश का ही सृजन कर पाया, क्योंकि उस के बाद उन्होंने कहानियों और फिर नाटकों का ऐसा ताँता बाँधा कि 'सितारों के खेल' एक दम बैक ग्राउंड में पड़ गया। वर्षों बाद सहसा 'गिरती दीवारें' प्रकाशित हुआ और अपने साथ वह वाद-विवाद का एक तूफ़ान सा लेता आया जो आज पाँच-छै वर्ष बाद भी (जब कि उपन्यास का द्वितीय संस्करण छप गया है, उसी प्रकार ज़ोरों पर है। अभी पिछले दिनों सरस्वती में श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने उस को बड़ी जोरदार आलोचना की है।

'गिरती दीवारें' की इतनी गर्मागर्म चर्चा रही है कि 'सितारों के खेल' का ज़िक्र बहुत ही कम हो पाया और उपन्यासकार के रूप में अश्क जी 'गिरती दीवारें' के बाद ही सम्मानित हो पाये। यद्यपि जिन्हों ने 'सितारों के खेल' पढ़ा था (और उनमें मैं भी शामिल हूँ।) उन्हें इस पहले उपन्यास ने ही अश्क का, उपन्यासकार की हैसियत से, पूरा परिचय दे दिया था।

इधर जब से खबर गर्म हुई है कि अश्क अपना तीसरा उपन्यास लिख रहे हैं, पाठकों और आलोचकों का ध्यान उनके इस पहले उपन्यास की ओर फिर तेजी से पलटा है और उपन्यास का तीसरा संस्करण इस बात का प्रमाण है कि उपन्यास की लोकप्रियता भी उत्तरोत्तर बढ़ रही है। मैं तो यही मानता हूँ कि कोई भी कला-कृति अपनी प्रतिष्ठा अपने दम पर करा लेती है। हाँ कभी-कभी समय अवश्य लग जाता है। 'सितारों के खेल' के साथ भी शायद यही हुआ है।

किसी भी उपन्यास की सफलता की पहली शर्त यह होती है कि उपन्यास पाठक को समाप्ति तक अपने से अलग न होने दे। इस दृष्टि से 'सितारों के खेल' पूर्ण रूप से सफल है। पुस्तक पढ़ते समय पाठक को लगेगा जैसे वह किसी छवि-गृह में कोई चित्र देख रहा है और इस प्रकार उस में डूबा हुआ है कि वह उस के बाहर कुछ भी देखना, सोचना नहीं चाहता। कथानक में इतना तेज़ प्रवाह है कि पाठक बहता चला जाय। साथ ही कथानक की इस रवानी के बीच ऐसे अनेक स्थल भी आते हैं कि पाठक क्षण भर को आँखें मूँदकर उनकी गहराई में डूब जाता है। रवानी और दिलचस्पी 'गिरती दीवारें' में भी है, पर वहाँ जो असर जीवन की विविधता के चित्रण द्वारा उपस्थित किया गया है, वहीं 'सितारों के खेल' में, एक छोटे से घेरे में, कथानक के गठन द्वारा हासिल होता है।

अधिकांश आलोचकों ने 'सितारों के खेल', को रूमानी उपन्यास कहा है और 'गिरती दीवारें' को यथार्थवादी। किन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो वह यथार्थवाद जो 'गिरती दीवारें' में पूर्ण रूप से दिखायी देता है, बीज रूप में 'सितारों के खेल' में भी मौजूद है। सरसरी नज़र से देखने पर यह उपन्यास ज़रूर रूमानी लगता है—रावी की लहरों पर जगत और लता की सैरें, उस काली, बरसाती, तूफ़ानी रात में बंसी लाल का सिर्फ़ नल के सहारे लता के मकान की तीन मंज़िलें चढ़ जाना, वह उसकी लगभग घातक छलाँग, अमृतराय का लता और राजरानी का अमृतराय से प्रेम और फिर धर्मशाला के वे उदास-उदास, प्यार भरे एकाकी दिन—सब एक रूमानी झीने पर्दे में लिपटे दिखायी देते हैं। लेकिन इस सारे रूमानी वातावरण में, उस रूमानी दीखने वाले कथानक को रखते हुए, अश्क ने उसके पात्रों का जैसा मनोवैज्ञानिक

विश्लेषण किया है, वह सब एक दम यथार्थवादी है।

जरा और ध्यान से देखने पर यह भी पता चलता है कि वह सारी की सारी रूमानी कहानी वास्तव में उन्हीं मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन करने के लिए अश्क ने अपने इस उपन्यास में रखी है। अश्क के दिमाग़ में लड़कपन ही से (जैसा कि उन्होंने इस उपन्यास से संबंधित 'साहित्य संदेश' के अपने एक लेख में लिखा है) पुराणों की उस पतिव्रता सती की कहानी समायी हुई थी, जिसका तानाशाह पिता उसको एक पंगु कोढ़ी के साथ व्याह देता है और वह अपने उस पंगु कंकाल-मात्र पति को टोकरे में रखे, सिर पर उठाये-उठाये फिरती है और अश्क जी के मन में बराबर यह प्रश्न उठता था कि किसी युवा नारी के लिए कहाँ तक ऐसा करना सम्भव है ? 'सितारों के खेल' वास्तव में उसी प्रश्न का उत्तर है।

अश्क जी के विचार में किसी युवा नारी का वह आदर्शाचरण लगभग काल्पनिक है। यथार्थ से उसका उतना सम्बन्ध नहीं। लगभग इसलिए कि प्रायः धर्म, समाज और महत्वाकांक्षा की जंजीरें मानव मन की स्वाभाविक वृत्तियों पर अंकुश लगा देती हैं, लेकिन उस अंकुश और स्वाभाविक नियंत्रण का नतीजा प्रायः कई तरह की कुंठाओं में निकलता है। अश्क जब उस सती की कहानी सोचते तो उन के सामने धर्म संस्कार और भावना जनित वह अंकुश घूम जाता जो उस कोढ़ी से शादी हो जाने पर उस पौराणिक सती ने अपने ऊपर लगा लिया होगा और अनायास उनके मन में, उस सती के हृदय की गहराइयों में कुछ और गहरे पैठने की इच्छा प्रबलतर हो उठती। बचपने की डींग में कही गयी उस बात के फलस्वरूप (जो किसी भी लाड़ली हठीली लड़की के मुँह से निकल सकती है) जब उसे अपने तरुण जीवन को एक कृशकाय कंकाल-मात्र कोढ़ी से जोड़ना पड़ा होगा, तो भावुकता की घड़ियों के बीत जाने पर वह क्या सोचती रही होगी। अपने ऊपर उसे कैसी झुँझलाहट होती होगी। उस बूढ़े कंकाल कोढ़ी पर उसे कितना

क्रोध आता होगा—ये और ऐसी ही कई बातें अश्क जी बराबर सोचते रहते।

पौराणिक कथाकार ने उस समस्या का बड़ा आसान हल निकाल लिया और एक दो रुकावटों को पार कर (जिन में सती के सतीत्व, निष्ठा और शक्ति की पूरी परीक्षा हो गयी) उस के कोढ़ी पति को यौवन प्रदान कर दिया और वह पतिव्रता सती अपने उस युवक पति के साथ सुख पूर्वक रहने लगी।

लेकिन आज का यथार्थवादी कथाकार यह नहीं कर सकता। लगता है यही बात बार-बार अश्क जी के दिमाग़ में आती रही और आखिर उन्होंने ,लता के रूप में वैसे ही एक पात्र का सृजन किया और उस की परिस्थितियों की एक स्वाभाविक भूल के कारण उसके जीवन को उसी कोढ़ी जैसे पंगु बंसीलाल से बाँध दिया। ऐसा करना अपने आप में बहुत कठिन था, लेकिन अश्क जी ने इस बात का ध्यान रखा कि वह घटना एक दम असम्भव न दिखायी दे।

इसके बाद—याने उस पंगु के साथ लता के जीवन को बाँधने के पश्चात्—अश्क जी ने कहानी की गति को यथार्थ रूप से ही चलने दिया। तब लगता है जैसे वे उस रूमानी कथा को एक दम भूल गये और मनोवैज्ञानिक सत्य को पथ-प्रदर्शक मानकर चलते गये। वह क्षण जब लता अपनी कुंठा की चरम-सीमा पर पहुँच कर बंसीलाल को विष देकर उस से छुटकारा पा लेती है, बड़े ही कटु-सत्य से भरा है। कदाचित लता के इसी कृत्य को लक्ष्य कर एक आलोचक ने इसे बिगड़ी हुई आधुनिका की संज्ञा दी है। पर अश्क जी का यह कहना है कि उस परिस्थिति में कोई भी तरुण नारी—शिक्षित या अशिक्षित वैसा ही आचरण करती। हो सकता है यदि धर्मशाला छावनी का वह एकान्त न होता, उसे प्यार करने वाले अमृतराय न होते तो वह घटना यों न घटती। पर तब लता के मन की कुंठा किसी और रूप में फूट

निकलती।

लेकिन लता का वह कृत्य जो उन परिस्थितियों में बिलकुल स्वाभाविक था, अमृतराय को बड़ा ही अस्वाभाविक लगा। उन के हृदय में जैसे झन् से कुछ टूट गया। लता के प्रति उनके आकर्षण का कारण केवल वह निष्ठा थी जिससे वह पंगु बंसीलाल की सेवा कर रही थी। भावना के झोंके में वह उसे स्वयं ज़हर भी दे सकती है, यह उन्हों ने कभी न सोचा था। वे स्वयं उसे ज़हर दे देते (जिसका एक बार उन्होंने खुद प्रयत्न भी किया था) तो लता के साथ विवाह कर, सुखपूर्वक जीवन बिता सकते थे, लेकिन लता के उस कृत्य के बाद उनके लिए ऐसा करना एक दम असम्भव था।

अश्क जी ने यहाँ एक बड़े ही गहरे मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन किया है। मन की दुनिया में सहसा जो उथल-पुथल हो जाती है, उस का बिम्ब प्रायः मुख पर नहीं आता, पर लेखक की गहरी दृष्टि मन के अज्ञात स्तरों को भेद, उन रहस्यों का उद्घाटन कर देती है। अश्क जी ने इस स्थल पर ऐसा ही किया है। लता की निष्ठा को देख अमृतराय का उसे प्यार करने लगना वैसा ही स्वाभाविक है, जैसा इस घटना के बाद उन का उस से अलग हट जाना।

बात शायद पाठक को अच्छी नहीं लगती—लता के प्रति सहानुभूति भी जगती है, पर यथार्थवादी लेखक क्या करे? वह पौराणिक कथाकार नहीं कि वरों और अभिशापों का सहारा ले। मन की स्वाभाविक वृत्तियों के सहारे ही उसे कहानी को आगे बढ़ाना है और अश्क जी ने वैसा ही किया है। वह कहानी जो शुरू-शुरू में उस पौराणिक सती की कहानी जैसी रुमानी थी, अन्त तक पहुँचते-पहुँचते यथार्थवादी हो गयी है। लता बंसीलाल को विष न देती और ऊपर से वैसी ही बनी रहती तो उस के अन्तर्मन में न जाने कितनी कुंठा उत्पन्न हो जाती, न जाने

कितना अन्धकार उसके मन पर छा जाता, और उस अँधेरे में वह न जाने क्या से क्या कर देती।

उपन्यास का पूरा कथानक उपन्यास की नायिका लता के चारों ओर ही भटकता रहता है और अश्क जी ने जान-बूझकर लता के चरित्र व व्यक्तित्व को बहुत उभारा है। इसमें कहीं-कहीं लगता है कि वे अपने अन्य चरित्रों के प्रति थोड़ा अन्याय कर गये हैं। क्योंकि पाठकों की दृष्टि में रानी, डा० अमृतराय व बंसीलाल का चरित्र कम महत्वपूर्ण नहीं लगता। सेवा और त्याग की प्रतिमा राजरानी डा० अमृतराय की ओर बहुत तेज़ी से आकर्षित होकर भी वह जान कर अपना मुँह उसकी ओर से फेर लेती है कि लता भी उस अमृतराय से प्रेम करती है। अपने भाई बंसीलाल के प्रति किये गये लता के एहसानों को वह सदा अपने सामने इसीलिए रखती है कि वह कहीं वे एहसान फ़रामोश न हो जाय। सेवा और त्याग के लिए वह अपने जीवन को सदा ही जलने वाली भट्ठी बना रखती है। जीवन में आने वाले तूफ़ानों के प्रति संतुलन की वह प्रतिमा है।

बंसीलाल जीवन भर सदा असंतुष्ट और विषमताओं के प्रति अपना सिर झुका देने वाला एक ऐसा कमजोर चरित्र है जिसके बिना शायद लता व डा० अमृतराय का चरित्र उभर न पाता। डा० अमृतराय के रूप में अश्क जी ने आज के एक ऐसे पढ़े-लिखे पर कुंठित आधुनिक व्यक्ति का चित्रण किया है जो सूट-बूट धारी होने और विलायत का चक्कर लगा आने पर भी कहीं अन्तर में वही बर्बर पुरुष है जो नारी को पतिव्रता दासी देखना चाहता है और बराबर की संगिनी से डरता है। ऐसे पात्र हमें अपने नित्य प्रति के जीवन में बराबर मिलते हैं, जो केवल पाठकों का मनोरंजन न कर, मनोविज्ञान के अनेक पहलुओं

को हमारे सामने स्पष्ट कर देते हैं।

उपन्यास के प्रथम संस्करण में लेखक ने अपनी ओर से जो कुछ कहा है, वह नितान्त अपर्याप्त है। और फिर उपन्यास का नाम 'सितारों के खेल' लेखक के मनतव्य को जरा भी तो प्रकट नहीं करता। अश्क जी ने अपने उपन्यास का यह नाम क्यों रखा? यह कहना कठिन है। शायद उस समय अश्क जी अपने विचारों में अधिक भाग्यवादी थे। सितारे नक्षत्र हैं जो हमारे जीवन को बाँधे है। सितारों के खेल—याने भाग्य के खेल—यह नाम उस अदृश्य शक्ति की ओर संकेत करता है जो हमारी गति-विधि का निर्देशन करती है और जिसके कारण लता के बदले राजरानी को अमृतराय का प्रेम मिलता है और लता परिस्थितियों की चक्की में पिसकर समाप्त हो जाती है। अश्क जी के उस समय के शेरों में भी यही भाग्यवाद साफ दिखायी देता है :

उसे बिजली ने ताका जूंही मैं ने
निशेमन * के लिए इक शाख ताकी

या

इंसान समझता है कि तदबीर है सब कुछ
मजबूरियाँ कहती हैं कि तकदीर भी कुछ है।

और ये दोनों शेर लता के जीवन पर पूरी तरह लागू होते हैं। लेकिन उपन्यास अश्क जी ने इस भाग्यवाद को दर्शाने के लिए लिखा हो, ऐसी बात नहीं। क्योंकि भाग्यवाद इसका आधारभूत विचार नहीं। लगता है कि लेखक ने नाम पहले नहीं सोचा और उपन्यास समाप्त होने पर, अपनी उस समय की मानसिक स्थिति के अनुसार उसका

*निशेमन = घोंसला।

यह नाम रख दिया। उपन्यास का आधारभूत विचार तो उस पौराणिक सती की स्थिति में आज की नारी को रखकर उसके मनोविज्ञान को देखना है। वह नारी पिशाचिनी नहीं, जैसा कि दो एक आलोचकों ने लिखा है। किन्तु वह देवी भी नहीं, जैसा कि हमारे पौराणिक कथाकार उसे दिखाते आये हैं। वह केवल नारी है और मेरे विचार में प्रस्तुत उपन्यास में अश्क जी उसके चरित्र-चित्रण में पूरी तरह सफल हुए हैं।

यह पुस्तक उनकी औपन्यासिक कला के उस पहलू को सामने रखती है जो यथार्थवादियों की दृष्टि से छिपा रहा है। हो सकता है कि 'गिरती दीवारें' व 'गर्मराख' के यथार्थवाद के हिमायती इसे उन दोनों उपन्यासों की बराबरी का स्थान न दें। परन्तु मैं इसे उन से किसी तरह भी कम महत्वपूर्ण नहीं मानता। वे दोनों उपन्यास अपनी जगह पर ऊँचे हैं परन्तु साधारण जीवन और जीवन की प्रतिदिन की विषम परिस्थितियों के बीच खिलता हुआ यह उपन्यास अपने ढंग का मुझे निराला और बहुत ही हृदयग्राही लगा।

अश्क जी का यह प्रथम उपन्यास है और उनके इधर के उपन्यासों से बिलकुल भिन्न है, फिर भी यदि इसी तरह के कुछ उपन्यास अश्क जी और देते तो हम जैसे उनके पाठकों को अधिक—और बहुत अधिक खुशी होती।

२४ अप्रैल १९५२
२, मिंटोरोड
इलाहाबाद-२

ओंकार शरद्

सितारों के खेल

To love & win is the best thing
To love & lose is the next best

१

जिस दिन कालेज में इस बात का नोटिस फिरा कि गर्मी की छुट्टियों से पहले एक शानदार बहस होगी, जो छात्र उसमें भाग लेना चाहें, वे अपने नाम मन्त्री को दे दें, और जब इसके साथ ही यह खबर भी गर्म हुई कि अमृतलता भी उसमें भाग ले रही है तो कालेज में छुट्टी की घंटी बजते ही जो छात्र सब से पहले मन्त्री के पास अपना नाम लिखाने पहुँचे, वे जगत और बंसीलाल थे।

जगत सुन्दर और हँसमुख युवक था, नये से नये कट का सूट उसके शरीर को सुशोभित किया करता था, शरारत को उद्यत, मुस्कराती हुई उसकी आँखों पर सदैव रिमलेस चश्मा चढ़ा रहता था और उसकी फुल-स्लीव कमीज़ के सुनहरे बटन सदैव कोट की आस्तीनों के बाहर दिखायी दिया करते थे।

मन्त्री ने हँसते हुए कहा, "कहो भाई, आज यह बहस का भूत सिर पर कैसे सवार हो गया? पहले तो तुम्हें यों कोमल कलियों के संग......"

कृत्रिम हँसी हँसते हुए, मन्त्री की बात काट कर, जगत ने कहा, "यह न पूछो, बस नाम लिख लो। आभारी हूँगा।"

और यह कहकर मन्त्री के हाथ को तनिक दबाता हुआ वह हँसता-हँसता चला गया।

तभी बंसीलाल अपनी किताबों के बोझ को सम्हालता-सम्हालता वहाँ पहुँचा—निर्धन और विपन्न होने पर भी कालेज में वह श्रद्धा की

दृष्टि से देखा जाता था। बचपन ही से जो छात्र उसके साथ शिक्षा पाते आये थे, वे जानते थे कि अपनी योग्यता और परिश्रम के कारण छात्रों में ही नहीं, वरन् अध्यापकों तक की आँखों में वह सत्कार के योग्य हो गया है। परीक्षाओं में वह सदैव सर्वप्रथम आया, किसी को उसने अपने आगे नहीं बढ़ने दिया। बेपरवाह तो वह अव्वल दर्जे का था, अपने शरीर का, अपनी वेश-भूषा का उसे कभी ध्यान नहीं रहा—बाल बढ़ गये तो बढ़ गये, कपड़े मैले हो गये तो हो गये, लेकिन फिर भी उसके अस्तित्व में कुछ ऐसी बात थी कि उसके साथ चन्द मिनट तक बातें करने वालों पर उसकी योग्यता का सिक्का बैठ जाता था।

हँसी को, जो मन्त्री के चेहरे पर फूटी पड़ती थी, तनिक रोक कर उसने कहा, "कहो सारी लाइब्रेरी ही लाद लाये क्या?"

एक बेपरवाह-सी मुस्कान के साथ, सेक्रेटरी की बात को टालते हुए बंसीलाल ने कहा, "इस बार मैं भी बहस में भाग लूँगा।"

चकित होकर मन्त्री ने बंसीलाल की ओर देखा। आज तक बंसीलाल ने कभी बहस में भाग न लिया था, सदैव व्यस्तता का बहाना करके टालता रहा था, लेकिन इस बार......

"हाँ इस बार मेरा भी नाम लिख लो।" बंसीलाल ने निश्चय के स्वर में कहा, "मैं अपनी ओर से भाषण की तैयारी में भरसक प्रयत्न करूँगा। कम-से-कम मेरी ओर से तुम्हें निराश न होना पड़ेगा, इतना निश्चय मैं तुम्हें दिला देता हूँ। रहा पक्ष, सो वह तुम मुझे कोई भी दे देना।"

और इतना कहकर वह जिस तरह आया था उसी तरह अपने ध्यान में मग्न चला गया।

—०—

अपने भाषण की समाप्ति पर चंडी का रूप धारण किये हुए मिस वाली स्टेज से उतरीं। उनका श्याम वर्ण वाद-विवाद के आवेश में और भी स्याह पड़ गया था और साड़ी का छोर उनके सिर से खिसककर इस तरह गर्दन से लिपट गया था, जैसे काले पहाड़ की चोटी से फिसलकर बर्फ़ उस के दामन में जमा हो जाती है।

विरोधी पक्ष के नेता की युक्तियों का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था, "वे कहते हैं कि शादी-विवाह की पश्चिमी रीति को अपनाने से हमारे घरों में सुख का ख़ात्मा हो जायगा। मैं पूछती हूँ, हमारे घरों में सुख है ही कहाँ? ६५ प्रतिशत घर नरक का नमूना पेश करते हैं, ७५ प्रतिशत स्त्रियाँ सुहागिनें होते हुए विधवाएँ हैं। फिर दिन-रात दुख सहना और दुख देने वालों से अपने धर्म-पालन की प्रसंशा पाना हमें नहीं सुहाता। धर्म-पालना क्या स्त्रियों के लिए ही रह गया है। क्या पुरुषों का कुछ भी धर्म नहीं। विरोधी पक्ष के योग्य नेता ने कहा है कि यह पैवन्द भारतीय सभ्यता और संस्कृति के पौधे पर मुश्किल ही से लगेगा। मैं कहती हूँ, भारत के वैवाहिक जीवन में जो दोष आ गये हैं, वे इसी तरह दूर होंगे। नारी को बराबर के अधिकार मिलेंगे और शताब्दियों की दासता से स्वतन्त्र होकर वह सुख की साँस लेगी और देश की प्रगति में बराबर का योग देगी।"

भाषण की समाप्ति पर हाल तालियों से गूँज उठा। इन्हीं तालियों के शोर में लता स्टेज पर आयी और श्रोताओं को उसके आगमन का तभी पता चला जब उसका मीठा, मादक, संगीत भरा स्वर हाल में गूँज उठा।

मिस वाली की वक्तृता से प्रभावित हुए बिना, लता ने पहले ही वाक्य से उसका विरोध आरम्भ कर दिया—"मिस वाली अधिकार-अधिकार का शोर मचा रही हैं," उसने कहा, "यह नहीं जानतीं कि कौन-सा अधिकार लाभदायक है और कौन सा हानिकारक। हाथ में तलवार

लिये फिरना और उसके प्रयोग में सावधानी से काम लेना ज़रा कठिन है।"

और छात्रों को लगा कि वाद-विवाद में मिस वाली का स्थान लेने वाली कालेज में आ गयी है। लता में मिस वाली के सारे गुण तो थे ही, पर वह उसके समस्त दोषों से मुक्त थी और फिर उसके स्वर में कुछ ऐसा जादू, कुछ ऐसा प्रवाह था जो श्रोताओं को अपने साथ बहा ले जाता था।

"स्त्री-पुरुष के दृष्टि-कोण को यदि एक ओर करके निष्पक्ष रूप से विचार किया जाय," भाषण जारी रखते हुए उसने कहा, "तो मालूम हो जायगा कि मिस वाली जिसे अमृत समझी हुई हैं, वह कालकूट से अधिक महत्व नहीं रखता। उनका यह कहना कि ९५ प्रतिशत घर नरक का नमूना पेश करते हैं, यह सिद्ध नहीं करता कि विवाह की पश्चिमी प्रणाली को अपनाने से वे स्वर्ग बन जायँगे।"

"आज़ादी," लता ने भाषण के जोश में कहा, "बन्धन-हीन आज़ादी एक दोधारी तलवार है और तलवार यदि नासमझ बच्चे के हाथ में दे दी जाय तो क्या वह उससे अपना हाथ न काट लेगा? फिर जहाँ तक वैवाहिक जीवन का सम्बन्ध है, नवयुवकों और बच्चों में कोई अंतर नहीं। बच्चों ही की तरह वे इस जीवन की समस्याओं से अनभिज्ञ होते हैं; बच्चों ही की तरह वे अपनी भावनाओं को अपना पथ-प्रदर्शक बनाकर चलते हैं, नहीं जानते कि वे उन्हें कुएँ में गिरा देंगी—अथवा खाई में!"

हाल तालियों से गूँज उठा। जगत स्टेज के पास ही बैठा था। लता की वक्तृता और उसके प्रवाह को देखकर उसकी आँखों में इस मोती की आब कई गुना बढ़ गयी। साथ ही उसे पाने, उसे अपने समीप महसूस कर सकने, उससे खेल सकने, अपनी बहती घड़ियों को उसके साहचर्य से अनुप्राणित कर सकने की आकांक्षा भी उसके मन में प्रबल होती गयी। यह पतला लम्बा स्वस्थ शरीर, ये सुडौल सुन्दर अंग,

तीखे नक्श, ये यौवन के मद से चूर आँखें, ये बारीक, उड़ने-साँपों के-से बाल, चञ्चल ज्वाला सी वह तरुणी—उस के ओंठ सूखने लगे, शरीर गर्म सा हो गया—ओह ! ओह कहीं वह इसे पा सकता !

और बंसीलाल मूक, मन्त्र-मुग्ध, अचल जैसे स्वप्न देख रहा था। कुछ क्षण के लिए हाल, उसमें बैठे हुए छात्र, अध्यापक, प्रिंसिपल, यहाँ तक कि वह स्वयं अपने आपको भूल गया। दूर जैसे कहीं से मिठास की नदी सी बह रही थी। जैसे कहीं पर्दे के पीछे से मीठा, मदभरा, मनोमुग्धकारी संगीत निरन्तर चला आ रहा था। उसे लगा जैसे वह किसी और ही दुनिया में पहुँच गया है—यह हाल जैसे कोई भव्य प्राचीन मन्दिर है, श्रोता पुजारी हैं, लता कोई देवी है और यह शुष्क वाद-विवाद नहीं, अमृत-वर्षा हो रही है और वह प्यासा कहीं दूर से, जैसे मीलों चलकर, अपनी प्यास बुझाने आया है......

प्रधान की कुर्सी के ठीक ऊपर 'हाल की दीवार से टँगे हुए क्लाक ने टन से एक बजाया। एक छिपकली जो क्लाक के सिरे पर बैठी हुई मक्खी की ओर ताक लगाये धीरे-धीरे सरक रही थी, डरकर फिर क्लाक के पीछे चली गयी। बंसीलाल चौंका। तब लता कह रही थी—

"अपनी-अपनी पसन्द, कोर्टशिप या मुहब्बत की शादियाँ—सुनने में ये शब्द चाहे कितने भी भले क्यों न लगें और असफल जोड़ों के सामने ये सुख के चाहे कितने भी संसार क्यों न बसा दें, किन्तु इस सामाजिक समस्या को ये न हल कर सकेंगे। एक-दो दिन में आदमी एक दूसरे को जान ही क्या सकता है ? विशेष रूप से उस समय जब उनकी आँखों पर मुहब्बत की पट्टी बँधी हुई हो ! 'मुहब्बत', 'कोर्टशिप', 'अपनी-अपनी पसन्द', ये सब रूमानी दुनिया * की बातें हैं। रूमानी दुनिया में मनुष्य के गिर्द एक हाला सा बना रहता है और तरुण हृदयों को

*Romantic world.

एक दूसरे के दोष भी गुण ही दिखायी देते हैं। विवाह ही वह कसौटी है, जिस पर पुरुष स्त्री का सच्चा रंग खुलता है और वे अपने असली रूप में दिखायी देते हैं—क्यों हम इस वास्तविकता की ओर से आँखें बन्द करके पश्चिम की अंधाधुंध नकल करें, क्यों न पूर्व पश्चिम के मिलाप से हम कोई बेहतर रास्ता निकालें।"

हाल में फिर एक बार तालियाँ गूँज उठीं। एक क्षण, मात्र एक क्षण के लिए बंसीलाल ने जाना कि यह सब यथार्थ है और यह लता बोल रही है और वह बहस सुन रहा है और कुछ देर बाद उसे स्वयं इस वाद-विवाद में भाग लेना है, किन्तु मात्र एक क्षण के लिए...... और लता कह रही थी—

"विवाह को सफल बनाने के लिए जिस चीज़ की आवश्यकता है वह विवाह के पहले का प्रेम अथवा कोर्टशिप नहीं, बल्कि विवाह के बाद का त्याग और बलिदान की भावना है और यह भावना पश्चिम में उतनी नहीं फली-फूली जितनी भारत की शस्य-श्यामला भूमि में। फिर क्यों न पश्चिम के रीति-रिवाज को समूचा वहाँ से लाकर अपनाने के बदले यहाँ के रीति-रिवाज को ही आधुनिक परिस्थितियों के अनुसार ढालकर अपना लिया जाय। यह पश्चिम की अंधाधुंध नकल, अथवा यह 'न तीतर न बटेर' की-सी नीति हमें कोई लाभ पहुँचाने से रही। वैवाहिक जीवन की समस्या इससे सुलझेगी तो क्या और उलझ जाय, तो असम्भव नहीं।"

और तालियों के शोर में लता विजेता की भाँति अपने स्थान पर आ बैठी। बंसीलाल को लगा, जैसे पत्तों में सरसराती हवा अचानक थम गयी है। जैसे झर-झर करने वाला चञ्चल झरना सहसा मौन हो गया है। उसने आँखें खोलीं—मि० जयदयाल अपनी पीठ पर कूबड़ का बोझ लादे, नाटे कद पर लम्बी गर्दन बढ़ाये और चश्मे को नाक पर ठीक करते हुए स्टेज पर आ रहे थे।

"मूर्ख!"—बंसीलाल ने दिल-ही-दिल में भारी उपेक्षा से कहा

और साथ ही उसकी दृष्टि उन दो छात्रों की ओर गयी, जो प्रिंसिपल की नज़र बचा, मि० जयदयाल को दिखाकर हाथों से मोर बना रहे थे। बंसीलाल के ओठों पर आप से आप एक व्यंग्य-भरी मुस्कान फैल गयी और मन-ही-मन में वह हँस पड़ा। किन्तु जयदयाल इस विचित्र स्वागत के लिए शायद तैयार न थे, वक्तृता जो वे तैयार करके लाये थे, उन्हें एक दम भूल गयी और जल्दी कहीं बीच ही से उन्होंने कहना आरम्भ किया—

"हमारी पुरानी संस्कृति, हमारी पुरानी बातें हज़ार अच्छी हों और उनसे सम्बन्ध रखने वाले रीति-रिवाज हज़ार लाभदायक हों, लेकिन उन में परिवर्तन करना आवश्यक है। हम उन्हें नहीं बदलेंगे तो वे स्वयं बदल जायेंगे, क्योंकि पुरानी व्यवस्था कितनी भी अच्छी क्यों न हो, अवश्य बदलती है और नयी उसका स्थान ले लेती है—पुरुषों के बनाये हुए पातिव्रत धर्म ने बहुतेरे अत्याचार ढाये हैं, अब ज़रा स्त्रियों की स्वतन्त्रता को, अपनी-अपनी पसन्द को, तलाक को, कोर्टशिप को भी अपने करिश्मे दिखाने दीजिए......"

एक ओर से आवाज़ आयी—"ज़रूर ज़रूर, कोर्टशिप की आपको बेहद ज़रूरत है!" और हाल में एक ठहाका गूँज उठा।

ऐनक को नाक की नोक पर खींचकर मि० जयदयाल नीचे बैठे हुए छात्रों पर प्रशंसा के लिए एक नज़र डालने ही वाले थे कि इस ठहाके को सुनकर उन्होंने ऐनक को फिर अपनी जगह कर लिया और भूल गये कि अब उन्हें क्या कहना है। इसी असमंजस में उन्होंने फिर इधर-उधर देखा तो वे दोनों छात्र फिर मोर बना रहे थे। जयदयाल और भी बौखला गये।

वास्तव में जयदयाल का अस्तित्व ही कालेज में विनोद का केन्द्र था। नयी बात कहने का उन्हें और उनकी उस नयी बात का मज़ाक उड़ाने का कालेज के छात्रों को बेहद शौक था। नया शब्द प्रयोग में लाने का या नयी बात कहने का जब भी आपको अवसर मिलता, आप

उससे पूरा लाभ उठाते, फिर चाहे उस शब्द का प्रयोग अथवा वह नयी बात कितनी भी हास्यास्पद क्यों न हो। इस बहस के लिए उन्होंने कई नयी बातें ढूँढ निकाली थीं, लेकिन उस समय छात्र बेतहाशा शी... ी... ी, शी... ी... ी कर रहे थे, तालियाँ पीट रहे थे और वे बातें उनको सूझ नहीं रही थीं।

तभी प्रिंसिपल ने कहा—"एक मिनट और"—और जयदयाल जहाँ से भी, जो भी उन्हें याद आया बोलने लगे। इस शोर में अपनी आवाज़ का सिक्का श्रोताओं पर बैठाने के विचार से वे उसे पंचम तक ले गये। इस आवेश में उनकी एड़ियाँ उठ गयीं और हाथ बेतहाशा हवा को चीरने लगे।

"प्रकृति की ओर देखिए"—उन्होंने अपने स्वर की पूरी बुलंदी से कहा—"कहीं ऐसी कैद नहीं, कहीं ऐसा बन्धन नहीं, तितली फूल-फूल पर बैठती है, एक ही फूल के साथ नहीं पिरो दी जाती, तो फिर पत्नी ही क्यों पति के साथ इस तरह बाँध दी जाय कि मृत्यु के सिवा यह बन्धन टूट ही न सके।"

एक ओर से आवाज आयी—"हीयर हीयर!" क्लाक पर बैठी हुई कबूतरी ने दो बार गुटर-गूँ, गुटर-गूँ की और हाल में ठहाका गूँज उठा। दिल-ही-दिल में बंसीलाल ने कहा—'अहमक' और कल्पना-ही-कल्पना में उसने फिर वही मीठा मद-भरा स्वर सुनने का प्रयास किया, किन्तु जयदयाल के बाद जगत को बोलना था और उसने जयदयाल की असफलता का पूरा लाभ उठाने का निर्णय कर लिया था और उसकी तीखी आवाज़ जैसे बंसीलाल के कानों के पर्दों को फाड़कर उसकी कल्पना को छिन्न-भिन्न कर रही थी।

"यदि इसी भौंड़ेपन का नाम दलील देना और युक्तियुक्त बात करना है," जगत ने अत्यधिक उपेक्षा और व्यंग्य से कहा, "तो बाज़ार का हर आदमी कुशल वक्ता और तर्क-शास्त्री कहला सकता है। यों बहस के विषय को हँसी में उड़ा देना और बात है और उसके समस्त

पहलुओं पर विचार करके कुछ कहना दूसरी बात!"

गोरा रंग, प्रशस्त भाल, चंचल आँखें, उन पर वही रिमलेस चश्मा, नीले रंग का सूट, धारीदार सिल्क की कमीज़, उसी रंग की टाई और कालर और कोट की आस्तीनों के बाहर दिखायी देते हुए फुल स्लीव कमीज़ के वही सुनहरे बटन!

बंसीलाल ने एक दृष्टि उसकी ओर डाली और फिर उसकी आँखें स्टेज के साथ ही बैठी हुई लता के मुख की ओर गयीं—किस उत्सुकता से लता की दृष्टि जगत पर जमी हुई थी, किस तन्मयता से वह उसका भाषण सुन रही थी। बंसीलाल के पहलू में एक टीस सी उठी और वह ज़रा सुस्त होकर बैठ गया। किन्तु केवल कुछ क्षण के लिए। कल्पना के महल फिर उसके सामने बनने लगे, किन्तु जगत की आवाज़ इतनी तीखी थी और वह अपने विरोधी पक्ष के सब वक्ताओं का इस शिद्दत से विरोध कर रहा था कि बंसीलाल के कल्पना-महल बिखर-बिखर जाते और उसकी आँखें लता के चेहरे पर जम-जम जातीं और जैसे एक असह्य ईर्षा की आग उसके सीने में सुलग-सुलग उठती।

अन्त में जगत ने अपनी बहस ख़त्म करते हुए कहा—

"मिस लता ने इस समस्या का जो हल बताया है, वही ठीक है, बल्कि इस सामाजिक समस्या का एक मात्र हल वही है। यदि आज विवाहित लोग त्याग और बलिदान की कला सीख लें, तो ९५ प्रतिशत कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं। पत्नी यदि अपने आपको पति के अनुरूप बनाने का यत्न करे और पति भी पत्नी के सम्बन्ध में अपनी कल्पनाओं को ज़रा नीचे ले आये और दोनों समझ लें कि जीवन में सब कुछ वैसा ही नहीं होता, जैसा मनुष्य चाहता है तो वही घर जो पहले नरक का नमूना था, स्वर्ग बना दिखायी देगा। रही पश्चिम की अंधाधुंध नकल—तो वह जिस ओर हमें ले जायगी, उसका नाम है—नैतिक पतन! अब यह आप पर निर्भर है कि आप किसे पसन्द करते हैं, नैतिक दृढ़ता की नींवों पर खड़े अपने पुराने मकान को अथवा

नैतिक पतन की नींव पर निर्मित होने वाले इस भव्य प्रासाद को !"

और तालियों के शोर में जगत स्टेज से उतर गया और प्रिंसिपल ने पुकारा—"बंसीलाल !"

बंसीलाल—तोप के गोले की तरह वह नाम बंसीलाल के कानों पर पड़ा।

"बंसीलाल !"—प्रिंसिपल ने फिर पुकारा।

बंसीलाल उठा। वह भूल गया था कि उसे स्वयं भी बहस में भाग लेना है, वह भूल गया था कि कोई और भी बहस करता रहा है, उसके कानों में इस समस्त वाद-विवाद के बीच लता की मीठी मादक स्वर लहरी गूँजती रही थी......वहीं स्टेज पर खड़े-खड़े उसने लता की ओर देखा—प्रशंसा भरी निगाहों से, उन निगाहों से जिन में श्रद्धा का सागर हिलोरें मार रहा था, वह जगत की ओर देख रही थी। तभी जैसे बंसीलाल के हृदय में कभी-कभी सुलग उठने वाली आग ज्वाला बन गयी। निमिष-मात्र में, शायद इससे भी कम समय में, शायद बिना कुछ सोचे-समझे ही उसने फैसला कर लिया कि वह जगत के भाषण का रंग फीका कर देगा। हो सकता है उसे लता की सहानुभूति प्राप्त न हो, पर वह उसे गूंगा भी न समझ ले, गूँगा—मात्र किताबों का कीड़ा ! उसने सोचा—वह अपनी वक्तृता का सिक्का सब पर बैठा देगा। क्या हुआ यदि उसकी बारी सब से अन्त में आयी है, क्या हुआ यदि उसने जगत का भाषण ध्यान से नहीं सुना। किन्तु जगत की बहस का अंतिम भाग उसने सुन लिया था और उसके लिए इतना ही यथेष्ट था और वह बोलने लगा।

अपनी लालित्यमयी, ओज भरी भाषा में उसने शराबी, जुआरी, और व्यसनी पतियों के हाथों सतायी जाने वाली स्त्रियों की दयनीय दशा का चित्र खींचा, उन पर किये जाने वाले अत्याचारों की कहानी कही और फिर श्रोताओं ही से पूछा कि वे बतायें, किस तरह केवल त्याग और बलिदान इस नरक ऐसे जीवन को स्वर्ग में परिणत कर देंगे?

"वह घर जिसे मि० जगत दृढ़ नींवों पर खड़ा समझते हैं," बंसीलाल ने जोश से कहा, "वास्तव में कभी का जीर्ण-जर्जर हो चुका है, इसकी नींवें हिल चुकी हैं, इसकी दीवारों में दरारें आ गयी हैं। कौन जाने कब यह सब कुछ भड़भड़ा कर धराशायी हो जाये!"

अपना रंग जमाने और जगत के रंग को फीका करने के लिए, उसने व्यंग्य का भी कम सहारा नहीं लिया। उसकी निरंतर चोटों से जगत का मुँह ज़रा-सा निकल आया, हँसता तो वह अवश्य रहा, पर ऐसे ही जैसे हँसता न हो, हँसी की नकल उतारता हो। आखिर बंसीलाल ने कहा—

"आप लोग जानते हैं कि मि० जगत वास्तव में मिस लता की प्रशंसा करना चाहते थे और उन्होंने ऐसा कर दिया, किन्तु विषय के विरुद्ध तो वे कुछ भी नहीं कह सके और दिल में तो मिस लता और उनके 'वीर समर्थक' भी मेरे पक्ष से सहमत हैं।"

किसी ने कहा—"वीर समर्थक, खूब!" और हाल तालियों से गूँज उठा और बहस खत्म हो गयी।

इस बहस ने जगत को वह दौलत दे दी, जो दूसरों को लाख सिर पटकने पर भी प्राप्त न होती और इसी बहस ने बंसीलाल के भाग्य का निर्णय कर दिया। वह स्टेज से उतरा तो मित्रों ने उसे बधाइयाँ दीं, किन्तु स्वयं उसके चेहरे पर उल्लास की रेखा तक न थी, अपनी हार उसने लता की आकृति पर लिखी देख ली थी।

—०—

३

खटखट सीढ़ियाँ चढ़कर लता अपने कमरे में पहुँची, किताबों को मेज़ पर पटक दिया और कौच में धँस गयी। उसके सिर से साड़ी खिसक गयी थी। उसके मुख का रंग लाल हो रहा था। दो मंज़िलों की सीढ़ियाँ जल्दी-जल्दी चढ़ने से उसकी साँस फूल रही थी। बहस के बाद कालेज से आते समय सारे मार्ग में उसके मस्तिष्क में बंसीलाल के व्यंग्य, श्रोताओं के अट्टहास-उपहास गूँज रहे थे। कालेज की बहस में भाग लेने का उसका पहला ही अवसर था और उसकी दशा उस नये वकील की-सी थी, जिस पर पहली ही पेशी में विरोधी पक्ष का वकील कोई चुभती चोट कर दे। अंधों की तरह साइकिल दौड़ाती वह चली आयी थी, एकदम बिना साँस लिये वह सीढ़ियाँ चढ़ आयी थी और अब उसका दिल ज़ोर से धक्-धक् कर रहा था।

उसने एक गद्दे को कुर्सी से उठाकर सिर के नीचे रखा और कपड़े बदले बिना, सैण्डल समेत कौच पर लेट गयी। कुछ देर तक वह इसी तरह मौन, स्थिर पड़ी रही। उसके मस्तिष्क में बहस के सब वाक्य चक्कर लगा रहे थे— कभी मिस बाली के, कभी अपने कभी जगत के और कभी बंसीलाल के। ये अन्तिम वाक्य उसके हृदय में चुभ-चुभ जाते थे और दिल में वह तिलमिला उठती थी। उसकी आँखें बन्द थीं, एक हाथ कौच की पीठ पर था, एक नीचे लटक रहा था, उसे यह भी मालूम न था कि नौकर कब का चाय और नाश्ता लिये खड़ा है।

जब कुछ क्षण तक लता ने आँखें न खोलीं तो रामनारायण ने पुकारा, "लता रानी, नाश्ता करलो।"

लता चुप दीवार की ओर देखती रही, नौकर ने फिर कहा— "नाश्ता कर लो रानी बेटी।" और यह कहकर उसने छोटे से मेज़

पर टी-सैट रखने की कोशिश की।

"मुझे इच्छा नहीं"—लता ने उठकर अन्यमनस्कता से कहा और फिर लेट गयी।

"अरे एक प्याली ही ले लो बेटी"—बूढ़े रामनारायण ने अनुरोध करते हुए कहा।

"मैं कहती हूँ, मुझे नहीं चाहिए।"

रामनारायण लता के दादा के समय इस घर में आया था। इसी घर में वह युवा और वृद्ध हुआ था। लता को उसने अपने हाथों खेलाया था और अपनी लड़की की तरह ही वह उसे प्यार करता था। उसे लता की इस अन्यमनस्कता पर दुःख हुआ, किन्तु फिर भी उसने प्यार से कहा—"बेटा एक प्याली ले लो, तबीयत खुल जायगी।"

लता जलकर कुछ कहना ही चाहती थी कि बाहर घण्टी बजी।

रामनारायण जल्दी में टी-सैट को वहीं रखकर नीचे भाग गया। लता ने उठकर खिड़की में से देखा—नीचे गली में जगत साइकिल लिये खड़ा है। क्षणिक विचार के वश लता ने कुर्सियाँ आदि ठीक कीं। मेज़ की पुस्तकों को तरतीब से चुनकर रक्खा और फिर कौच पर बैठ गयी। दूसरे क्षण रामनारायण कागज का एक पुर्जा लाया, उस पर अँग्रेज़ी में लिखा था—

केवल चन्द मिनट के लिए, कृपया!

जगत किशोर।

रामनारायण बोला, "मैंने कह दिया था कि बिटिया की तबीयत ठीक नहीं, पर वह नहीं माने और यह पुर्ज़ा लिख दिया।"

लता एक निमिष के लिए चुप रही। उसे इतने दिन लाहौर आये हो गये थे, किन्तु अभी तक उसने किसी से मेल-जोल बढ़ाने का प्रयास न किया था। यदि किसी युवक ने किसी सभा-सोसाइटी के मन्त्री के रूप में या और किसी तरह उससे मिलने का प्रयास भी किया तो उसने सदैव टाल दिया। इसलिए नहीं कि उस पर किसी तरह का

तिबन्ध था, बल्कि स्वभाव ही से वह आसानी से मिलना-जुलना सन्द न करती थी। सुन्दर लोगों में जो एक तरह का आत्म-ज्ञान और र्व-सा होता है, वही उस में था। पर आज तो स्वयं उसे किसी मित्र की, हमदर्द की आवश्यकता प्रतीत होती थी, आज तो स्वयं उसका दिल किसी से बातें करने को चाहता था। फिर भी उसने कहा, "कह दो ज्वर हो रहा है।"

"राम, राम! ज्वर तुम्हारे दुश्मनों को हो," बूढ़े नौकर ने शिकायत के स्वर में कहा, "मैं कह दूँगा कि उन की तबीयत ठीक नहीं है, फिर किसी दिन मिलना।" और यह कहकर वह चला गया। र अभी वह सीढ़ियाँ उतर ही रहा था कि उस के कानों में आवाज़ आयी—"नारायण बाबा, नारायण बाबा!" उस ने देखा लता पीछे भागी आ रही है।

"उन से कह दो कि आ जायँ"—यह कहकर लता मुड़ गयी। नौकर ने एक बार आश्चर्य से उसे जाते हुए देखा और फिर सीढ़ियाँ उतरने लगा।

घर में बूढ़े नौकर और लता के वृद्ध पिता के अतिरिक्त और कोई न रहता था। लता की माँ उसके बचपन ही में मर गयी थी, फिर उस के पिता ने दूसरा विवाह न किया था। उस समय उनकी आयु बत्तीस वर्ष के लगभग थी और यद्यपि विवाह के लिए संदेश देने वालों की कमी न थी, पर लता की माँ से उन्हें कुछ ऐसा प्यार था कि उन्होंने दूसरे विवाह का विचार ही नहीं किया और आज तक उस देवी के नाम की माला जपते रहे। लता को उन्होंने माँ की अनुपस्थिति नहीं खलने दी। हर प्रकार से उसका ध्यान रखा, हर तरह से उसका लाड़-प्यार किया। उसे ऊँचे दर्जे की शिक्षा दी और वास्तव में अपने पुत्र के अभाव को उन्होंने इसी तरह पूरा करना चाहा। भारत में

रामनारायण ने टी-सैट उठाया और चलने लगा। उस समय लता को मानो ज़बान मिल गयी। उसने कहा—"रहने दो इसे और भागकर कुछ और पानी और एक प्याला ले आओ।" फिर वह कुर्सी से उठकर जगत के सामने पड़े हुए बड़े कौच पर जा बैठी।

जगत ने कहा, "आप क्यों कष्ट कर रही हैं, मुझे चाय पीने की कोई ख़ास आदत नहीं।"

"न सही", लता ने चाय ढालते हुए कहा, "एक कप ले लीजिएगा।"

यह कहते-कहते स्वर्ण स्मित लता के ओठों पर दौड़ गयी, जगत का मुख लाल हो गया। रामनारायण एक दूसरी ट्रे में चाय का पानी, प्याला, तश्तरी, चम्मच और दो तोस ले आया।

वह उसी तरह लता को खड़ा घूर रहा था कि लता ने कहा—"जाओ और कुछ देर बाद आकर सब कुछ ले जाना।"

नौकर चला गया। जगत ने चाय का प्याला मुँह से लगाया। गर्म था, फिर तश्तरी में रख दिया और तोस को उठाते हुए बोला, "मैं आपको बधाई देने आया था।"

"बधाई!" लता ने मुस्कराते हुए पूछा।

"आपने आज की बहस में कमाल कर दिया।"

"धन्यवाद, आप भी तो खूब बोले।"

"मेरा आपका क्या मुकाबिला!"

निमिष मात्र के लिए दोनों की निगाहें चार हुईं। दोनों मुस्कराये। लता ने लजाकर नीचे फ़र्श की ओर देखते हुए कहा, "स्टेज पर बोलने का मेरा यह पहला ही अवसर है और आप जानते हैं, पहली बार स्टेज पर आते ही आदमी घबरा-सा जाता है।"

"लेकिन आप तो बिलकुल नहीं घबरायीं। मुझे तो ऐसा लगा जैसे आप पहले भी बीसों बार स्टेज पर बोल चुकी हैं।"

"यों तो मैं अपने विद्यालय की लड़कियों में बोलती रही हूँ, किन्तु

फिर किस अलंकारमयी भाषा में—हाथ में तलवार लिये फिरना और उसके प्रयोग में संयम से काम लेना जरा मुश्किल है—वाह, क्या बात पैदा की है। जी चाहे जिससे विवाह करने और जी चाहे जिससे सम्बन्ध-विच्छेद करने का अधिकार एक तरह की तलवार ही तो है। अवसर पड़ने पर कौन सोचता है, वहाँ तो आवेग पथ-प्रदर्शक होता है, समझ और विचार नहीं!"—और वह और भी जोश से कहने लगा—"यूरोप में तलाक का आधिक्य इस बात का जीता-जागता प्रमाण है। साधारण-सी बातों पर इस अधिकार को प्रयोग में लाया जाता है। छींकने पर तलाक के दावे दायर कर दिये जाते हैं। बात तो जब थी कि श्रीमान भी दलील को दलील से काटते, आप लगे मसखरापन करने और आप कहती हैं कि शायद उसने पहली बार वाद-विवाद में भाग लिया है। अब यों तो मैं भी पहली बार बोला था, पर क्या मैंने कोई असंगत बात कही?"

लता ने मुस्कराकर कहा, "अच्छा तो आपने भी पहली ही बार बहस में भाग लिया था!"

"जी हाँ।"

"तब तो आप ने कमाल कर दिया!"

विनम्र गर्व से जगत ने कहा, "नहीं जी, मैं क्या कमाल करता। हाँ, मैंने किसी की पगड़ी नहीं उछाली। मेरे विचार में तो व्यर्थ बक-वाद करने से कहीं अच्छा है कि आदमी बोले ही नहीं।"

उसी वक्त रामनारायण कमरे में दाखिल हुआ।

"कुछ और चाहिए रानी?"

"नहीं, यह सब कुछ ले जाओ।" और फिर जगत से पूछा, "सिगरेट तो पीजिएगा?"

"धन्यवाद, मैं सिगरेट नहीं पीता।" जगत ने लजाते हुए कहा और फिर मेज़ के पास खड़े-खड़े 'देवदास' चित्रपट का पेम्फ़लेट उठाकर देखने लगा।

फिर किस अलंकारमयी भाषा में—हाथ में तलवार लिये फिरना और उसके प्रयोग में संयम से काम लेना जरा मुश्किल है—वाह, क्या बात पैदा की है। जी चाहे जिससे विवाह करने और जी चाहे जिससे सम्बन्ध-विच्छेद करने का अधिकार एक तरह की तलवार ही तो है। अवसर पड़ने पर कौन सोचता है, वहाँ तो आवेग पथ-प्रदर्शक होता है, समझ और विचार नहीं!"—और वह और भी जोश से कहने लगा।—"यूरोप में तलाक का आधिक्य इस बात का जीता-जागता प्रमाण है। साधारण-सी बातों पर इस अधिकार को प्रयोग में लाया जाता है। छींकने पर तलाक के दावे दायर कर दिये जाते हैं। बात तो जब थी कि श्रीमान भी दलील को दलील से काटते, आप लगे मसखरापन करने और आप कहती हैं कि शायद उसने पहली बार वाद-विवाद में भाग लिया है। अब यों तो मैं भी पहली बार बोला था, पर क्या मैंने कोई असंगत बात कही?"

लता ने मुस्कराकर कहा, "अच्छा तो आपने भी पहली ही बार बहस में भाग लिया था!"

"जी हाँ।"

"तब तो आप ने कमाल कर दिया!"

विनम्र गर्व से जगत ने कहा, "नहीं जी, मैं क्या कमाल करता। हाँ, मैंने किसी की पगड़ी नहीं उछाली। मेरे विचार में तो व्यर्थ बक-वाद करने से कहीं अच्छा है कि आदमी बोले ही नहीं।"

उसी वक्त रामनारायण कमरे में दाखिल हुआ।

"कुछ और चाहिए रानी?"

"नहीं, यह सब कुछ ले जाओ।" और फिर जगत से पूछा, "सिगरेट तो पीजिएगा?"

"धन्यवाद, मैं सिगरेट नहीं पीता।" जगत ने लजाते हुए कहा और फिर मेज़ के पास खड़े-खड़े 'देवदास' चित्रपट का पेम्फ़लेट उठाकर देखने लगा।

"एक क्षण के लिए आज्ञा चाहती हूँ।" यह कहकर लता बाहर चली गयी। और जगत उस पेम्फ़लेट में छपी हुई सहगल और यमुना की तस्वीरें देखने लगा। किस ग़ज़ब के ये कलाकार हैं! इस पिक्चर में इन्होंने कितना सुन्दर काम किया है!—उसने मन-ही-मन कहा और उसके सामने चित्रपट के विविध दृश्य घूम गये। कुछ क्षण बाद लता साड़ी बदलकर वापस आ गयी। जगत ने पूर्ववत् पैम्फ़लेट को देखते हुए पूछा, "आप ने यह पिक्चर देखी है?"

"अभी नहीं।"

"देखने न चलिएगा?"

लता ने कहा, "मुझे आपके साथ जाने में प्रसन्नता होती, पर मुझे अभी एक जगह जाना है और शायद मैं वहाँ से कुछ देर बाद वापस आऊँ।"

अब जगत ने आँख उठाकर देखा—आसमानी रंग की साड़ी में लता आकाश की देवी बनी खड़ी है। उसने आँखें नीची कर लीं और घड़ी को देखते हुए उठा। "कितना समय पलक झपकते बीत गया!" उसने लम्बी साँस लेते हुए कहा।

"कुछ मालूम ही नहीं हुआ!" मुस्कराते हुए लता बोली।

"आशा है आप मुझे इतना समय नष्ट करने के लिए क्षमा करेंगी।"

"मुझे आपसे बातें करके बड़ी प्रसन्नता हुई।" लता बोली और जगत को नीचे देहरी तक छोड़ने गयी। जगत ने 'नमस्ते' किया, साइकिल उठायी और बाहर निकल गया।

एक विचित्र-सा नशा उसकी नस-नस में समा रहा था। 'मुझे आप से बातें कर के बड़ी प्रसन्नता हुई,' यह औपचारिक-सा वाक्य उसके मन-मस्तिष्क पर छाया जा रहा था। ड्योढ़ी की सीढ़ियों से उतरते समय उसका सिर चौखट से टकरा गया। कुछ दूर पैदल चला, फिर उसने पैडल पर पाँव रखा और इस तेजी से साइकिल चलाने लगा, जैसे आकाश में उड़ा जा रहा हो। मार्ग में एक बार [illegible]

आते बचा, फिर एक ताँगे से टकराते-टकराते रह गया, अन्त को एक वृद्ध से जा टकराया।

—०—

४

शायद सब से पीछे बंसीलाल कालेज से निकला। बहस समाप्त होने के बाद वह इधर-उधर बेदिली से खेल देखता रहा था। उसका सारा उत्साह जैसे छिन गया था। स्टेज से उसने देखा था, लता क चेहरा भी फीका पड़ गया है। अपनी सफलता पर लता को जो उल्लास हुआ था, वह सब बंसीलाल के भाषण से हवा हो गया था। उस व्यंग्य पर, जो बहस के जोश में उसके मुँह से निकल गया, लता का मुख क्रोध से लाल हो गया था। बहस के बाद बंसीलाल ने प्रयास किया था कि लता से मिलकर अपनी सफ़ाई दे दे, पर लता ने उसे अवसर ही न दिया, वह उसे एक बार उपेक्षा से देखकर चली गयी थी।

सिर नीचा किये हुए यही बातें सोचता बंसीलाल फ़ुट-पाथ पर चला जा रहा था। यदि उसे मालूम होता कि पांसा उलटा पड़ेगा, तो वह बोलता ही न, चुपचाप स्टेज से उतर जाता, जरा हँसी ही उड़ती न, पर उसकी आशाओं का सुन्दर स्वर्ग इतनी दूर तो न चला जाता।

एक व्यक्ति तेज़ी से आता-आता उससे टकरा गया। बंसीलाल गिरता-गिरता बचा, उसकी बग़ल से दो किताबें फ़ुट-पाथ पर गिर पड़ीं। उसने उन्हें उठाया और धीरे-धीरे चल पड़ा।

अनारकली में वही पुरानी रौनक थी। वही चहल-पहल, वही भीड़-भड़्भड़, वही रोशनी, वही चकाचौंध, वही ग्रामोफ़ोन के गाने, वही रेडियो के तराने, वही लेन-देन, वही क्रय-विक्रय, वही चमकती

हुई साड़ियाँ, वही खिसकते हुए दुपट्टे, वही चिल्ल-पों, वही शोरगुल—इस रौनक को देखकर कौन कह सकता है कि इस लाहौर में दुख और ग़म नाम की भी कोई वस्तु है और इसी अनारकली की बग़ल में सड़ा-गंदा और अपनी विपन्नता में मग्न चंगड़ मुहल्ला भी है। अनारकली अमर यौवन लेकर आयी है। उसे वृद्धावस्था का डर नहीं। उसके सीने का उभार बढ़ता ही जाता है, उसकी आवाज में दिनोंदिन मादकता आती जाती है और उसका अस्तित्व अधिकाधिक आकर्षण का केन्द्र बनता जाता है। दो साल से प्रतिदिन बंसीलाल इसके यौवन पर मुग्ध होता चला आया था। यह अनारकली का आकर्षण ही था जो उसे घूमकर, छोटे मार्ग को छोड़कर, इतना चक्कर काट, घर जाने को विवश करता था। रोज वह इस सैर का आनन्द उठाया करता था। उसकी निर्धनता उसे सिनेमा, थियेटर और मनोरंजन के दूसरे साधनों से वंचित रखती, पर इस सैर में तो कुछ खर्च न आता था और रोज वह इस मुफ़्त के मनोरंजन का आनन्द लेता था—अपने मित्रों से ग़प्पें उड़ाता हुआ, हँसी-मज़ाक करता हुआ—इस सैर में उसे नित्य नया आनन्द मिलता था, पर आज तो मानो अनारकली ही बदल गयी थी, आज तो मानो वह वह न रहा था। गुपचुप अपने विचारों में तल्लीन नीले गुम्बद की ओर से दाखिल हुआ और सिर झुकाये इस प्रकार सारे बाजार से गुज़र गया जैसे अनारकली अनारकली न हो, कोई सुनसान वीराना हो।

घर जाने को आज उसका जी न चाहता था, फिर भी पग उसके घर की ओर उठ रहे थे। रास्ते में लता का मकान आया। उसके जी में आयी, क्यों न उसी समय लता से मिलकर उसके सामने अपनी स्थिति साफ कर दे। एक दो सीढ़ियाँ चढ़कर वह घंटी की तरफ बढ़ा। घंटी बजाने ही लगा था कि उसकी नजर ड्योढ़ी में पड़ी हुई दूसरी साइकिल पर गयी। कैरियर पर पुस्तकें बँधी हुई थीं। बढ़कर उसने एक पर नाम देखा। लिखा हुआ था—जगतकिशोर। वह उलटे पाँव वापस उतर

आया। यदि जगत की उपस्थिति में उसने नौकर के द्वारा कोरा जवाब दिला दिया तो उसके लिए मुँह दिखाने को जगह न रहेगी। वह धीरे-धीरे अपने घर की ओर चलने लगा।

भावुक, विपन्न और स्वाभिमानी बेचारा बंसीलाल! उसका पिता उसे और उसकी बहन को अपनी पत्नी के सहारे छोड़कर बहुत दिन हुए परलोक सिधार गया था। भाई और बहन अपनी माँ के परिश्रम और अपनी मेहनत के बल पर ही शिक्षा के मन्दिर की सीढ़ियाँ तय करते आ रहे थे। बंसीलाल के उदार मित्र भी उसकी सहायता कर देते, पर उसके स्वाभिमान ने कभी उनके आगे याचना का हाथ फैलाना स्वीकार न किया।

बंसीलाल चला जा रहा था। उसकी आँखों के सामने उसकी निर्धनता का चित्र खिंचा हुआ था। आज तक उसने इस अभाव को महसूस न किया था। अपनी ग़रीबी में भी उसे एक तरह का आनन्द-सा ही आता रहा था, पर धनी लता, निर्धन वह और आज का दिन...... उसका घर आ गया। देहरी में उसकी माँ बैठी सूत कात रही थी। वह चुपचाप उसके पास से गुजर कर अन्दर चला गया।

अँधेरी गली में पुराना जीर्ण-शीर्ण मकान, उसमें नमदार छोटा-सा कमरा, दीवारों पर लूनी, कोनों में मकड़ी के जाले, कच्चा फर्श और उस पर टाट, एक ओर चारपाई, उसके सिरहाने पुराना हिलता हुआ छोटा-सा मेज़, उस पर बिखरी हुई किताबें और खूँटी से लटकता हुआ टिम-टिमाता लैम्प—बंसीलाल ने किवाड़ खोले और आज पहली बार इस दृश्य को देखकर उसके अन्तर से बरबस एक दीर्घ निश्वास निकल गया। क्या इसी बिरते पर वह लता के प्रेम का दम भरने चला था! क्षण भर के लिए उसने लता से अपनी तुलना की। वह भव्य-प्रासाद में रहने वाली देवी और वह अँधेरी कुटिया का भिखारी! वह आकाश की ऊँचाई में उड़ने वाली सुन्दर चिड़िया और वह पाताल की गहराइयों में गिरा हुआ पंखहीन पक्षी! उसे मुहब्बत भी हुई तो किससे?

आज यदि लता उसकी होने को राज़ी हो जाय तो वह उसे कहाँ लाकर रखेगा ? अपनी इस मूर्खता पर वह निमिष मात्र के लिए स्वयं हँसा, और चुपचाप पुस्तकों समेत जाकर बिस्तर पर लेट गया।

किन्तु क्या इस प्रकार सोचने से, इस प्रकार हँसने से वह अपने आपको इस पथ से हटा सकता था ? इस प्रकार तो वह पहले भी कई बार सोच चुका था। सोच क्या, वह कई बार प्रण कर चुका था—अब वह उस गली में न जायगा, जान-बूझ कर आग के मुँह में न कूदेगा; पर क्या यह उसके बस की बात थी ? वह तो चाहता था कि वह उसका ध्यान छोड़ दे, पर क्या उससे यह पागलपन छोड़ा जाता था। मंत्री ने कितनी बार कहा था—वाद-विवाद में भाग लो ! लेकिन उसने उस ओर ध्यान भी न दिया था। पर जब उसे पता चला, लता भी भाग ले रही है तो वह भी कूद पड़ा। नाम पूरे हो चुके थे, पर मन्त्री से अनुरोध करके उसने अपना नाम लिखवाया और फिर इस स्पीच को तैयार करने के लिए उसने कितना परिश्रम किया था ? गयी रात तक वक्तृता तैयार किया करता था, सोते में भाषण देता था और इस सब परिश्रम का फल क्या मिला ? लता की उपेक्षा !

बंसीलाल ने फिर एक लम्बी साँस ली और उठ कर बैठ गया। क्यों न वह एक पत्र द्वारा लता को अपनी सफाई दे दे ? उसे बता दे कि उसका उद्देश्य कदापि उसे दुःख पहुँचाना न था। वह तो वाद-विवाद के आवेश में उसके मुँह से कुछ अंट-संट निकल गया। हो सकता है लता के दिल से क्रोध दूर हो जाय। यदि वह एक बार भी हमदर्द-निगाहों से उसकी ओर देखे तो वह क्या नहीं कर सकता। यह ग़रीबी, इसकी बिसात ही क्या है ? वह चाहे तो इसे सम्पन्नता में बदल सकता है। सोने के महल वह खड़े कर सकता है। केवल उसकी कृपा-दृष्टि चाहिए ! वह बी० ए० में सर्वप्रथम रह सकता है, आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में बैठ सकता है, ज़िला जज हो सकता है, माल अफ़सर हो सकता है, डिप्टी कमिश्नर हो सकता है। उसके लिए कुछ

आया। यदि जगत की उपस्थिति में उसने नौकर के द्वारा कोरा जवाब दिला दिया तो उसके लिए मुँह दिखाने को जगह न रहेगी। वह धीरे-धीरे अपने घर की ओर चलने लगा।

भावुक, विपन्न और स्वाभिमानी बेचारा बंसीलाल! उसका पिता उसे और उसकी बहन को अपनी पत्नी के सहारे छोड़कर बहुत दिन हुए परलोक सिधार गया था। भाई और बहन अपनी माँ के परिश्रम और अपनी मेहनत के बल पर ही शिक्षा के मन्दिर की सीढ़ियाँ तय करते आ रहे थे। बंसीलाल के उदार मित्र भी उसकी सहायता कर देते, पर उसके स्वाभिमान ने कभी उनके आगे याचना का हाथ फैलाना स्वीकार न किया।

बंसीलाल चला जा रहा था। उसकी आँखों के सामने उसकी निर्धनता का चित्र खिंचा हुआ था। आज तक उसने इस अभाव को महसूस न किया था। अपनी ग़रीबी में भी उसे एक तरह का आनन्द-सा ही आता रहा था, पर धनी लता, निर्धन वह और आज का दिन......उसका घर आ गया। देहरी में उसकी माँ बैठी सूत कात रही थी। वह चुपचाप उसके पास से गुजर कर अन्दर चला गया।

अँधेरी गली में पुराना जीर्ण-शीर्ण मकान, उसमें नमदार छोटा-सा कमरा, दीवारों पर लूनी, कोनों में मकड़ी के जाले, कच्चा फर्श और उस पर टाट, एक ओर चारपाई, उसके सिरहाने पुराना हिलता हुआ छोटा-सा मेज़, उस पर बिखरी हुई किताबें और खूँटी से लटकता हुआ टिमटिमाता लैम्प—बंसीलाल ने किवाड़ खोले और आज पहली बार इस दृश्य को देखकर उसके अन्तर से बरबस एक दीर्घ निश्वास निकल गया। क्या इसी बिरते पर वह लता के प्रेम का दम भरने चला था! क्षण भर के लिए उसने लता से अपनी तुलना की। वह भव्य-प्रासाद में रहने वाली देवी और वह अँधेरी कुटिया का भिखारी! वह आकाश की ऊँचाई में उड़ने वाली सुन्दर चिड़िया और वह पाताल की गहराइयों में गिरा हुआ पंखहीन पक्षी! उसे मुहब्बत भी हुई तो किससे?

आज यदि लता उसकी होने को राज़ी हो जाय तो वह उसे कहाँ लाकर रखेगा ? अपनी इस मूर्खता पर वह निमिष मात्र के लिए स्वयं हँसा, और चुपचाप पुस्तकों समेत जाकर बिस्तर पर लेट गया।

किन्तु क्या इस प्रकार सोचने से, इस प्रकार हँसने से वह अपने आपको इस पथ से हटा सकता था ? इस प्रकार तो वह पहले भी कई बार सोच चुका था। सोच क्या, वह कई बार प्रण कर चुका था—अब वह उस गली में न जायगा, जान-बूझ कर आग के मुँह में न कूदेगा; पर क्या यह उसके बस की बात थी ? वह तो चाहता था कि वह उसका ध्यान छोड़ दे, पर क्या उससे यह पागलपन छोड़ा जाता था। मंत्री ने कितनी बार कहा था—वाद-विवाद में भाग लो ! लेकिन उसने उस ओर ध्यान भी न दिया था। पर जब उसे पता चला, लता भी भाग ले रही है तो वह भी कूद पड़ा। नाम पूरे हो चुके थे, पर मन्त्री से अनुरोध करके उसने अपना नाम लिखवाया और फिर इस स्पीच को तैयार करने के लिए उसने कितना परिश्रम किया था ? गयी रात तक वक्तृता तैयार किया करता था, सोते में भाषण देता था और इस सब परिश्रम का फल क्या मिला ? लता की उपेक्षा !

बंसीलाल ने फिर एक लम्बी साँस ली और उठ कर बैठ गया। क्यों न वह एक पत्र द्वारा लता को अपनी सफाई दे दे ? उसे बता दे कि उसका उद्देश्य कदापि उसे दुःख पहुँचाना न था। वह तो वाद-विवाद के आवेश में उसके मुँह से कुछ अंट-संट निकल गया। हो सकता है लता के दिल से क्रोध दूर हो जाय। यदि वह एक बार भी हमदर्द-निगाहों से उसकी ओर देखे तो वह क्या नहीं कर सकता। यह ग़रीबी, इसकी बिसात ही क्या है ? वह चाहे तो इसे सम्पन्नता में बदल सकता है। सोने के महल वह खड़े कर सकता है। केवल उसकी कृपा-दृष्टि चाहिए ! वह बी० ए० में सर्वप्रथम रह सकता है, आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में बैठ सकता है, ज़िला जज हो सकता है, माल अफ़सर हो सकता है, डिप्टी कमिश्नर हो सकता है। उसके लिए कुछ

प्रयास किया। जब न लिखा गया, तो क्रोध से उसे फाड़कर वह उठ खड़ा हुआ और कमरे से बाहर निकल आया।

"मैं जरा सैर करने जा रहा हूँ, एक-दो घंटों में आ जाऊँगा," उसने देहरी में बैठी हुई माँ से कहा।

माँ कुछ कहने ही लगी थी, पर रानी ने आकर रोक दिया। बोली, "जरूर घूम आओ। मैं रोज कहती हूँ, तुम समय पर सब काम किया करो। वक्त पर खाओ, वक्त पर घूमो, वक्त पर पढ़ो, पर तुम ठीक तरह से कोई काम करते ही नहीं।"

बंसीलाल ने कुछ नहीं सुना, वह चला गया। उसकी बहन ने जब अपना वाक्य समाप्त किया, तो वह आँगन पार कर देहरी में जा चुका था। गली से निकलकर वह बाजार में आया। बाजार से निकल सड़क पार करके गोल बाग में जाकर, टैनिस के एक लॉन में छोटी-छोटी घास पर लेट गया और अपनी दर्दभरी आवाज में प्रसिद्ध फिल्म 'देवदास' का प्रचलित करुणापूर्ण गीत गाने लगा—

'न मैं किसी का, न कोई मेरा'

कितनी ही देर तक वह गीत गाता रहा—यहाँ तक कि उसकी आवाज भारी हो गयी और आँखों में पानी भर आया। मन कुछ हल्का हुआ तो घर को चल पड़ा। रात को उसने लता को एक पत्र लिखा।

डियर मिस लता,

कल बहस में अपने दुर्बल पक्ष को मजबूत बनाने के लिए मेरे मुँह से कुछ उल्टी-सीधी बातें निकल गयी थीं। मालूम होता है, आप ने उनका बुरा माना। मुझे सब से अन्त में बोलना था, आप मेरी कठिनाइयों का भली-भाँति अनुमान कर सकती हैं। बोलने के लिए मेरे पास कुछ न था और विशेष कर आपकी अकाट्य युक्तियों के बाद मेरी दलीलों का खजाना खाली हो गया था। इस दशा में इसके अतिरिक्त मैं और क्या कर सकता था कि विरोधी दल की युक्तियों को उपहास में उड़ा दूँ,

नहीं तो आप से जो श्रद्धा मुझे है, उसे मेरा दिल ही जानता है।

अपराधी,

बंसीलाल।

पत्र को लिफाफे में बन्द करके और उस पर सुन्दर शब्दों में 'अमृतलता' लिखकर बंसीलाल ने उसे एक पुस्तक में छिपा दिया ताकि रानी उसे देख न ले और चारपाई पर सो गया। रात को उसे कैसी नींद आयी, इसका अनुमान कुछ इसी बात से किया जा सकता है कि जब वह सुबह उठा तो उसकी आँखें लाल थीं, सिर भारी था, दाढ़ी बढ़ी हुई मालूम होती थी और चेहरा कुछ पिचक गया था। उठते ही हाथ-मुँह धोये बिना वह लता के घर को चल पड़ा। वहाँ पहुँचा तो अभी दरवाजा ही बन्द था। एक दूसरे मकान की ओट में बहुत देर तक खड़ा रहा। अन्त को किवाड़ खुले, रामनारायण शायद सब्जी लेने के लिए बाजार जा रहा था। बंसीलाल ने दौड़कर उसे रोक लिया और पत्र उसके हाथ में दे दिया।

"लता जाग रही हैं?"

"हाँ अभी उठी हैं।"

"जरा यह पत्र उन्हें दे आओ, जरूरी है।"

रामनारायण उलटे पाँव वापस फिरा। बंसीलाल साँस रोके वहीं मकान की ओट में जा खड़ा हुआ। उत्तर की उसे आशा न थी, इस पत्र का उत्तर भी क्या हो सकता था! पर वह रामनारायण से पूछना चाहता था कि उसके पत्र को लता ने किस तरह पढ़ा, उसे पढ़ते समय उसके मुँह पर कैसे भाव प्रतिबिम्बित हुए और उसने पत्र कहाँ रक्खा? अभी उसे खड़े बहुत देर न हुई थी कि लता की खिड़की से काग़ज़ के टुकड़े उड़ते हुए दिखायी दिये और दूसरे क्षण गली में इधर-उधर बिखर गये। एक उसके पाँवों के पास भी आ पड़ा। बंसीलाल ने धड़कते हुए दिल के साथ उठाकर देखा—उसके ही पत्र का टुकड़ा था।

एक विषादमयी मुस्कराहट उसके ओठों पर फैल गयी। पत्र के टुकड़ों को उसने इकट्ठा किया और इससे पहले कि रामनारायण वापस आये, वह चुपचाप गली से निकल गया।

—०—

५

दो वर्ष पश्चात् सावन की एक साँझ थी।

ठंडी-ठंडी बयार चल रही थी। आकाश पर श्वेत बादलों के टुकड़े इधर-उधर उड़ रहे थे जैसे किसी अज्ञात धुनिये ने ढेरों रुई धुनकर आकाश में बखेर दी हो।

सुबह खूब वर्षा हुई थी। बादल अभी-अभी छटे थे। रावी के किनारे घने वृक्षों की शाखाओं में झूले पड़े हुए थे और कुछ मनचले लम्बी-लम्बी पैंगें बढ़ा रहे थे। घाट के कुएँ पर कुछ लोग ठंडाई घोटने में व्यस्त थे, एक-दो नहा रहे थे, दूसरी ओर गिरे हुए पेड़ के सूखे तने से पीठ लगाये एक चरवाहा अलग़ोज़ों* में 'सस्सी पुन्नू' का अमर गीत अलाप रहा था। पश्चिम की ओर सूर्य की पीली-पीली ज़र्द धूप, किनारे के वृक्षों को, सामने सड़क के पुल को, दूर मक़बरे के मीनारों को इस तरह आलिंगन में ले रही थी जैसे चिरकाल तक मैके में रहने के बाद ससुराल को जाने वाली देहाती युवती अपनी परिचित वस्तुओं को गले लगाती फिरती है।

बी० ए० का नतीजा निकल चुका था। कुछ बे-फ़िक्रे युवक किश्तियों में रावी की सैर कर रहे थे। एक हल्की-सी नाव नदी के बहाव की उल्टी दिशा में, पुल की ओर, बढ़ी चली जा रही थी। उस पर बैठा जगत पूरी शक्ति से चप्पू चला रहा था।

*बाँसुरी की तरह का एक पंजाबी साज़।

पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूँदें उसके मस्तक पर उग आयी थीं जैसे प्रकृति की इस अपूर्व छटा को एक आँख देखने की अभिलाषा उन्हें बरबस खींच लायी हो। जगत के बाल उड़े जा रहे थे और उसका सुनहला रंग किरणों के सोने से और भी चमक उठा था।

पुल के पास पहुँचकर उसने चप्पू छोड़ दिये और किश्ती को बहाव पर जाने दिया। सामने बैठी हुई लता ने एक लम्बी साँस ली और कहा, "जगत, ऐसी सुन्दर साँझ जैसे वर्षों के बाद देखने को मिली है।"

जगत केवल मुस्कराया और बायें हाथ से अपने मस्तक को पोंछते हुए उसने दायें हाथ से चप्पू से चन्द छींटे उड़ा दिये।

"ओहो ! तुमने मेरे सब कपड़े भिगो दिये ! तुम बड़े असभ्य हो।" लता ने चौंककर साड़ी को झाड़ते हुए कहा।

जगत हँसा, "परमात्मा जब सभ्यता बाँटने लगा था तो सारी सभ्यता और शिष्टता लता, उसने तुम्हें ही दे दी थी," उसने लता की आँखों में आँखें डालते हुए कहा।

लता हँस दी। उस समय एक नाव तेज़ी से उनके पास से गुज़र गयी। दो लड़के चप्पू चला रहे थे, दो चुपचाप बैठे थे और नाव के सिरे पर बैठा बंसीलाल अपने करुण स्वर में गा रहा था।

सावन का महीना है,
साजन से जुदा होकर, जीना कोई जीना है !

जगत ने एक लम्बी साँस छोड़ी, "क्या ख़ूब गाता है बंसीलाल भी—साजन से जुदा होकर, जीना कोई जीना है—कितना दर्द, कितनी व्यथा है उसके स्वर में !"

लता ने व्यंग्य से उत्तर दिया, "परीक्षा में फ़ेल होकर खुशी के गीत कौन गायेगा ?"

जगत ने कहा, "तुम न होतीं लता तो मैं पास न होता। हाँ, बंसीलाल की बात दूसरी है।"

लता ने उत्तर नहीं दिया। वह मुस्कराकर, जगत के सुन्दर मुख को एक मुग्ध दृष्टि से घेरती हुई-सी चुप रही। उधर बंसीलाल का स्वर मानो लहरों पर तैरता हुआ, हवा पर उड़ता हुआ आया—

शाखों में पड़े झूले,
तुम भूल गये हमको, हम तुमको नहीं भूले।

लता के ओठों की मुस्कान विलुप्त हो गयी और वह चुपचाप पश्चिमी क्षितिज में छायी हुई लाल-लाल और फिर नीली-पीली बदलियों को देखने लगी। दूर से संगीत की हल्की-सी आवाज मानो डूबती हुई किरणों का पीछा करती हुई-सी उसके कानों में आयी। बंसीलाल गा रहा था—

लहरों पै बहे जाओ,
तुम दर्द मेरा जानो, जो दर्द कहीं पाओ!

लता सिहर उठी। क्या उसे भी एक दिन दुःख उठाना होगा, क्या उसके प्रेम का अंजाम भी दर्द भरा होगा, क्या यह रागभीनी अनुपम साँझ, यह उल्लास में विभोर दिन, भविष्य से बँधी हुई आशाएँ और अभिलाषाएँ—सब इस एक शब्द में जाकर समाप्त हो जायँगी? वह न चाहती थी कि यह करुणापूर्ण गीत उसे सुनना पड़े। उसका मन कल्पना के पंख लगाकर उड़ रहा था। वह सुख के सपने देखती थी। ये दो वर्ष दो क्षणों की भाँति बीत गये। जगत न होता तो उसके एकान्त की सखी उदासी उसे इन बीते दिनों को, इन सुन्दर दृश्यों को इतना सुखद, इतना मनमोहक, इतना आकर्षक न लगने देती और शायद यह बंसीलाल, यह आवारा और निकम्मा बंसीलाल अपनी आहों से, व्यथित गीतों से और लम्बी निरर्थक चिट्ठियों से उसका जीवन दूभर कर देता। उसका सौभाग्य था कि उसके जीवन में जगत आ गया और ये दो वर्ष सुख से बीत गये। इकट्ठे उन्होंने परीक्षा की तैयारी की, इकट्ठे परिश्रम किया, इकट्ठे परीक्षा में बैठे और पास हुए और लता

चाहती थी, जीवन के शेष दिन भी दोनों मिलकर इसी प्रकार व्यतीत कर दें। इन दिनों की स्मृति कितनी उल्लासजनक, कितनी विस्मृतिमय थी!

लता के सामने आयी—लारेंस की एक सुबह—ठंडी-ठंडी वायु, ओस से भीगी हुई घास—देर तक दोनों नंगे पाँव घूमते रहे थे। आँखों में जैसे ताज़गी आ गयी थी। अन्त को थककर दोनों बेंच पर बैठ गये थे। नव-प्रभात के उज्ज्वल प्रकाश ने प्रकृति के मुख पर पड़ा हुआ घूँघट जैसे उठा दिया था, पर समीरण अभी उसके अलस प्रमाद को दूर न कर सका था। प्रत्येक वस्तु पर कुछ विचित्र प्रकार की तन्द्रा, कुछ अजीब-सा खुमार छाया हुआ था। छोटे-छोटे पौधों की आँखें जैसे निद्रा से अभी तक बन्द-सी थीं और जैसे वे समीर से कह रहे थे—ठहरो अभी कुछ देर और सो लेने दो। लता के बाल उन्मत्त बयार के झोंकों से उड़ रहे थे। उसकी साड़ी सिर से खिसककर बेंच पर और बेंच से घास पर आ रही थी। उस समय अचानक जगत ने उसका हाथ थाम लिया था और कहा था, "लता आज तो तुम प्रभात-सुन्दरी सी मोहक दिखायी देती हो और इसके बाद जैसे उसने लता के हाथ को ओठों तक ले जाने का प्रयास किया था। लता ने हाथ छुड़ा लिया था और साड़ी ठीक करते हुए सैण्डल पहनने लगी थी, फिर दोनों चुपचाप उठ आये थे। विक्टोरिया की मूर्ति के समीप लता अपने घर की ओर मुड़ी थी और जगत ने कहा था, "मेरी धृष्टता क्षमा करना।" और फिर वह धीरे-धीरे अपने रास्ते चला गया था।

बहस के दिन के बाद यही उनकी दूसरी भेंट थी। वह प्रातः सैर को जा रही थी कि जगत उस मूर्ति के पास उसे मिला था।

घर आने पर भी लता का दिल बहुत देर तक धड़कता रहा था।

इस घटना की याद आते ही आज भी उसका दिल धड़क उठा। दूसरे दिन वह उधर सैर को न गयी थी। उधर ही क्यों, वह किसी ओर सैर करने न गयी थी। एक-दो बार जी ने चाहा भी कि सैर को जाय, पर पाँवों में जैसे शक्ति ही न रही थी। कहाँ वह सुबह चार बजे ही उठ

खड़ी होती थी, कहाँ आठ बजे तक बिस्तर पर पड़ी करवटें लेती रही।

वह सैर को गयी तो न थी, पर सारा दिन जैसे न जाने पर उसे खेद होता रहा था। जगत के इस साहस पर उसके मन में जो क्रोध होना चाहिए था, वह तो वहाँ लेशमात्र भी न था। इसके विपरीत कल्पना-ही-कल्पना में उसने जगत को सैर के लिए जाते हुए, उसके न मिलने पर बैचेनी से उसे ढूँढ़ते हुए और फिर कहीं भी न पाकर धीमी चाल से वापस आते हुए देखा। कई बार उसके सामने वही दृश्य घूम गया, जब वे दोनों बेंच पर बैठे थे और जगत ने जैसे बे-काबू होकर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया था और कानों में उसके गूँज उठता, 'लता तुम तो प्रभात-सुन्दरी सी मोहक हो!' और गाल उसके लाल हो जाते और दिल उसका धक-धक करने लगता।

दूसरे दिन भी वह न गयी। जाना चाहती थी, पर न गयी। कोई विचित्र आकर्षण जैसे उसे लारेंस की ओर खींच रहा था। प्रातः के झुटपुटे में उसे जगत की आँखें—निराश, खोयी-खोयी-सी, फटी-फटी-सी, जैसे प्रत्यक्ष दिखायी दे रही थीं और जैसे उनमें कोई ऐसा आकर्षण था जो उसके शरीर के अणु-अणु को अपनी ओर खींच रहा था—पर वह न गयी। छुट्टियों के दिन थे। सारा दिन उखड़ी-उखड़ी इधर-उधर फिरती रही। जी बहलाने के लिए उसने गाना चाहा, पर दिल के सितार के बावले तार जैसे ढीले हो गये थे। मिज़राब की चोट उन पर पड़ती थी, बजते भी थे, पर स्वर में वह मनमोहक तान, वह जीवनदायक हिलोर कहाँ! गाना छोड़ उसने अपना एक अपूर्ण चित्र उठाया और उसे पूरा करने लगी, पर आज चित्र खींचने में भी उसका मन न लगा। हारकर वह उठ खड़ी हुई। सारा दिन इसी बेचैनी में बीत गया।

तीसरी सुबह वह समय पर उठी। जल्दी-जल्दी हाथ-मुँह धोकर बालों में कंघी करके, बढ़िया-सी साड़ी पहनकर सैर को निकल गयी। उसे आशा थी, जगत वहीं विक्टोरिया की मूर्ति के पास मिलेगा। वहाँ पहुँचते-पहुँचते उसके दिल की धड़कन तेज़ हो गयी। उसने चाहा

वापस लौट जाय, लेकिन पाँव उसे आगे लिये जाते थे। मूर्ति के पास जाकर उसने इधर-उधर निगाह दौड़ायी, घास के मैदान की ओर भी देखा, पर जगत कहीं न था और फिर यह सोचकर कि शायद वह अभी तक न आया हो, वह मूर्ति के पास टहलती रही। जब फिर भी जगत न आया और उधर प्राची की पलकों में स्वर्ण-विहान् ने अँगड़ाई ली तो वह लारेंस की ओर बढ़ी। बाग़ में पहुँचकर वह इधर-उधर सब ओर घूमी, जब वह कहीं भी दिखायी न दिया तो थककर बेंच पर बैठ गयी।

बाल-अरुण अपनी सुनहरी किरणें पेड़, पौधों, लताओं और कुंजों पर फैला रहा था। ठंडी-ठंडी सरस हवा चल रही थी। प्रकृति के कण-कण में मानो नव-जीवन का संचार हो रहा था, पर लता के लिए जैसे उस सौंदर्य में कोई आकर्षण न रहा था। मौन, निस्तब्ध बैठी हुई वह शून्य में देखती रही थी—कालेज की बहस के दिन ही से उसके हृदय के किसी कोने में जगत का चित्र अंकित हो गया था और वह अपने अन्तर में उसके लिए एक उत्कट कामना, एक तीव्र अभिलाषा पाती थी। कुछ देर बैठने के बाद एक लम्बी साँस छोड़कर वह उठी और घर की ओर चल दी। आयी थी तो उसे कितनी उत्सुकता थी, कितनी जल्दी थी जैसे आशा उसे अपने पंखों पर बैठाये हुए उड़ाये लिये आयी थी और जा रही थी तो कितनी अन्यमनस्क, कितनी निराश जैसे आशा के पंख कट गये थे।

अभी वह दरवाजे पर ही थी कि सामने कुछ दूरी पर उसे वही जानी-पहचानी प्यारी सूरत आती दिखायी दी। उसका दिल धड़क उठा और दूसरे क्षण उसने देखा—जगत ही है। वह तेज़ी से उसके पास से गुज़रने लगी। जगत ने धीरे से कहा, "लता इतनी बेरुख़ी!"

लता रुकी और फिर उसने हँसकर कहा, "ओ हो! जगत हैं, क्षमा करना, मैंने देखा नहीं।"

"हाँ, क्यों देखने लगीं," जगत ने दीर्घ-निःश्वास छोड़ा।

खड़ी होती थी, कहाँ आठ बजे तक बिस्तर पर पड़ी करवटें लेती रही।

वह सैर को गयी तो न थी, पर सारा दिन जैसे न जाने पर उसे खेद होता रहा था। जगत के इस साहस पर उसके मन में जो क्रोध होना चाहिए था, वह तो वहाँ लेशमात्र भी न था। इसके विपरीत कल्पना-ही-कल्पना में उसने जगत को सैर के लिए जाते हुए, उसके न मिलने पर बैचैनी से उसे ढूँढ़ते हुए और फिर कहीं भी न पाकर धीमी चाल से वापस आते हुए देखा। कई बार उसके सामने वही दृश्य घूम गया, जब वे दोनों बैंच पर बैठे थे और जगत ने जैसे बे-काबू होकर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया था और कानों में उसके गूँज उठता, 'लता तुम तो प्रभात-सुन्दरी सी मोहक हो!' और गाल उसके लाल हो जाते और दिल उसका धक-धक करने लगता।

दूसरे दिन भी वह न गयी। जाना चाहती थी, पर न गयी। कोई विचित्र आकर्षण जैसे उसे लारेंस की ओर खींच रहा था। प्रातः के झुटपुटे में उसे जगत की आँखें—निराश, खोयी-खोयी-सी, फटी-फटी-सी, जैसे प्रत्यक्ष दिखायी दे रही थीं और जैसे उनमें कोई ऐसा आकर्षण था जो उसके शरीर के अणु-अणु को अपनी ओर खींच रहा था—पर वह न गयी। छुट्टियों के दिन थे। सारा दिन उखड़ी-उखड़ी इधर-उधर फिरती रही। जी बहलाने के लिए उसने गाना चाहा, पर दिल के सितार के बावले तार जैसे ढीले हो गये थे। मिज़राब की चोट उन पर पड़ती थी, बजते भी थे, पर स्वर में वह मनमोहक तान, वह जीवनदायक हिलोर कहाँ ? गाना छोड़ उसने अपना एक अपूर्ण चित्र उठाया और उसे पूरा करने लगी, पर आज चित्र खींचने में भी उसका मन न लगा। हारकर वह उठ खड़ी हुई। सारा दिन इसी बेचैनी में बीत गया।

तीसरी सुबह वह समय पर उठी। जल्दी-जल्दी हाथ-मुँह धोकर बालों में कंघी करके, बढ़िया-सी साड़ी पहनकर सैर को निकल गयी। उसे आशा थी, जगत वहीं विक्टोरिया की मूर्ति के पास मिलेगा। वहाँ पहुँचते-पहुँचते उसके दिल की धड़कन तेज़ हो गयी। उसने चाहा

वापस लौट जाय, लेकिन पाँव उसे आगे लिये जाते थे। मूर्ति के पास जाकर उसने इधर-उधर निगाह दौड़ायी, घास के मैदान की ओर भी देखा, पर जगत कहीं न था और फिर यह सोचकर कि शायद वह अभी तक न आया हो, वह मूर्ति के पास टहलती रही। जब फिर भी जगत न आया और उधर प्राची की पलकों में स्वर्ण-विहान् ने अँगड़ाई ली तो वह लारेंस की ओर बढ़ी। बाग़ में पहुँचकर वह इधर-उधर सब ओर घूमी, जब वह कहीं भी दिखायी न दिया तो थककर बेंच पर बैठ गयी।

बाल-अरुण अपनी सुनहरी किरणें पेड़, पौधों, लताओं और कुंजों पर फैला रहा था। ठंडी-ठंडी सरस हवा चल रही थी। प्रकृति के कण-कण में मानो नव-जीवन का संचार हो रहा था, पर लता के लिए जैसे उस सौंदर्य में कोई आकर्षण न रहा था। मौन, निस्तब्ध बैठी हुई वह शून्य में देखती रही थी—कालेज की बहस के दिन ही से उसके हृदय के किसी कोने में जगत का चित्र अंकित हो गया था और वह अपने अन्तर में उसके लिए एक उत्कट कामना, एक तीव्र अभिलाषा पाती थी। कुछ देर बैठने के बाद एक लम्बी साँस छोड़कर वह उठी और घर की ओर चल दी। आयी थी तो उसे कितनी उत्सुकता थी, कितनी जल्दी थी जैसे आशा उसे अपने पंखों पर बैठाये हुए उड़ाये लिये आयी थी और जा रही थी तो कितनी अन्यमनस्क, कितनी निराश जैसे आशा के पंख कट गये थे।

अभी वह दरवाजे पर ही थी कि सामने कुछ दूरी पर उसे वही जानी-पहचानी प्यारी सूरत आती दिखायी दी। उसका दिल धड़क उठा और दूसरे क्षण उसने देखा—जगत ही है। वह तेज़ी से उसके पास से गुज़रने लगी। जगत ने धीरे से कहा, "लता इतनी बेरुख़ी!"

लता रुकी और फिर उसने हँसकर कहा, "ओ हो! जगत हैं, क्षमा करना, मैंने देखा नहीं।"

"हाँ, क्यों देखने लगीं," जगत ने दीर्घ-निःश्वास छोड़ा।

लता जैसे घबरा गयी। इस अवसर के लिए वह कब तैयार थी ? तेज़ी से वह जाने लगी। जगत ने हाथ पकड़ लिया, बोला, "कुछ देर और न ठहरोगी लता ?"

वह मुड़ी, क्या कहे, क्या बहाना बनाये, उसे कुछ सूझ न पाया।

जगत ने कहा, "लता जानती हो मैं छुट्टियों में भी क्यों अपने गाँव नहीं गया, लेकिन जाने दो, तुम्हें किसी के दुःख-दर्द से क्या ? तुम तो अपने रंग में मस्त हो !"

दोनों कुछ देर चुपचाप चलते रहे।

फिर जगत बोला, "दो दिन से प्रातःकाल ही आकर तुम्हारी बाट जोहता रहा हूँ लता, पर तुम्हारी सूरत दिखायी न दी। आज निराश होकर गाँव चला जाना चाहता था, पर फिर दिल इधर खींच लाया।"

लता बोली नहीं, पर उसके हृदय की सब उदासी, सब निराशा जैसे पंख लगाकर उड़ गयी और एक नवीन उल्लास से उसका तन-मन विभोर हो उठा। जगत ने कहा, "उस दिन की भूल के लिए मैं क्षमा माँगता हूँ लता, पर मैं क्या करूँ, जी कुछ बेकाबू हो गया। अब ऐसा न होगा।"

और फिर दोनों बाग़ की रविशों पर टहलते रहे थे और जब थककर बेंच पर बैठे थे और जगत ने लता के हाथ पर अपना हाथ फेरते हुए उसे उठाकर ओठों से लगा लिया था तो वह कुछ भी न कह सकी थी......।

पानी के छींटों से उसका मुँह अचानक भीग गया। वह चौंकी और जगत का ठहाका नदी के पानियों पर गूँज गया। "तुम क्या सोच रही हो ?" वह बोला।

लता केवल मुस्करायी। नाव बहाव पर काफी दूर निकल आयी थी। जगत ने कहा, "मैं तो बंसीलाल का गीत सुन रहा था, लेकिन तुम......?"

"मैं भी यही गीत सुन रही थी।" लता ने कहा।

"झूठ!"—जगत हँसा और फिर उसने कमीज़ की आस्तीनें चढ़ा लीं और चप्पू चलाते हुए फिर किश्ती को वापस ले चला। लता फिर अपने विचारों की दुनिया में खो गयी—वे सुनहले प्रभात, वे धूमिल संध्याएँ और वे सुखद उत्फुल्ल मध्याह्न, सब उसकी आँखों के सामने घूम गये—साथ-साथ वे पढ़े, साथ-साथ उन्होंने परीक्षा दी, साथ-साथ पास हो गये। इस बीच में उसने अपने आप पर पूरा-पूरा नियंत्रण रखा था और जगत को संयत रहने पर बाधित किया था, पर अब तो जैसे उसकी रूह तड़प रही थी, उसका रोम-रोम जगत के साथ एक हो जाने के लिए बेचैन था। नाव एक झटके के साथ किनारे से लगी। चौंककर लता उठ खड़ी हुई। जगत ने उसका बाज़ू थामकर उसे उतारा। दोनों घर की ओर चल दिये। बंसीलाल कहीं अब भी गा रहा था:

लहरों पै बहे जाओ,
तुम दर्द मेरा जानो, जो दर्द कहीं पाओ।

लता को लगा जैसे यह आवाज, बंसीलाल की तड़पती हुई रूह की तरह, उसकी परेशान निगाहों की तरह, उसका पीछा कर रही है।

—०—

६

अन्दर लता के पिता और जगत बातें कर रहे थे और बाहर लता सिर से पाँव तक कान बनी खड़ी थी।

आज साँझ को जब वे दोनों वापस आये थे तो नौकर के हाथ लता के पिता ने जगत को बुलवा भेजा था। जगत के जाने पर लता सोचने लगी थी—कौन सी ऐसी बात है जो पिता जी मेरी अनुपस्थिति में जगत से कहना चाहते हैं। उसके जी में आया, जाकर सुने क्या बात है! लेकिन दूसरे क्षण उसकी आत्मा ने उसे धिक्कारा—जब उन्होंने अकेले जगत को बुलाया तो अवश्य ही कोई ऐसी बात होगी, जो वे

उससे छिपाना चाहते होंगे। उसे छिपकर उनकी बातें न सुननी चाहिएँ। वह उठने वाली थी कि फिर बैठ गयी, पर वह बहुत देर तक बैठी न रह सकी। उसकी उत्सुकता को मानो पंख लग गये थे। उसका तन वहाँ बैठा था, पर उसका मन मानो उड़कर उनकी बातें सुन रहा था। सहज ज्ञान से जैसे उसने जान लिया कि ये बातें उसी से सम्बन्ध रखती हैं। फिर वह उन्हें क्यों न सुने? आत्मा ने कहा—ऐसा करना बुरा है, यहाँ बैठी रहो, जगत आये तो उससे पूछ लेना। दिल बोला—हो सकता है उन्होंने योंही बुला भेजा हो, फिर जाने में क्या हर्ज है। दरवाजे की ओट से सुन लूँगी, यदि बातें मेरे ही सम्बन्ध में हुईं तो वापस आ जाऊँगी, और यदि उन्होंने योंही बुला भेजा होगा तो फिर क्या बात है, अन्दर चली जाऊँगी। आखिर यहाँ चुप-चाप बैठी भी क्या कर रही हूँ?—और दिल की बात मानकर ही वह नीचे आ गयी थी और उनके कमरे के बाहर खड़ी होकर अन्दर की बातें सुनने लगी थी।

लता के पिता कह रहे थे, "तुमने देखा, मैं कितने उदार विचारों का आदमी हूँ। मैं यह नहीं कहता कि मुझ जैसा आज़ाद ख़याल आदमी सारे लाहौर में न होगा; पर मैं इतना कह सकता हूँ कि मैं उन चन्द व्यक्तियों में से हूँ जो काफ़ी उदार विचारों के हैं। मैंने लता को उच्च-शिक्षा दी है। उसके व्यक्तिगत विचारों का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। उसे अनावश्यक बन्धनों में जकड़ने का प्रयास नहीं किया। उसे पूरी-पूरी स्वतन्त्रता दी है। एक बात और भी मैंने की, जो शायद कोई दूसरा पिता नहीं करता। मैंने उसे अपने सामने बैठाकर दुनिया का ऊँच-नीच समझा दिया है, अपनी समझ के अनुसार मैंने उन सब समस्याओं के सम्बन्ध में, जो एक आज़ाद-ख़याल लड़की को पेश आ सकती हैं, उसे कुछ-न-कुछ बता दिया है। अब इस मामले में भी मैंने उसे पूरी स्वतन्त्रता दे रखी है। लगभग डेढ़-दो वर्ष से तुम दोनों ने एक दूसरे को देखा है, एक दूसरे के स्वभाव को पहचाना है,

मैंने किसी तरह की रुकावट नहीं डाली, किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया। अब जो मैंने यह बात तुम से पूछी है, इसके विशेष कारण हैं।"

जगत केवल खाँसा और क्षणिक आकुलता से उसने चेहरे पर रूमाल फेरा।

अपनी बात जारी रखते हुए लता के पिता ने कहा, "पहले तो यह कि मैं सब प्रकार की स्वच्छन्दता को मानता हुआ भी विवाह की संस्था में विश्वास रखता हूँ। शायद कोई इसे वंश-वृद्धि के लिए आवश्यक समझता हो, शायद कोई मानव-प्रकृति के नियमों का पालन करने के लिए इसे आवश्यक मानता हो, यह भी हो सकता है कि तीसरा इसके लिए कोई तीसरी ही दलील दे, पर मेरे समीप तो समाज और समाज की सुव्यवस्था के लिए ही विवाह की संस्था अत्यावश्यक है। मनुष्य की शक्तियों को बिखर जाने से, बँट जाने से बचाने के लिए इसकी जरूरत है। उत्तरदायित्व और उसकी अनुभूति ही मनुष्य को मनुष्य बनाती हैं और शादी के बाद स्त्री-पुरुष उत्तरदायित्व का पहला पाठ पढ़ते हैं। अविवाहित पुरुष की दशा गाड़ी से खुले हुए बैल की-सी है। वह औरों की खेतियों में मुँह मारेगा, पकड़ा जायगा, पीटा जायगा। शादी मनुष्य की गर्दन में उत्तरदायित्व का जुआ डाल देती है और वह पहले से संयत हो जाता है। जो लोग स्वतंत्र, सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर, जीवन बिताने के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं, उनसे अधिक ग़ैर-ज़िम्मेदार मैं किसी को नहीं समझता। वह उत्तरदायित्व से डरते हैं, जीवन-युद्ध से डरते हैं, वे कायर हैं, भीरु हैं। वे आयु भर जीवन की समस्त लज़्ज़तों को भोगकर भी बहुत से आनन्द से वंचित रह जाते हैं। वे अपने आप को अनुभवी समझते हुए भी काफ़ी अनुभवहीन होते हैं।"

"तुम शायद सोच रहे होगे," लता के पिता ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "कि रूस ने विवाह की संस्था हटा दी है। तो भाई, अव्वल तो कोई ठीक-ठीक नहीं जानता कि वहाँ की स्थिति क्या है। फिर

उससे छिपाना चाहते होंगे। उसे छिपकर उनकी बातें न सुननी चाहिएँ। वह उठने वाली थी कि फिर बैठ गयी, पर वह बहुत देर तक बैठी न रह सकी। उसकी उत्सुकता को मानो पंख लग गये थे। उसका तन वहाँ बैठा था, पर उसका मन मानो उड़कर उनकी बातें सुन रहा था। सहज ज्ञान से जैसे उसने जान लिया कि ये बातें उसी से सम्बन्ध रखती हैं। फिर वह उन्हें क्यों न सुने ? आत्मा ने कहा—ऐसा करना बुरा है, यहाँ बैठी रहो, जगत आये तो उससे पूछ लेना। दिल बोला—हो सकता है उन्होंने योंही बुला भेजा हो, फिर जाने में क्या हर्ज है। दरवाजे की ओट से सुन लूँगी, यदि बातें मेरे ही सम्बन्ध में हुई तो वापस आ जाऊँगी, और यदि उन्होंने योंही बुला भेजा होगा तो फिर क्या बात है, अन्दर चली जाऊँगी। आखिर यहाँ चुप-चाप बैठी भी क्या कर रही हूँ ?—और दिल की बात मानकर ही वह नीचे आ गयी थी और उनके कमरे के बाहर खड़ी होकर अन्दर की बातें सुनने लगी थी।

लता के पिता कह रहे थे, "तुमने देखा, मैं कितने उदार विचारों का आदमी हूँ। मैं यह नहीं कहता कि मुझ जैसा आज़ाद ख़याल आदमी सारे लाहौर में न होगा; पर मैं इतना कह सकता हूँ कि मैं उन चन्द व्यक्तियों में से हूँ जो काफ़ी उदार विचारों के हैं। मैंने लता को उच्च-शिक्षा दी है। उसके व्यक्तिगत विचारों का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। उसे अनावश्यक बन्धनों में जकड़ने का प्रयास नहीं किया। उसे पूरी-पूरी स्वतन्त्रता दी है। एक बात और भी मैंने की, जो शायद कोई दूसरा पिता नहीं करता। मैंने उसे अपने सामने बैठाकर दुनिया का ऊँच-नीच समझा दिया है, अपनी समझ के अनुसार मैंने उन सब समस्याओं के सम्बन्ध में, जो एक आज़ाद-ख़याल लड़की को पेश आ सकती हैं, उसे कुछ-न-कुछ बता दिया है। अब इस मामले में भी मैंने उसे पूरी स्वतन्त्रता दे रखी है। लगभग डेढ़-दो वर्ष से तुम दोनों ने एक दूसरे को देखा है, एक दूसरे के स्वभाव को पहचाना है,

मैंने किसी तरह की रुकावट नहीं डाली, किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया। अब जो मैंने यह बात तुम से पूछी है, इसके विशेष कारण हैं।"

जगत केवल खाँसा और क्षणिक आकुलता से उसने चेहरे पर रूमाल फेरा।

अपनी बात जारी रखते हुए लता के पिता ने कहा, "पहले तो यह कि मैं सब प्रकार की स्वच्छन्दता को मानता हुआ भी विवाह की संस्था में विश्वास रखता हूँ। शायद कोई इसे वंश-वृद्धि के लिए आवश्यक समझता हो, शायद कोई मानव-प्रकृति के नियमों का पालन करने के लिए इसे आवश्यक मानता हो, यह भी हो सकता है कि तीसरा इसके लिए कोई तीसरी ही दलील दे, पर मेरे समीप तो समाज और समाज की सुव्यवस्था के लिए ही विवाह की संस्था अत्यावश्यक है। मनुष्य की शक्तियों को बिखर जाने से, बँट जाने से बचाने के लिए इसकी जरूरत है। उत्तरदायित्व और उसकी अनुभूति ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है और शादी के बाद स्त्री-पुरुष उत्तरदायित्व का पहला पाठ पढ़ते हैं। अविवाहित पुरुष की दशा गाड़ी से खुले हुए बैल की-सी है। वह औरों की खेतियों में मुँह मारेगा, पकड़ा जायगा, पीटा जायगा। शादी मनुष्य की गर्दन में उत्तरदायित्व का जुआ डाल देती है और वह पहले से संयत हो जाता है। जो लोग स्वतंत्र, सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर, जीवन बिताने के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं, उनसे अधिक ग़ैर-ज़िम्मेदार मैं किसी को नहीं समझता। वह उत्तरदायित्व से डरते हैं, जीवन-युद्ध से डरते हैं, वे कायर हैं, भीरु हैं। वे आयु भर जीवन की समस्त लज़्ज़तों को भोगकर भी बहुत से आनन्द से वंचित रह जाते हैं। वे अपने आप को अनुभवी समझते हुए भी काफ़ी अनुभवहीन होते हैं।"

"तुम शायद सोच रहे होगे," लता के पिता ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "कि रूस ने विवाह की संस्था हटा दी है। तो भाई, अव्वल तो कोई ठीक-ठीक नहीं जानता कि वहाँ की स्थिति क्या है। फिर

उससे छिपाना चाहते होंगे। उसे छिपकर उनकी बातें न सुननी चाहिएँ। वह उठने वाली थी कि फिर बैठ गयी, पर वह बहुत देर तक बैठी न रह सकी। उसकी उत्सुकता को मानो पंख लग गये थे। उसका तन वहाँ बैठा था, पर उसका मन मानो उड़कर उनकी बातें सुन रहा था। सहज ज्ञान से जैसे उसने जान लिया कि ये बातें उसी से सम्बन्ध रखती हैं। फिर वह उन्हें क्यों न सुने? आत्मा ने कहा—ऐसा करना बुरा है, यहाँ बैठी रहो, जगत आये तो उससे पूछ लेना। दिल बोला—हो सकता है उन्होंने योंही बुला भेजा हो, फिर जाने में क्या हर्ज है। दरवाजे की ओट से सुन लूँगी, यदि बातें मेरे ही सम्बन्ध में हुईं तो वापस आ जाऊँगी, और यदि उन्होंने योंही बुला भेजा होगा तो फिर क्या बात है, अन्दर चली जाऊँगी। आखिर यहाँ चुपचाप बैठी भी क्या कर रही हूँ?—और दिल की बात मानकर ही वह नीचे आ गयी थी और उनके कमरे के बाहर खड़ी होकर अन्दर की बातें सुनने लगी थी।

लता के पिता कह रहे थे, "तुमने देखा, मैं कितने उदार विचारों का आदमी हूँ। मैं यह नहीं कहता कि मुझ जैसा आज़ाद ख़याल आदमी सारे लाहौर में न होगा; पर मैं इतना कह सकता हूँ कि मैं उन चन्द व्यक्तियों में से हूँ जो काफ़ी उदार विचारों के हैं। मैंने लता को उच्च-शिक्षा दी है। उसके व्यक्तिगत विचारों का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। उसे अनावश्यक बन्धनों में जकड़ने का प्रयास नहीं किया। उसे पूरी-पूरी स्वतन्त्रता दी है। एक बात और भी मैंने की, जो शायद कोई दूसरा पिता नहीं करता। मैंने उसे अपने सामने बैठाकर दुनिया का ऊँच-नीच समझा दिया है, अपनी समझ के अनुसार मैंने उन सब समस्याओं के सम्बन्ध में, जो एक आज़ाद-ख़याल लड़की को पेश आ सकती हैं, उसे कुछ-न-कुछ बता दिया है। अब इस मामले में भी मैंने उसे पूरी स्वतन्त्रता दे रखी है। लगभग डेढ़-दो वर्ष से तुम दोनों ने एक दूसरे को देखा है, एक दूसरे के स्वभाव को पहचाना है,

मैंने किसी तरह की रुकावट नहीं डाली, किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया। अब जो मैंने यह बात तुम से पूछी है, इसके विशेष कारण हैं।"

जगत केवल खाँसा और क्षणिक आकुलता से उसने चेहरे पर रूमाल फेरा।

अपनी बात जारी रखते हुए लता के पिता ने कहा, "पहले तो यह कि मैं सब प्रकार की स्वच्छन्दता को मानता हुआ भी विवाह की संस्था में विश्वास रखता हूँ। शायद कोई इसे वंश-वृद्धि के लिए आवश्यक समझता हो, शायद कोई मानव-प्रकृति के नियमों का पालन करने के लिए इसे आवश्यक मानता हो, यह भी हो सकता है कि तीसरा इसके लिए कोई तीसरी ही दलील दे, पर मेरे समीप तो समाज और समाज की सुव्यवस्था के लिए ही विवाह की संस्था अत्यावश्यक है। मनुष्य की शक्तियों को बिखर जाने से, बँट जाने से बचाने के लिए इसकी जरूरत है। उत्तरदायित्व और उसकी अनुभूति ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है और शादी के बाद स्त्री-पुरुष उत्तरदायित्व का पहला पाठ पढ़ते हैं। अविवाहित पुरुष की दशा गाड़ी से खुले हुए बैल की-सी है। वह औरों की खेतियों में मुँह मारेगा, पकड़ा जायगा, पीटा जायगा। शादी मनुष्य की गर्दन में उत्तरदायित्व का जुआ डाल देती है और वह पहले से संयत हो जाता है। जो लोग स्वतंत्र, सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर, जीवन बिताने के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं, उनसे अधिक ग़ैर-ज़िम्मेदार मैं किसी को नहीं समझता। वह उत्तरदायित्व से डरते हैं, जीवन-युद्ध से डरते हैं, वे कायर हैं, भीरु हैं। वे आयु भर जीवन की समस्त लज़्ज़तों को भोगकर भी बहुत से आनन्द से वंचित रह जाते हैं। वे अपने आप को अनुभवी समझते हुए भी काफ़ी अनुभवहीन होते हैं।"

"तुम शायद सोच रहे होगे," लता के पिता ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "कि रूस ने विवाह की संस्था हटा दी है। तो भाई, अव्वल तो कोई ठीक-ठीक नहीं जानता कि वहाँ की स्थिति क्या है। फिर

उससे छिपाना चाहते होंगे। उसे छिपकर उनकी बातें न सुननी चाहिएँ। वह उठने वाली थी कि फिर बैठ गयी, पर वह बहुत देर तक बैठी न रह सकी। उसकी उत्सुकता को मानो पंख लग गये थे। उसका तन वहाँ बैठा था, पर उसका मन मानो उड़कर उनकी बातें सुन रहा था। सहज ज्ञान से जैसे उसने जान लिया कि ये बातें उसी से सम्बन्ध रखती हैं। फिर वह उन्हें क्यों न सुने? आत्मा ने कहा—ऐसा करना बुरा है, यहाँ बैठी रहो, जगत आये तो उससे पूछ लेना। दिल बोला—हो सकता है उन्होंने योंही बुला भेजा हो, फिर जाने में क्या हर्ज है। दरवाजे की ओट से सुन लूँगी, यदि बातें मेरे ही सम्बन्ध में हुईं तो वापस आ जाऊँगी, और यदि उन्होंने योंही बुला भेजा होगा तो फिर क्या बात है, अन्दर चली जाऊँगी। आखिर यहाँ चुप-चाप बैठी भी क्या कर रही हूँ?—और दिल की बात मानकर ही वह नीचे आ गयी थी और उनके कमरे के बाहर खड़ी होकर अन्दर की बातें सुनने लगी थी।

लता के पिता कह रहे थे, "तुमने देखा, मैं कितने उदार विचारों का आदमी हूँ। मैं यह नहीं कहता कि मुझ जैसा आज़ाद ख़याल आदमी सारे लाहौर में न होगा; पर मैं इतना कह सकता हूँ कि मैं उन चन्द व्यक्तियों में से हूँ जो काफ़ी उदार विचारों के हैं। मैंने लता को उच्च-शिक्षा दी है। उसके व्यक्तिगत विचारों का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। उसे अनावश्यक बन्धनों में जकड़ने का प्रयास नहीं किया। उसे पूरी-पूरी स्वतन्त्रता दी है। एक बात और भी मैंने की, जो शायद कोई दूसरा पिता नहीं करता। मैंने उसे अपने सामने बैठाकर दुनिया का ऊँच-नीच समझा दिया है, अपनी समझ के अनुसार मैंने उन सब समस्याओं के सम्बन्ध में, जो एक आज़ाद-ख़याल लड़की को पेश आ सकती हैं, उसे कुछ-न-कुछ बता दिया है। अब इस मामले में भी मैंने उसे पूरी स्वतन्त्रता दे रखी है। लगभग डेढ़-दो वर्ष से तुम दोनों ने एक दूसरे को देखा है, एक दूसरे के स्वभाव को पहचाना है,

मैंने किसी तरह की रुकावट नहीं डाली, किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया। अब जो मैंने यह बात तुम से पूछी है, इसके विशेष कारण हैं।"

जगत केवल खाँसा और क्षणिक आकुलता से उसने चेहरे पर रूमाल फेरा।

अपनी बात जारी रखते हुए लता के पिता ने कहा, "पहले तो यह कि मैं सब प्रकार की स्वच्छन्दता को मानता हुआ भी विवाह की संस्था में विश्वास रखता हूँ। शायद कोई इसे वंश-वृद्धि के लिए आवश्यक समझता हो, शायद कोई मानव-प्रकृति के नियमों का पालन करने के लिए इसे आवश्यक मानता हो, यह भी हो सकता है कि तीसरा इसके लिए कोई तीसरी ही दलील दे, पर मेरे समीप तो समाज और समाज की सुव्यवस्था के लिए ही विवाह की संस्था अत्यावश्यक है। मनुष्य की शक्तियों को बिखर जाने से, बँट जाने से बचाने के लिए इसकी जरूरत है। उत्तरदायित्व और उसकी अनुभूति ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है और शादी के बाद स्त्री-पुरुष उत्तरदायित्व का पहला पाठ पढ़ते हैं। अविवाहित पुरुष की दशा गाड़ी से खुले हुए बैल की-सी है। वह औरों की खेतियों में मुँह मारेगा, पकड़ा जायगा, पीटा जायगा। शादी मनुष्य की गर्दन में उत्तरदायित्व का जुआ डाल देती है और वह पहले से संयत हो जाता है। जो लोग स्वतंत्र, सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर, जीवन बिताने के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं, उनसे अधिक ग़ैर-ज़िम्मेदार मैं किसी को नहीं समझता। वह उत्तरदायित्व से डरते हैं, जीवन-युद्ध से डरते हैं, वे कायर हैं, भीरु हैं। वे आयु भर जीवन की समस्त लज़्ज़तों को भोगकर भी बहुत से आनन्द से वंचित रह जाते हैं। वे अपने आप को अनुभवी समझते हुए भी काफ़ी अनुभवहीन होते हैं।"

"तुम शायद सोच रहे होगे," लता के पिता ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "कि रूस ने विवाह की संस्था हटा दी है। तो भाई, अव्वल तो कोई ठीक-ठीक नहीं जानता कि वहाँ की स्थिति क्या है। फिर

उससे छिपाना चाहते होंगे। उसे छिपकर उनकी बातें न सुननी चाहिएँ। वह उठने वाली थी कि फिर बैठ गयी, पर वह बहुत देर तक बैठी न रह सकी। उसकी उत्सुकता को मानो पंख लग गये थे। उसका तन वहाँ बैठा था, पर उसका मन मानो उड़कर उनकी बातें सुन रहा था। सहज ज्ञान से जैसे उसने जान लिया कि ये बातें उसी से सम्बन्ध रखती हैं। फिर वह उन्हें क्यों न सुने? आत्मा ने कहा—ऐसा करना बुरा है, यहाँ बैठी रहो, जगत आये तो उससे पूछ लेना। दिल बोला—हो सकता है उन्होंने योंही बुला भेजा हो, फिर जाने में क्या हर्ज है। दरवाजे की ओट से सुन लूँगी, यदि बातें मेरे ही सम्बन्ध में हुई तो वापस आ जाऊँगी, और यदि उन्होंने योंही बुला भेजा होगा तो फिर क्या बात है, अन्दर चली जाऊँगी। आखिर यहाँ चुप-चाप बैठी भी क्या कर रही हूँ?—और दिल की बात मानकर ही वह नीचे आ गयी थी और उनके कमरे के बाहर खड़ी होकर अन्दर की बातें सुनने लगी थी।

लता के पिता कह रहे थे, "तुमने देखा, मैं कितने उदार विचारों का आदमी हूँ। मैं यह नहीं कहता कि मुझ जैसा आज़ाद ख़याल आदमी सारे लाहौर में न होगा; पर मैं इतना कह सकता हूँ कि मैं उन चन्द व्यक्तियों में से हूँ जो काफ़ी उदार विचारों के हैं। मैंने लता को उच्च-शिक्षा दी है। उसके व्यक्तिगत विचारों का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। उसे अनावश्यक बन्धनों में जकड़ने का प्रयास नहीं किया। उसे पूरी-पूरी स्वतन्त्रता दी है। एक बात और भी मैंने की, जो शायद कोई दूसरा पिता नहीं करता। मैंने उसे अपने सामने बैठाकर दुनिया का ऊँच-नीच समझा दिया है, अपनी समझ के अनुसार मैंने उन सब समस्याओं के सम्बन्ध में, जो एक आज़ाद-ख़याल लड़की को पेश आ सकती हैं, उसे कुछ-न-कुछ बता दिया है। अब इस मामले में भी मैंने उसे पूरी स्वतन्त्रता दे रखी है। लगभग डेढ़-दो वर्ष से तुम दोनों ने एक दूसरे को देखा है, एक दूसरे के स्वभाव को पहचाना है,

मैंने किसी तरह की रुकावट नहीं डाली, किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया। अब जो मैंने यह बात तुम से पूछी है, इसके विशेष कारण हैं।"

जगत केवल खाँसा और क्षणिक आकुलता से उसने चेहरे पर रूमाल फेरा।

अपनी बात जारी रखते हुए लता के पिता ने कहा, "पहले तो यह कि मैं सब प्रकार की स्वच्छन्दता को मानता हुआ भी विवाह की संस्था में विश्वास रखता हूँ। शायद कोई इसे वंश-वृद्धि के लिए आवश्यक समझता हो, शायद कोई मानव-प्रकृति के नियमों का पालन करने के लिए इसे आवश्यक मानता हो, यह भी हो सकता है कि तीसरा इसके लिए कोई तीसरी ही दलील दे, पर मेरे समीप तो समाज और समाज की सुव्यवस्था के लिए ही विवाह की संस्था अत्यावश्यक है। मनुष्य की शक्तियों को बिखर जाने से, बँट जाने से बचाने के लिए इसकी जरूरत है। उत्तरदायित्व और उसकी अनुभूति ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है और शादी के बाद स्त्री-पुरुष उत्तरदायित्व का पहला पाठ पढ़ते हैं। अविवाहित पुरुष की दशा गाड़ी से खुले हुए बैल की-सी है। वह औरों की खेतियों में मुँह मारेगा, पकड़ा जायगा, पीटा जायगा। शादी मनुष्य की गर्दन में उत्तरदायित्व का जुआ डाल देती है और वह पहले से संयत हो जाता है। जो लोग स्वतंत्र, सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर, जीवन बिताने के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं, उनसे अधिक ग़ैर-ज़िम्मेदार मैं किसी को नहीं समझता। वह उत्तरदायित्व से डरते हैं, जीवन-युद्ध से डरते हैं, वे कायर हैं, भीरु हैं। वे आयु भर जीवन की समस्त लज़्ज़तों को भोगकर भी बहुत से आनन्द से वंचित रह जाते हैं। वे अपने आप को अनुभवी समझते हुए भी काफ़ी अनुभवहीन होते हैं।"

"तुम शायद सोच रहे होगे," लता के पिता ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "कि रूस ने विवाह की संस्था हटा दी है। तो भाई, अव्वल तो कोई ठीक-ठीक नहीं जानता कि वहाँ की स्थिति क्या है। फिर

उससे छिपाना चाहते होंगे। उसे छिपकर उनकी बातें न सुननी चाहिएँ। वह उठने वाली थी कि फिर बैठ गयी, पर वह बहुत देर तक बैठी न रह सकी। उसकी उत्सुकता को मानो पंख लग गये थे। उसका तन वहाँ बैठा था, पर उसका मन मानो उड़कर उनकी बातें सुन रहा था। सहज ज्ञान से जैसे उसने जान लिया कि ये बातें उसी से सम्बन्ध रखती हैं। फिर वह उन्हें क्यों न सुने? आत्मा ने कहा—ऐसा करना बुरा है, यहाँ बैठी रहो, जगत आये तो उससे पूछ लेना। दिल बोला—हो सकता है उन्होंने योंही बुला भेजा हो, फिर जाने में क्या हर्ज है। दरवाजे की ओट से सुन लूँगी, यदि बातें मेरे ही सम्बन्ध में हुईं तो वापस आ जाऊँगी, और यदि उन्होंने योंही बुला भेजा होगा तो फिर क्या बात है, अन्दर चली जाऊँगी। आखिर यहाँ चुपचाप बैठी भी क्या कर रही हूँ?—और दिल की बात मानकर ही वह नीचे आ गयी थी और उनके कमरे के बाहर खड़ी होकर अन्दर की बातें सुनने लगी थी।

लता के पिता कह रहे थे, "तुमने देखा, मैं कितने उदार विचारों का आदमी हूँ। मैं यह नहीं कहता कि मुझ जैसा आज़ाद ख़याल आदमी सारे लाहौर में न होगा; पर मैं इतना कह सकता हूँ कि मैं उन चन्द व्यक्तियों में से हूँ जो काफ़ी उदार विचारों के हैं। मैंने लता को उच्च-शिक्षा दी है। उसके व्यक्तिगत विचारों का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। उसे अनावश्यक बन्धनों में जकड़ने का प्रयास नहीं किया। उसे पूरी-पूरी स्वतन्त्रता दी है। एक बात और भी मैंने की, जो शायद कोई दूसरा पिता नहीं करता। मैंने उसे अपने सामने बैठाकर दुनिया का ऊँच-नीच समझा दिया है, अपनी समझ के अनुसार मैंने उन सब समस्याओं के सम्बन्ध में, जो एक आज़ाद-ख़याल लड़की को पेश आ सकती हैं, उसे कुछ-न-कुछ बता दिया है। अब इस मामले में भी मैंने उसे पूरी स्वतन्त्रता दे रखी है। लगभग डेढ़-दो वर्ष से तुम दोनों ने एक दूसरे को देखा है, एक दूसरे के स्वभाव को पहचाना है,

मैंने किसी तरह की रुकावट नहीं डाली, किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया। अब जो मैंने यह बात तुम से पूछी है, इसके विशेष कारण हैं।"

जगत केवल खाँसा और क्षणिक आकुलता से उसने चेहरे पर रूमाल फेरा।

अपनी बात जारी रखते हुए लता के पिता ने कहा, "पहले तो यह कि मैं सब प्रकार की स्वच्छन्दता को मानता हुआ भी विवाह की संस्था में विश्वास रखता हूँ। शायद कोई इसे वंश-वृद्धि के लिए आवश्यक समझता हो, शायद कोई मानव-प्रकृति के नियमों का पालन करने के लिए इसे आवश्यक मानता हो, यह भी हो सकता है कि तीसरा इसके लिए कोई तीसरी ही दलील दे, पर मेरे समीप तो समाज और समाज की सुव्यवस्था के लिए ही विवाह की संस्था अत्यावश्यक है। मनुष्य की शक्तियों को बिखर जाने से, बँट जाने से बचाने के लिए इसकी जरूरत है। उत्तरदायित्व और उसकी अनुभूति ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है और शादी के बाद स्त्री-पुरुष उत्तरदायित्व का पहला पाठ पढ़ते हैं। अविवाहित पुरुष की दशा गाड़ी से खुले हुए बैल की-सी है। वह औरों की खेतियों में मुँह मारेगा, पकड़ा जायगा, पीटा जायगा। शादी मनुष्य की गर्दन में उत्तरदायित्व का जुआ डाल देती है और वह पहले से संयत हो जाता है। जो लोग स्वतंत्र, सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर, जीवन बिताने के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं, उनसे अधिक ग़ैर-ज़िम्मेदार मैं किसी को नहीं समझता। वह उत्तरदायित्व से डरते हैं, जीवन-युद्ध से डरते हैं, वे कायर हैं, भीरु हैं। वे आयु भर जीवन की समस्त लज़्ज़तों को भोगकर भी बहुत से आनन्द से वंचित रह जाते हैं। वे अपने आप को अनुभवी समझते हुए भी काफ़ी अनुभवहीन होते हैं।"

"तुम शायद सोच रहे होगे," लता के पिता ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "कि रूस ने विवाह की संस्था हटा दी है। तो भाई, अव्वल तो कोई ठीक-ठीक नहीं जानता कि वहाँ की स्थिति

भारत अभी रूस नहीं! यहाँ की परिस्थिति अलग है। और फिर मैं विवाह को केवल मन्त्रों द्वारा एक रस्म का पूरा किया जाना नहीं मानता। स्त्री-पुरुष जब अपने-अपने इष्ट के आगे प्रण कर लेते हैं कि वे इकट्ठे जीवन व्यतीत करेंगे तो वे विवाहित हैं। मुझे विश्वास है कि रूस में भी ऐसे विवाहित जोड़ों की कमी न होगी। मैं उन्हीं की बात कर रहा हूँ।"

जगत चुप रहा। अपने आन्तरिक भावों को अपने चेहरे पर उसने लेशमात्र भी न आने दिया। चुपचाप, जैसे एकाग्र होकर, वह मलिक साहब की बात सुनता रहा।

"दूसरा कारण," लता के पिता ने कहा, "वैयक्तिक है। वह केवल मुझसे सम्बन्ध रखता है। तुम जानते हो, मेरे कोई लड़का नहीं। ले-देकर लता ही है। ग़लत या सही, मैंने उसी में अपने लड़के को पाने की इच्छा की है। उसी चाव से मैंने उसे पाला है। उसी चाव से मैंने उसे पढ़ाया है। तुम दोनों एक दूसरे को दो साल से जानते हो और जहाँ तक मेरा विचार है, तुम दोनों एक दूसरे से नफ़रत नहीं करते। कम-से-कम लता तो ऐसा नहीं करती। इसीलिए मैंने तुमसे यह बात पूछने का साहस किया है।"

जगत ने फिर रूमाल से अपने चेहरे को पोंछा। उसने कुछ कहने की चेष्टा भी की, लेकिन कुछ कह न सका।

लता के पिता ने कहा, "प्रायः लोग लड़के-लड़की को बिना एक दूसरे को देखने का अवसर दिये ब्याह कर देने के विरुद्ध हैं और चाहते हैं कि वे एक दूसरे को भली-भाँति देख लें। कुछ दूसरे कहते हैं कि केवल देख लेने से कुछ नहीं होता, उन्हें एक दूसरे को समझने का भी अवसर देना चाहिए। ये दोनों बातें कहाँ तक ठीक हैं और कहाँ तक ग़लत, इस पर बहस किये बिना मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि तुम्हें लता को, उसकी आदतों को, उसके गुण-दोषों को जानने का पूरा अवसर मिला है। आज तक मैं इसीलिए चुप रहा कि लता अपनी

शिक्षा खत्म कर ले और अब जब तुम दोनों ने शिक्षा समाप्त कर ली है, मेरा विचार था कि तुम दोनों में से कोई इस विषय में मुझसे बात करेगा, पर ऐसा नहीं हुआ! अतः मैंने स्वयं तुम से यह बात पूछी है। मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ। कौन जाने मृत्यु का दूत कब अपना संदेशा लेकर आ पहुँचे। इसलिए अब मैं चाहता हूँ कि लता के सम्बन्ध में अपना अन्तिम कर्त्तव्य भी पूरा कर दूँ और उसे अपने घर सब तरह से सुखी देखने के बाद मरूँ।"

कुछ रुककर लता के पिता से फिर कहा, "वह बी० ए० कर चुकी है, इससे आगे मैं उसे नहीं पढ़ाना चाहता। चाहता तो था, पर अब ऐसा नहीं करूँगा। मेरी आर्थिक स्थिति से तुम परिचित हो। मैं अपने को धनाधीश तो नहीं कहता, फिर भी मध्यम श्रेणी से ऊपर हूँ और फिर तुम जानते हो, मेरे कोई दूसरा नाते-रिश्तेदार भी नहीं।"

जगत को अब जैसे उत्तर मिल गया। उसने कहा, "लेकिन शायद पिता जी चाहें कि मैं एम० ए० करूँ।"

"शौक से करो," लता के पिता ने कहा, "और मुझसे जहाँ तक हो सकेगा, मैं तुम्हारी सहायता करने को तैयार हूँ। लता भी शिक्षित है। अनपढ़ लड़कियों की भाँति वह तुम्हारे मार्ग में बाधा न बनेगी।"

जगत ने और कुछ कहने की कोशिश की। पर कोशिश करने पर भी उसे कुछ और कहने के लिए शब्द न मिले—अब मालूम हुआ, वह महाशय क्यों अब तक चुप थे! उन्हें कहीं आने-जाने से क्यों नहीं रोकते थे! यह तो देर से उस पर निशाना लगाये बैठे थे, जाल बिछाये बैठे थे और लता तो पंछी को जाल में फँसाने के लिए मात्र दाना थी।

जगत ने आज तक इस समस्या पर इस दृष्टि से विचार ही न किया था। लता से उसकी मुहब्बत तो एक विनोद मात्र था—केवल एक खेल—वैसा ही जैसा उसने कई दूसरी युवतियों के साथ खेला था। और आज अचानक उसके सामने यह प्रश्न आ खड़ा हुआ। वह क्या उत्तर दे? क्या वह उत्तर देने के लिए स्वतन्त्र है? क्या उसे किसी से

पूछना नहीं ? क्या उसके लिए बन्धन में इतनी जल्दी जकड़ा जाना अभीष्ट होगा ? वह कुछ न कह सका !

लता के पिता ने कहा, "अभी न सही, कल-परसों सोचकर मुझे उत्तर देना। मैं जानता हूँ, यह जीवन भर का प्रश्न है, इसलिए सोच लो !"

जगत को जैसे फिर ज़बान मिल गयी, "जी, मैं आपको सोचकर उत्तर दूँगा;" उसने कहा, "वास्तव में मैंने इस समस्या के सम्बन्ध में सोचा ही नहीं। फिर आप जानते हैं, मैं आज़ाद भी नहीं हूँ।"

वह उठा, लता भागकर अपने कमरे में चली गयी।

रात के दस बजे जब देहरी तक लता उसे छोड़ने आयी तो जगत ने उसके हाथ को दबाते हुए कहा, "लता, तुम बिलकुल चिन्ता न करो। मैं अपने माता-पिता को विवश कर दूँगा। यदि इस मामले में मुझे उनका विरोध भी करना पड़े तो मैं परवाह न करूँगा और शीघ्र ही हम दोनों दो न रह कर एक हो जायँगे।"

यह कहकर उसने उसके हाथ को दबाते हुए आँखों से लगा लिया और तेजी से मुड़कर गली के अँधेरे में विलीन हो गया।

लता चुपचाप वापस आ गयी। कल्पना का एक अभिनव संसार उसके सामने बस गया और वह उसकी सैर करने लगी।

—०—

७

जगत चला जा रहा था।

बाजार की भीड़-भाड़ को जल्दी-जल्दी पारकर वह उस सड़क पर आ गया था, जो उसके छात्रावास को जाती थी। यहाँ पहुँचकर उसकी चाल धीमी हो गयी और उसका मस्तिष्क इस नयी समस्या पर विचार

करने लगा जो आज यों एकाएक उसके सामने आ उपस्थित हुई थी। क्या वह लता से विवाह कर सकता है? और विवाह करके क्या वह उसके साथ सुखी रह सकता है? लता उसके लिए आज तक विनोद की वस्तु रही थी। कालेज के लड़कों में लड़कियों को देखने की, उनसे मित्रता पैदा करने का यत्न करने की, उस मित्रता का रुआब अपने हमजोलियों पर डालने की जो बीमारी-सी होती है, लता का प्रेम-पात्र बनने की जगत की कोशिशें भी उसी का परिणाम थीं। उसने लता की मित्रता प्राप्त कर ली थी, पर क्या वह वास्तव में उससे प्रेम करता था? शायद नहीं! हाँ, वह उसे पसन्द करता था, पर शादी—इसके सम्बन्ध में उसके विचार भिन्न थे।

शरीर से सुन्दर और बलिष्ठ होने और तबीयत में ज़रा खुलापन होने के कारण उसके सम्पर्क में कई लड़कियाँ आयी थीं। शिक्षित युवतियों को अपनी ओर आकर्षित करने में वह सदैव सफल रहा था, पर प्रेम वास्तव में उसे किसी से भी न था। उनमें सुन्दर भी थीं, पर विवाह करने की कल्पना उसने इनमें से एक के साथ भी न की थी।

उसकी सगाई बहुत पहले हो चुकी थी और न भी हो चुकी होती तो भी वैवाहिक जीवन का जो ख़ाका उसके सामने था, उसमें इनमें से कोई भी फ़िट न बैठ सकती थी। वह चाहता था ऐसी पत्नी, जो उसको देवता माने, उसकी आज्ञा को वेद-वाक्य समझे, उसके लिए जीवन तक अर्पण कर दे, जो पतिव्रता हो और जो उसकी सेवा को ही स्वर्ग समझे। इनमें से कौन ऐसी हो सकती थी? और लता—उसके लिए तो ऐसी पत्नी बनने का अवसर और भी कम था। विवाह के पश्चात् यदि जगत कुछ भी व्यस्त रहे, प्रेम-प्रदर्शन में तनिक भी ढील करे, तो लता यही समझेगी कि वह अब उससे प्रेम नहीं करता। उस पर शक करेगी और हो सकता है उसमें प्रतिशोध अथवा प्रतिक्रिया की भावना भी उत्पन्न हो जाये। उसके विचारों को वह जानता था, वह स्त्रियों के

लिए बराबरी का अधिकार चाहती थी। वह कई बार कह चुकी थी—पुरुषों को क्या अधिकार है कि वे स्त्री पर किसी तरह का अत्याचार करें। स्त्री-पुरुष में कोई अंतर नहीं है। अब समय आ गया है कि स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर काम करें, खायें, पहनें, घूमें-फिरें और बराबरी का व्यवहार चाहें। यदि पुरुष उनसे दुर्व्यवहार करें तो उन्हें भी अधिकार है कि पुरुष के साथ वैसा ही सलूक करें।

और जगत को कालेज के उस वाद-विवाद की याद आ जाती जिसने पहले-पहल दोनों को मिलाया था। उस बहस में यद्यपि लता ने मिस बाली की सभी युक्तियाँ काट दी थीं, पर यथार्थ में उसके विचार मिस बाली से भिन्न न थे। जगत ने उसे प्रसन्न करने के लिए स्वयं भी वैसे ही विचारों का प्रदर्शन कर दिया था, बल्कि वह पुरानी व्यवस्था की निन्दा करने में उससे भी कहीं दो पग आगे बढ़ जाता था, पर अपने मन में उसे उन बातों से लेश-मात्र भी सहानुभूति न थी। इतने उच्च विचारों से क्रान्ति तो पैदा हो सकती है, शान्ति पैदा नहीं हो सकती। वह जानता था, समाज का सारा विधान, सारी व्यवस्था गृह-शान्ति पर टिकी हुई है। कम-से-कम भारत में तो ऐसा ही है। हाँ, भारत जब रूस बन जाय, वहाँ बच्चों को सरकार पालने लगे, शादी-विवाह का महत्व कुछ भी न रह जाय तो बात दूसरी है, पर उसने अपने गृह-जीवन का जो चित्र बनाया था, वह उसके अपने पिता की गृहस्थी से भिन्न न था। वह पत्नी को अपनी माता के अनुरूप देखना चाहता था।

जगत के पिता सरगोधा के प्रसिद्ध ज़मींदार थे। उन्होंने अपने जीवन में क्या कुछ नहीं किया, पर फिर भी उसकी माँ उन्हें देवतातुल्य पूजती रही और यदि जगत ने उनके व्यवहार और उनके अपव्यय के विरुद्ध एक शब्द भी कभी कहा तो माँ ने तुरन्त उसे डाँट दिया। उसी का यह परिणाम था कि ज़मींदारी अभी तक शेष थी, वह मज़े से पढ़ रहा था और उसके पिता भी बुढ़ापे में सम्हल गये थे। यदि उसकी माँ

भी बराबरी का अधिकार माँगती और त्याग से काम लेने की अपेक्षा प्रतिक्रिया से काम लेती, तो उसके घर का इतिहास दूसरा ही होता, जिसमें केवल एक शब्द—विनाश—बड़े अक्षरों में लिखा होता।

क्या लता ऐसी पत्नी बन सकती है? शायद नहीं! हो सकता है, उदार विचार रखने वाले के साथ, किसी ऐसे व्यक्ति के साथ, जो स्वयं भी स्वतन्त्र रहना चाहता है और पत्नी की स्वतन्त्रता में भी किसी प्रकार की बाधा नहीं डालना चाहता, जो पत्नी को एक अलग अस्तित्व समझता है, लता सफलता-पूर्वक जीवन व्यतीत कर सके। पर उसके अपने साथ—जगत ने अपने दिल को टटोला—वह सफल पत्नी न बन सकेगी। वह क्या, उसकी परिचितों में से कोई भी न बन सकती थी। उसके अपने मित्रों ने प्रेम-विवाह किये थे और वह जानता था कि वे कितने सफल हुए थे! यदि तलाक का हक़ कानून द्वारा प्राप्त होता तो सबसे पहले वही उसके लिए अदालत का दरवाजा खटखटाते।

जगत ने सोचा, क्या तलाक का हक़ होते हुए भी उसकी माँ कभी सम्बन्ध-विच्छेद की इच्छा करती? दिल एक ही उत्तर देता था—कभी नहीं।

चाँदनी रात थी। शुभ्र ज्योत्स्ना सड़क पर, किनारे की वाटिकाओं पर, उनमें बनी कोठियों पर फैली हुई थी। वृक्षों के नीचे प्रकाश और छाया के जाल-से बने हुए थे। सामने से सब्ज़ी से लदा हुआ एक छकड़ा आ रहा था। छकड़े में बड़े-बड़े नागौरी सींगों वाले बैल जुते हुए थे। बैलों के गले में घंटियाँ बँधी थीं, जिनकी अनवरत ध्वनि रात की निस्तब्धता में उस देहाती युवक के गीत के लिए विचित्र वाद्य का काम दे रही थी, जो छकड़े पर बैठा हुआ जवानी की उमंग में अलाप रहा था—

कोठे ते टुकर पया,

पहले लाके नेहों माहिया, हुन काहनू तू मुकर गया।*

जगत की आँखों के सामने अपने गाँव का चित्र खिंच गया। मीलों तक फैले हुए लम्बे खेत; शीशम और शहतूत के घने पेड़; उनके नीचे 'हीर रांझा', † 'सोहनी-महीवाल † के गीत गाने वाले देहाती नवयुवक; लहराती हुई नदी और उसके किनारे भूले भूलती हुई देहात की नवयुवतियाँ—उसके साथ ही उसकी आँखों के सामने एक सुन्दर, हसीन, जवानी के मद में चूर बड़ी-बड़ी आँखों वाली लड़की की तस्वीर भी आयी, जिसे उसने देखा न था, पर जो कभी-कभी जैसे उसके अन्तस्तल से निकलकर उसकी आँखों के सामने आ जाती थी। वह एक बड़े जमींदार की इकलौती लड़की थी। आठ दर्जे तक पढ़ी थी और जैसा कि उसने सुना था, पूर्णिमा का चाँद थी। उससे उसका विवाह होगा। पहले-पहल उसे देखेगा तो कैसा अनुभव करेगा, वह कैसे सकुचायेगी—इन नवीन अनुभवों की कल्पना में वह ऐसा लीन हुआ कि उसे अपने छात्रावास के आने का भी ध्यान न रहा।

बी० ए० का परिणाम निकले तीन दिन हुए थे। आज इतवार होने के कारण लता के पिता ने लता की सफलता की खुशी में एक पार्टी दी थी। उससे निवृत्त होकर वे दोनों रावी की सैर को गये थे। वह और उसका एक साथी परीक्षा के बाद भी यहीं डटे थे। वह तो किसी प्रतियोगिता की तैयारी कर रहा था और जगत योंही लता के कारण रुका हुआ था, पर जगत का मित्र भी घर जा रहा था। ताँगे पर चढ़ते-चढ़ते उसने जगत को 'नमस्ते' कही। जगत चौंका, वह छात्रावास के आगे से गुजरा जा रहा था। बढ़कर उसने हाथ मिलाया और फिर अपने कमरे में चला गया।

---

* छत पर रोटी का टुकड़ा पड़ा है; ऐ मेरे प्रिय, पहले प्रेम करके अब तू क्यों मुकर गया है। † पंजाब के प्रसिद्ध प्रेमी।

रात भर में उसने इस समस्या को सुगमता से सुलझाने का मार्ग पा लिया और दूसरे दिन सुबह वह इन्टर क्लास के एक डिब्बे में बैठा अपने गाँव को जा रहा था।

—०—

८

तीसरे दिन निम्नलिखित पत्र डाकखाने की विविध मंज़िलें तै कर रहा था—

चक नम्बर ३७

लता प्यारी,

बादलों से किसने कहा है कि अचानक आकाश पर छा जाओ और मन को एक अजीब-सी बेचैनी, एक विचित्र-सी आकुलता से भर दो; हवा से किसने कहा है कि पागलों की तरह चलो, समझदारों को दीवाना बना दो और दीवानों को गिरेबाँ चाक करके वीराने की ओर भाग जाने पर विवश कर दो और किसने कहा है उस अंधे देवता से कि इस समय को तुम अपने शिकार के घावों पर नमक छिड़कने के लिए चुनो।

पच्छिम से बादल उठ रहे हैं, तहों पर तहें छा रही हैं मानो आज के बाद फिर कभी न उठेंगे, मानो सारे विश्व को अपनी काली चादर से ढक देंगे, अपने तिमिर में छिपा लेंगे। तेज़ हवा चल रही है और पीली-पीली पपोलियाँ विजन में इस तरह उड़ी जा रही हैं मानो किसी का प्रेम उन्हें इस निर्जन को तज बस्ती की ओर भाग जाने को विवश कर रहा है। बस्ती के निवासी प्रेम से सताये जाकर वीराने की ओर भागें, पर वीराने के प्रेमियों के लिए बस्ती के अतिरिक्त दूसरा स्थान कहाँ है ?

जी चाहता है लता, इसी समय, इसी क्षण इस कमरे को, अस्त-व्यस्त अव्यवस्था को, इस नीरस, शुष्क और निर्मम वाताव को छोड़कर बाहर विजन में निकल जाऊँ और वायु की विपरीत दि में भागता हुआ तुम्हारे पास पहुँच जाऊँ, या फिर इन काली घटा के नीचे, इस ठंडी तेज हवा के आगे उड़ता चला जाऊँ—दूर—बहु दूर, यहाँ तक कि थक जाऊँ, लेट जाऊँ और तब तक न जागूँ, जब तक तुम आकर अपने कोमल कर-कमलों से मुझे न जगाओ।

सोचता हूँ, ऐसी ऋतु में कहीं मैं और तुम इकट्ठे होते—लाहौर में तुम्हारे उस ऊँचे तिमंज़िले मकान के ऊपर तुम्हारे कमरे में—हवा झरोखों से आती, पर्दे हिलते, सामने खिड़की में दूर तक काली घटा दिखायी देती, तुम मल्हार का गीत छेड़तीं और मैं मन्त्र-मुग्ध सुनता। या फिर कहीं तुम इन बस्तियों, दरियाओं, वीरानों को पार करके, इस गाँव में, इस मेरे कच्चे मिट्टी के कोठे में आ जातीं, हम दोनों हाथ में हाथ दिये, इस विजन में निकल जाते और हवा का मुकाबिला करते हुए, मरुस्थलों में होते हुए, वृक्षों के साथ झूमते हुए, काँटों के साथ उलझते हुए, इस विपिन में बस्ती का समाँ बाँध देते, अतीत की पुरानी स्मृतियों को नवजीवन प्रदान कर देते; पर तुम कहाँ और मैं कहाँ ? तुम्हारे पास लाहौर है—चहल-पहल, हँसी-मज़ाक, गाने-बजाने, सैर-तमाशे का केन्द्र; मेरे पास गाँव है, सूना, नीरस और निर्मम !

लता ! अभी तुम्हारे पास से आये बहुत दिन नहीं हुए, पर यहाँ अभी से जी उचाट हो गया है। चाहता हूँ कि फिर उड़कर तुम्हारे पास पहुँच जाऊँ, पर परिस्थितियों से विवश हूँ। मनुष्य जो सोचता है, वह कब होता है और जो होता है, वह कब सोचता है ? यहाँ आते ही बन्धन पर बन्धन डाले जा रहे हैं। मेरा विचार था, अभी एम० ए० में पढ़ूँगा। पिता जी भी ऐसा ही चाहते थे, पर अब पता नहीं क्या बात है कि वे भी आगे पढ़ने के नाम पर झल्ला उठते हैं। कहते हैं—यहीं रहो और काम सँभालो। सोचा था, जल्द ही तुम्हारे पास आऊँगा; पर यहाँ से भाग

निकलना सम्भव नहीं। दिन भर उनका लेक्चर सुना करता हूँ। मैं तो तीन दिन ही में ऊब उठा हूँ।

शायद तुम्हें मालूम नहीं लता, मैं अपने माता-पिता की इच्छा का कितना मान करता हूँ। उनकी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं कर सकता। एक और दुःख की बात सुनो! मेरे यहाँ आने से पहले ही मेरी शादी का प्रश्न छिड़ा हुआ था। मैं आया पीछे कि माँ पहले ही यह बात ले बैठीं। यहाँ के किसी जमींदार की लड़की है, सुन्दर है, कुछ पढ़ी भी है, पर इससे मुझे क्या! मेरे हृदय-पट पर जो चित्र खिंचा हुआ है, उसके सामने स्वर्ग की अप्सरा भी तुच्छ है।

माँ सारा दिन उसके रूप का, उसके गुणों का बखान करती रहती हैं। मैं तो उकता गया हूँ। सोचता था, मौका मिलने पर अपनी बात चलाऊँगा; पर यहाँ उलटी मुसीबत गले पड़ गयी। मैं कहता हूँ मुझे ब्याह नहीं करना है। पूछा जाता है क्यों? मैं चुप रह जाता हूँ। जिस पागल ने एक बार अमृत का प्याला पिया हो, वह कब और किसी रस की इच्छा कर सकता है? जानता हूँ मैं यह न कर सकूँगा। माता-पिता की बात से इनकार तो क्या कर सकूँगा। हाँ, यहाँ से भाग अवश्य आऊँगा और इस कारा से मुक्ति पा जाऊँगा।

लता, कालेज में हम दोनों में से जब कोई अनुपस्थित होता, तो हम विश्व पर छा जाने वाली धूप के आगे सिर झुकाते थे। उससे प्यार की बातें करते थे कि वह हमारा प्रेम एक-दूसरे तक पहुँचा दे। मैं भी जब से आया हूँ, नव-प्रभात के आगे सिर झुकाता रहा हूँ, यह सोचकर कि तुम्हारी आँखें भी कभी भूले से इसे देख लेती होंगी। आज सूरज नहीं निकला, धूप का भी कोई पता नहीं और बादल कहीं तुम्हारी ओर से आकर मुझे इस खुशी से भी वंचित करने के लिए आकाश पर छा गये हैं, लेकिन मैं इन्हीं को नमस्कार करता हूँ—इन बादलों को—

जो तुम्हारी ओर से आ रहे हैं और जिन्हें तुमने अपनी मदमाती-प्रलयकारी आँखों से देखा है।

सदैव तुम्हारा,

जगत

—०—

६

अपने दोनों हाथ बंसीलाल को दिखाते हुए गोपाल ने कहा, "लो देखो, आज तक छाले पड़े हुए हैं। मैं ही तो खेता रहा उस दिन भी, तुम तो उठे ही नहीं, और फिर इतने दिन बाद चप्पू को हाथ लगाया था। आज रावी का प्रोग्राम नहीं, कोई और मनोरंजन रहे।"

बंसीलाल ने कोई उत्तर नहीं दिया, चुपचाप कमरे में टहलता रहा।

हाथ पर हाथ मारते हुए गोपाल ने कहा, "खैर अब कहो, चाय मँगाऊँ या खाना खाओगे?" और फिर बंसीलाल को अपने ध्यान में मग्न देखकर उसने स्वयं ही निरर्थक खोखली हँसी हँसते हुए नौकर को आवाज़ दी और बोला, "इस वक्त खाना कहाँ बना होगा, सात ही तो बजे हैं, तब तक चाय ही चलने दो।" और नौकर को उसने चाय लाने के लिए कहा।

परीक्षा का परिणाम सुनते ही गोपाल बंसीलाल को अपने घर ले आया था और इन दिनों में उसने उसे अपनी असफलता पर सोचने का अवसर ही न दिया था। सवेरे सैर, दोपहर ताश, शाम को रावी में किश्ती, सिनेमा या क्लब, रात को ब्रिज—अपनी ओर से वह उसके दुःख को भुला देना चाहता था, लेकिन वह क्या जानता कि जब दिन भर का थका हुआ वह सो जाता था, तो बंसीलाल बेचैनी की सेज पर जाने कितनी करवटें बदलता रहता था?

गोपाल बंसीलाल का अभिन्न-हृदय मित्र था। धनी बाप का बेटा था, इसलिए पढ़ने की ओर विशेष ध्यान न देता था। बंसीलान न होता तो वह कभी पास ही न होता। पूरे साल गुलछर्रे उड़ाता रहता, लेकिन अन्तिम दिनों में बंसीलाल के साथ मिलकर कुछ परिश्रम करता, बंसीलाल के तैयार किये हुए नोट पढ़ता और पास हो जाता। इस बार भी ऐसा ही हुआ था। परीक्षा के दिनों में वह बंसीलाल को अपने घर ले आया था। बंसीलाल उसे तो जो वह पूछता बता देता, पर अपनी पढ़ाई में उसका जी न लगता था। पढ़ाई क्या, किसी काम में भी उसका मन न लगता था। निरन्तर एक हलचल, एक तूफ़ान उसके अन्तस्तल में मचा रहता। जगत और लता को वह नित्य इकट्ठे हँसते, खेलते, सैर करते, पढ़ते देखता और उसका जी चाहता था कि वह कहीं लाहौर से दूर चला जाय—कहीं बहुत दूर—जहाँ उसके हृदय को मसोस देने वाले ये दृश्य दिखायी न दें। उसने लता से मिलने के कई प्रयास किये थे, पर जगत की उपस्थिति में एक भी सफल न हुआ था और तब उसकी बेचैनी और भी बढ़ गयी थी। परीक्षा हुई, अन्य-मनस्कता से वह उसमें बैठ आया। इसके बाद वह प्रातः घर से निकल जाता और न जाने कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरने के बाद साँझ को आ जाता। फिर परीक्षा-फल निकला। उसकी सहायता से पढ़ने वाला गोपाल तो पास हो गया, पर वह फ़ेल! उन रातों को जब गोपाल अपने गदगुदे बिस्तरे पर सुख की नींद सोया करता था, बंसीलाल को उस नरम बिस्तर पर भी कोई आराम न मिलता। उसके लिए आराम जैसे अपरिचित हो गया था।

नौकर चाय बनाकर ले आया। प्याला तैयार करते हुए गोपाल बोला, "आओ ज़रा इधर बैठो, क्या योंही व्यर्थ सोच किया करते हो?" और फिर कहने लगा, "देखो चाय तुम मत पियो, यह प्याला मैं ले लूँगा, तुम्हारे लिए ओवलटीन ठीक रहेगी, एक प्याला पीने से तबीयत खुल जायगी।"

वह हौसला करे ? प्रकट में उसने ज़रा-सा हँसकर कहा—"साहस को साहस तो ही है, अब और हो ही क्या सकता है ?"

गोपाल ने सुख की साँस छोड़कर कहा, "कुछ-न-कुछ निराशा होनी तो स्वाभाविक ही है, हम जैसों को भी होती है, फिर तुम्हारी तो बात ही दूसरी है। देखो कल तुम घर पता दे आओ ! वे बेचारी चिन्ता करती होंगी। फिर कुछ महीने तुम मेरे साथ रहो। इस बार मेरे साथ काश्मीर चलो। ज़रा स्वास्थ्य भी बन जायगा और कुछ तबीयत भी बदल जायगी। बस फिर आकर जुट जाना, कहो चलोगे इस बार मेरे साथ ?"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

गोपाल ने नौकर को बुलाकर बर्तन उठाने के लिए कहा और बोला, "कहो चलते हो आज मेरे साथ क्लब ?"

"आज तो मैं यहीं आराम करूँगा, सारा दिन घूम-घूमकर थक गया हूँ," बिस्तर पर लेटते हुए बंसीलाल ने कहा।

"जैसी तुम्हारी इच्छा !" यह कहकर गोपाल ने कोट पहना, सिर पर टोपी रखी और चल पड़ा।

गोपाल के जाते ही बंसीलाल उठा और जब देखा कि गोपाल दूर निकल गया है, तो हैट पहने बिना ही वह तेजी से बाहर निकल गया। गोपाल को क्या मालूम था कि आज जब वह उसकी ओर से निश्चिन्त होकर जा रहा था, बंसीलाल ने अपने मन में कैसा भयानक संकल्प कर लिया था !

—o—

१०

दो वर्ष—कालेज के ये दो वर्ष—क्या कुछ न छिपा हुआ था इन दो वर्षों में? कितनी घटनाएँ, कितने अनुभव, कितनी बातें—मीठी-कड़वी, नशीली, हँसाने वाली, रुलाने वाली! कितना सुख और फिर कितना दुख! क्या कुछ न छिपा हुआ था? और वह सब दो वर्षों में—केवल इन दो वर्षों में!

लता अपने कमरे में चुपचाप बैठी इन्हीं सब बातों पर विचार कर रही थी। सामने दीवार पर टैनिस का रेकेट टँगा हुआ था, खिड़कियों और दरवाज़ों के पर्दे हिल रहे थे और उनमें से कभी-कभी विद्युत् की चमक कमरे में चकाचौंध पैदा कर देती थी। मेज़ पर बिजली का लैम्प जल रहा था। कोने के ताक़ में टाइमपीस टिक-टिक कर रहा था। कभी-कभी पर्दों या कैलेण्डर की आवाज़ अथवा बादल की गरज से पैदा होने वाली गूँज कमरे में हल्का-सा शोर पैदा कर देती थी। कुछ क्षण के लिए घड़ी की टिक-टिक उसमें गुम हो जाती, पर इसके बाद फिर सुनायी देने लगती और कभी-कभी छत पर टँगा हुआ फ़ानूस ज़ोर-ज़ोर से हिल उठता।

मेज़ के पास एक कुर्सी पर लता बैठी थी, दूसरी उसके पाँव का सहारा बनी हुई थी और तीसरी औंधे मुँह कौच पर जा पड़ी थी। उसकी निगाहें दीवार पर टँगे हुए रेकेट पर जमी हुई थीं और हाथ एक दूसरे से आलिंगन-बद्ध उसकी गोदी में सो रहे थे।

"लता रानी दूध लाऊँ?"

"नहीं!"

नौकर चला गया और लता उसी तरह बैठी रही—उसी तरह मौन, स्थिर बैठी रेकेट को देखती रही—मानो वह कोई ऐसी वस्तु हो जिस से निगाहें हटने का नाम न लें। रेकेट—टैनिस का बेजान रेकेट—उस समय लता के लिए सिनेमा के पर्दे का काम दे रहा था

पर दृष्टि जमाये वह अपने मस्तिष्क की हलचलों को चल-चित्र के रूप में देख रही थी। इन दो वर्षों का एक-एक दिन उस सामने तस्वीर बन-बनकर आया और फिर कुछ घटनाएँ वह अंकित होकर रह गयीं—बार-बार सामने आने लगीं—पहले बहस क दिन आया, फिर जगत के साथ लारेंस की सैर का दिन, फिर मुहब्बत और प्यार की बातें और बातें—लम्बी, उल्लासपूर्ण सैरें; पिकनिकें; पार्टियाँ; जगत के वादे; परीक्षा और उसके बाद की प्रतीक्षा; नतीजे का दिन; रावी की सैर; फिर जगत के गाँव जाने की घड़ी; उसकी प्रतिज्ञा; फिर अन्त में उसका पत्र—उसके पत्र का एक-एक शब्द उसके सामने खिंच गया। विश्वासघात की कई कथाएँ सुनी थीं, पर ऐसे धोखे की, ऐसी प्रवंचना की कहानी कभी न सुनी थी। आरम्भ से अन्त तक वह ठगी जाती रही। उसकी आशाएँ, उसकी कल्पनाएँ सब रेत की दीवारें सिद्ध हुईं। जगत की सगाई तो बहुत पहले हो चुकी थी। इन दो वर्षों तक वह सदैव उसे अँधेरे में रखे रहा। कल उसका पत्र आया था और कल ही उसे पता चल गया था कि उसकी सगाई देर से हो चुकी है और अब कुछ ही दिनों में शादी हो जायगी। वह सर्टिफ़िकेट लेने कॉलेज गयी थी और वहीं उसने यह बात सुनी थी। जगत के गाँव का एक लड़का किसी दूसरे मित्र से यही बात कह रहा था। लता के साथ उसके प्रेम पर आलोचना भी की जा रही थी। लता अधिक न सुन सकी थी। घर आ गयी थी। घर आकर उसने फिर जगत के पत्र को ध्यान से एक बार पढ़ा था। सब कुछ स्पष्ट हो गया। एक-एक वाक्य धोखे और झूठ के आवरण में लिपटा हुआ प्रतीत होता था मानो अगले पत्र के लिए ज़मीन तैयार की जा रही हो, मानो माता-पिता के अनुरोध की आड़ लेकर अपने-आप को निर्दोष बताने का बहाना किया जा रहा हो। उस वक्त आत्म-ग्लानि और प्रबल घृणा से लता का हृदय जल उठा था। उसने जगत के पत्र को टुकड़े-टुकड़े कर दिया था। एलबम में उसके कई फ़ोटो लगे हुए थे, सब को निकालकर

उसने फाड़ डाला था और फिर कटी हुई लता की तरह कुर्सी पर गिर गयी थी।

उसने रैकेट से आँखें हटा लीं और रूमाल से उन्हें मलकर बेचैनी की एक लम्बी साँस छोड़ी!

सारी रात उसे नींद न आयी थी। प्रतिहिंसा और प्रतिशोध से उसका हृदय जलता रहा था। वह अपने पिता को क्या बतायगी? वह उनसे क्या कहेगी? यदि उन्हें मालूम हो गया, तो उन्हें कितना दुःख पहुँचेगा? कितनी निराशा और मानसिक पीड़ा होगी? एक तरह वे समझ चुके थे कि उन्होंने अपनी लड़की के लिए उचित वर ढूँढ लिया है, इसलिए उन्होंने लता को जगत के साथ घूमने से नहीं रोका। एक तरह वे निश्चिन्त से हो गये थे। आज यह जानकर कि यह सब उनकी भूल थी, उन्हें कितनी व्यथा होगी? लता ने एक सिरे से सब घटनाओं पर पुनः विचार किया। उसे ऐसा लगा, जैसे उसके पिता को पहले ही सन्देह हो गया था, इसलिए उन्होंने एकान्त में जगत को बुलाकर उससे वह प्रश्न किया था, जिसे सुनकर वह असमंजस में पड़ गया था। अब लता ने सोचा तो जाना कि उस समय वह घबरा गया था। बाद में उसने जो प्रण किया, वह तो पीछा छुड़ाने मात्र के लिए था। उसके पिता ने लता का आगे पढ़ना इसीलिए बन्द कर दिया था। शायद वे जगत की नीयत को जान गये थे, इसलिए वे उसे सचेत करते रहते थे, कहते रहते थे कि संयम को हाथ से न जाने देना, बिना परीक्षा किये किसी पर भरोसा न करना। जो बाहर से सोना दिखायी देता है, वह प्रायः अन्दर से पीतल भी नहीं होता। अब जब वे जानेंगे कि उनका सन्देह ठीक था, तो उसे स्वयं कितनी लज्जा, कितनी शर्म आयेगी! आज तक वह यह कहती रही—जगत साफ़ दिल है, उदाराशय है, बाहर-भीतर से एक जैसा है—पर आज! आज!

लता को प्यास लगी। सुबह से वह नहायी भी न थी। उसे ऐसा

पर दृष्टि जमाये वह अपने मस्तिष्क की हलचलों को चल-चित्रों के रूप में देख रही थी। इन दो वर्षों का एक-एक दिन उसके सामने तस्वीर बन-बनकर आया और फिर कुछ घटनाएँ वहाँ अंकित होकर रह गयीं—बार-बार सामने आने लगीं—पहले बहस का दिन आया, फिर जगत के साथ लारेंस की सैर का दिन, फिर मुहब्बत और प्यार की बातें और घातें—लम्बी, उल्लासपूर्ण सैरें; पिकनिकें; पार्टियाँ; जगत के वादे; परीक्षा और उसके बाद की प्रतीक्षा; नतीजे का दिन; रावी की सैर; फिर जगत के गाँव जाने की घड़ी; उसकी प्रतिज्ञा; फिर अन्त में उसका पत्र—उसके पत्र का एक-एक शब्द उसके सामने खिंच गया। विश्वासघात की कई कथाएँ सुनी थीं, पर ऐसे धोखे की, ऐसी प्रवंचना की कहानी कभी न सुनी थी। आरम्भ से अन्त तक वह ठगी जाती रही। उसकी आशाएँ, उसकी कल्पनाएँ सब रेत की दीवारें सिद्ध हुईं। जगत की सगाई तो बहुत पहले हो चुकी थी। इन दो वर्षों तक वह सदैव उसे अँधेरे में रखे रहा। कल उसका पत्र आया था और कल ही उसे पता चल गया था कि उसकी सगाई देर से हो चुकी है और अब कुछ ही दिनों में शादी हो जायगी। वह सर्टिफ़िकेट लेने कॉलेज गयी थी और वहीं उसने यह बात सुनी थी। जगत के गाँव का एक लड़का किसी दूसरे मित्र से यही बात कह रहा था। लता के साथ उसके प्रेम पर आलोचना भी की जा रही थी। लता अधिक न सुन सकी थी। घर आ गयी थी। घर आकर उसने फिर जगत के पत्र को ध्यान से एक बार पढ़ा था। सब कुछ स्पष्ट हो गया। एक-एक वाक्य धोखे और झूठ के आवरण में लिपटा हुआ प्रतीत होता था मानो अगले पत्र के लिए ज़मीन तैयार की जा रही हो, मानो माता-पिता के अनुरोध की आड़ लेकर अपने-आप को निर्दोष बताने का बहाना किया जा रहा हो। उस वक्त आत्म-ग्लानि और प्रबल घृणा से लता का हृदय जल उठा था। उसने जगत के पत्र को टुकड़े-टुकड़े कर दिया था। एलबम में उसके कई फ़ोटो लगे हुए थे, सब को निकालकर

उसने फाड़ डाला था और फिर कटी हुई लता की तरह कुर्सी पर गिर गयी थी।

उसने रेकेट से आँखें हटा लीं और रूमाल से उन्हें मलकर बेचैनी की एक लम्बी साँस छोड़ी!

सारी रात उसे नींद न आयी थी। प्रतिहिंसा और प्रतिशोध से उसका हृदय जलता रहा था। वह अपने पिता को क्या बतायगी? वह उनसे क्या कहेगी? यदि उन्हें मालूम हो गया, तो उन्हें कितना दुःख पहुँचेगा? कितनी निराशा और मानसिक पीड़ा होगी? एक तरह वे समझ चुके थे कि उन्होंने अपनी लड़की के लिए उचित वर ढूँढ लिया है, इसलिए उन्होंने लता को जगत के साथ घूमने से नहीं रोका। एक तरह वे निश्चिन्त से हो गये थे। आज यह जानकर कि यह सब उनकी भूल थी, उन्हें कितनी व्यथा होगी? लता ने एक सिरे से सब घटनाओं पर पुनः विचार किया। उसे ऐसा लगा, जैसे उसके पिता को पहले ही सन्देह हो गया था, इसलिए उन्होंने एकान्त में जगत को बुलाकर उससे वह प्रश्न किया था, जिसे सुनकर वह असमंजस में पड़ गया था। अब लता ने सोचा तो जाना कि उस समय वह घबरा गया था। बाद में उसने जो प्रण किया, वह तो पीछा छुड़ाने मात्र के लिए था। उसके पिता ने लता का आगे पढ़ना इसीलिए बन्द कर दिया था। शायद वे जगत की नीयत को जान गये थे, इसलिए वे उसे सचेत करते रहते थे, कहते रहते थे कि संयम को हाथ से न जाने देना, बिना परीक्षा किये किसी पर भरोसा न करना। जो बाहर से सोना दिखायी देता है, वह प्रायः अन्दर से पीतल भी नहीं होता। अब जब वे जानेंगे कि उनका सन्देह ठीक था, तो उसे स्वयं कितनी लज्जा, कितनी शर्म आयेगी! आज तक वह यह कहती रही—जगत साफ़ दिल है, उदाराशय है, बाहर-भीतर से एक जैसा है—पर आज! आज!

लता को प्यास लगी। सुबह से वह नहायी भी न

लगता था, जैसे उसका शरीर शिथिल हो गया हो और उसे ज्वर हो जायेगा।

रामनारायण को उसने पुकारा और उससे लाइम जूस का एक गिलास बना लाने को कहा और उठकर कौच पर लेट गयी। जिस बात की उसने आशंका भी न की थी, वही हो गयी—ये पुरुष, ये सब वासनाओं के दास हैं! क्या यह प्रेम था? यह तो उसके प्रेम के साथ खिलवाड़ था। जिस तरह मन्त्र-मुग्ध साँप बीन की आवाज़ पर नाचता है, उसी तरह वह भी जगत के संकेतों पर नृत्य करती रही।

यह सोचते-सोचते लता उद्विग्न हो उठी। अपने इस अपमान पर उसका स्वाभिमान तड़प उठा, पर उसका तड़पना एक घायल सर्प के विष उगलने से अधिक महत्व न रखता था।

रात के दस बज चुके थे, रामनारायण लाइम जूस का गिलास रखकर बोला, "आज सुबह से तुमने कुछ नहीं खाया रानी, और नहीं तो दूध ही पी लो।"

लता ने बेज़ारी से सिर हिलाकर उससे कहा कि जाये और तंग न करे।

नौकर चला गया और वह बेचैनी से इधर-उधर कमरे में घूमने लगी—आज प्रतिशोध की भावना ने उसके सामने बंसीलाल की तस्वीर ला खड़ी की। कैसी विडम्बना थी!—उसके जीवन में दो व्यक्ति आये। एक ने उसे भुला दिया और दूसरे को भुलाने का प्रयास वह स्वयं करती रही। एक के साथ उसने स्वयं प्रेम किया, पर उसके प्रेम को उसने कुछ न जाना, दूसरे ने उसके साथ प्रेम किया, पर उसके प्रेम की उसने स्वयं कुछ क़द्र न की।

आज बंसीलाल के उन्माद का चित्र उसकी आँखों के सामने खिंच गया, उसकी कुछ चिट्ठियाँ उसे याद हो आयीं और अपनी निष्ठुरता पर उसे दुःख हुआ। उसने क्यों उससे इतनी उपेक्षा का बर्ताव किया! क्यों उसे कभी मिलने का अवसर न दिया?

घूमते-घूमते लता सोचने लगी, उसका व्यवहार कहाँ तक उचित था ? पर ज्यों-ज्यों वह सोचती, उसे अपना कोई दोष न दिखायी देता। यह ठीक है, उसे जगत से प्रेम था और वह बुरी तरह ठगी गयी, पर इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि उसे बंसीलाल को निराश न करना चाहिए था। क्या अब जब जगत ने उसे धोखा दिया है, वह बंसीलाल से प्रेम कर सकती है ? लता ने अपने दिल को टटोला। नहीं, वह अब भी उससे प्रेम नहीं करती और न कर ही सकती है ? बंसीलाल, माना उससे मुहब्बत करता है, माना वह उसके लिए दीवाना है, पर क्या उसने अपने आप को योग्य बनाने की कोशिश की ? आदमी, निर्धन से, विपन्न से प्रेम कर सकता है; पर उसमें गुण तो हों। सारा दिन आवारों की तरह घूमना, पागलों का-सा व्यवहार करना, उन्मादियों की तरह गाते फिरना, परीक्षाओं में फ़ेल हो जाना—मैले कपड़े, खुला गला, बिखरे बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी—बंसीलाल का चित्र लता के मस्तिष्क में खिंच गया और क्षण भर के लिए उसके पागलपन पर वह विषाद से मुस्करा दी।

यह बंसीलाल न होता तो आज उसे यह निराशा न देखनी पड़ती। उसका जीवन जैसा था, अच्छा बीत रहा था। यह बंसीलाल ही था, जिसके कारण जगत से उसका परिचय हुआ। न वह बहस के दिन उस पर वह चोट करता, न अपनी मीठी-मीठी बातों से जगत उसके मन को मोहता और न वह उसकी ओर झुकती। बंसीलाल के कारण ही तो उसे यह असह्य दुःख उठाना पड़ा; उसे अपमानित, तिरस्कृत होना पड़ा। उसके कारण ही तो उसे धोखा हुआ। ये कॉलेज के युवक, सब भौंरे हैं, फूल का रस लेकर उड़ जाने वाले, इनमें परवानों का-सा त्याग कहाँ ! अब भूलकर भी वह भावुकता की नदी में न बहेगी। यह भी अच्छा हुआ कि उसे जल्द ही पता चल गया, नहीं तो कौन जाने वह और कितनी देर तक उसके हाथों में खिलौना बनी रहती।

वह जाकर कुर्सी पर बैठ गयी। ताक़ के टाइम पीस ने टन-टन

लगता था, जैसे उसका शरीर शिथिल हो गया हो और उसे ज्वर हो जायेगा।

रामनारायण को उसने पुकारा और उससे लाइम जूस का एक गिलास बना लाने को कहा और उठकर कौच पर लेट गयी। जिस बात की उसने आशंका भी न की थी, वही हो गयी—ये पुरुष, ये सब वासनाओं के दास हैं! क्या यह प्रेम था? यह तो उसके प्रेम के साथ खिलवाड़ था। जिस तरह मन्त्र-मुग्ध साँप बीन की आवाज़ पर नाचता है, उसी तरह वह भी जगत के संकेतों पर नृत्य करती रही।

यह सोचते-सोचते लता उद्विग्न हो उठी। अपने इस अपमान पर उसका स्वाभिमान तड़प उठा, पर उसका तड़पना एक घायल सर्प के विष उगलने से अधिक महत्व न रखता था।

रात के दस बज चुके थे, रामनारायण लाइम जूस का गिलास रखकर बोला, "आज सुबह से तुमने कुछ नहीं खाया रानी, और नहीं तो दूध ही पी लो।"

लता ने बेज़ारी से सिर हिलाकर उससे कहा कि जाये और तंग न करे।

नौकर चला गया और वह बेचैनी से इधर-उधर कमरे में घूमने लगी—आज प्रतिशोध की भावना ने उसके सामने बंसीलाल की तस्वीर ला खड़ी की। कैसी विडम्बना थी!—उसके जीवन में दो व्यक्ति आये। एक ने उसे भुला दिया और दूसरे को भुलाने का प्रयास वह स्वयं करती रही। एक के साथ उसने स्वयं प्रेम किया, पर उसके प्रेम को उसने कुछ न जाना, दूसरे ने उसके साथ प्रेम किया, पर उसके प्रेम की उसने स्वयं कुछ क़द्र न की।

आज बंसीलाल के उन्माद का चित्र उसकी आँखों के सामने खिंच गया, उसकी कुछ चिट्ठियाँ उसे याद हो आयीं और अपनी निष्ठुरता पर उसे दुःख हुआ। उसने क्यों उससे इतनी उपेक्षा का बर्ताव किया! क्यों उसे कभी मिलने का अवसर न दिया?

घूमते-घूमते लता सोचने लगी, उसका व्यवहार कहाँ तक उचित था ? पर ज्यों-ज्यों वह सोचती, उसे अपना कोई दोष न दिखायी देता। यह ठीक है, उसे जगत से प्रेम था और वह बुरी तरह ठगी गयी, पर इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि उसे बंसीलाल को निराश न करना चाहिए था। क्या अब जब जगत ने उसे धोखा दिया है, वह बंसीलाल से प्रेम कर सकती है ? लता ने अपने दिल को टटोला। नहीं, वह अब भी उससे प्रेम नहीं करती और न कर ही सकती है ? बंसीलाल, माना उससे मुहब्बत करता है, माना वह उसके लिए दीवाना है, पर क्या उसने अपने आप को योग्य बनाने की कोशिश की ? आदमी, निर्धन से, विपन्न से प्रेम कर सकता है; पर उसमें गुण तो हों। सारा दिन आवारों की तरह घूमना, पागलों का-सा व्यवहार करना, उन्मादियों की तरह गाते फिरना, परीक्षाओं में फ़ेल हो जाना—मैले कपड़े, खुला गला, बिखरे बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी—बंसीलाल का चित्र लता के मस्तिष्क में खिंच गया और क्षण भर के लिए उसके पागलपन पर वह विषाद से मुस्करा दी।

यह बंसीलाल न होता तो आज उसे यह निराशा न देखनी पड़ती। उसका जीवन जैसा था, अच्छा बीत रहा था। यह बंसीलाल ही था, जिसके कारण जगत से उसका परिचय हुआ। न वह बहस के दिन उस पर वह चोट करता, न अपनी मीठी-मीठी बातों से जगत उसके मन को मोहता और न वह उसकी ओर झुकती। बंसीलाल के कारण ही तो उसे यह असह्य दुःख उठाना पड़ा; उसे अपमानित, तिरस्कृत होना पड़ा। उसके कारण ही तो उसे धोखा हुआ। ये कॉलेज के युवक, सब भौंरे हैं, फूल का रस लेकर उड़ जाने वाले, इनमें परवानों का-सा त्याग कहाँ ? अब भूलकर भी वह भावुकता की नदी में न बहेगी। यह भी अच्छा हुआ कि उसे जल्द ही पता चल गया, नहीं तो कौन जाने वह और कितनी देर तक उसके हाथों में खिलौना बनी रहती।

वह जाकर कुर्सी पर बैठ गयी। ताक़ ने [illegible] टन-टन

लगता था, जैसे उसका शरीर शिथिल हो गया हो और उसे ज्वर हो जायेगा।

रामनारायण को उसने पुकारा और उससे लाइम जूस का एक गिलास बना लाने को कहा और उठकर कौच पर लेट गयी। जिस बात की उसने आशंका भी न की थी, वही हो गयी—ये पुरुष, ये सब वासनाओं के दास हैं! क्या यह प्रेम था? यह तो उसके प्रेम के साथ खिलवाड़ था। जिस तरह मन्त्र-मुग्ध साँप बीन की आवाज़ पर नाचता है, उसी तरह वह भी जगत के संकेतों पर नृत्य करती रही।

यह सोचते-सोचते लता उद्विग्न हो उठी। अपने इस अपमान पर उसका स्वाभिमान तड़प उठा, पर उसका तड़पना एक घायल सर्प के विष उगलने से अधिक महत्व न रखता था।

रात के दस बज चुके थे, रामनारायण लाइम जूस का गिलास रखकर बोला, "आज सुबह से तुमने कुछ नहीं खाया रानी, और नहीं तो दूध ही पी लो।"

लता ने बेज़ारी से सिर हिलाकर उससे कहा कि जाये और तंग न करे।

नौकर चला गया और वह बेचैनी से इधर-उधर कमरे में घूमने लगी—आज प्रतिशोध की भावना ने उसके सामने बंसीलाल की तस्वीर ला खड़ी की। कैसी विडम्बना थी!—उसके जीवन में दो व्यक्ति आये। एक ने उसे भुला दिया और दूसरे को भुलाने का प्रयास वह स्वयं करती रही। एक के साथ उसने स्वयं प्रेम किया, पर उसके प्रेम को उसने कुछ न जाना, दूसरे ने उसके साथ प्रेम किया, पर उसके प्रेम की उसने स्वयं कुछ कद्र न की।

आज बंसीलाल के उन्माद का चित्र उसकी आँखों के सामने खिंच गया, उसकी कुछ चिट्ठियाँ उसे याद हो आयीं और अपनी निष्ठुरता पर उसे दुःख हुआ। उसने क्यों उससे इतनी उपेक्षा का बर्ताव किया! क्यों उसे कभी मिलने का अवसर न दिया?

घूमते-घूमते लता सोचने लगी, उसका व्यवहार कहाँ तक उचित था ? पर ज्यों-ज्यों वह सोचती, उसे अपना कोई दोष न दिखायी देता। यह ठीक है, उसे जगत से प्रेम था और वह बुरी तरह ठगी गयी, पर इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि उसे बंसीलाल को निराश न करना चाहिए था। क्या अब जब जगत ने उसे धोखा दिया है, वह बंसीलाल से प्रेम कर सकती है ? लता ने अपने दिल को टटोला। नहीं, वह अब भी उससे प्रेम नहीं करती और न कर ही सकती है ? बंसीलाल, माना उससे मुहब्बत करता है, माना वह उसके लिए दीवाना है, पर क्या उसने अपने आप को योग्य बनाने की कोशिश की ? आदमी, निर्धन से, विपन्न से प्रेम कर सकता है; पर उसमें गुण तो हों। सारा दिन आवारों की तरह घूमना, पागलों का-सा व्यवहार करना, उन्मादियों की तरह गाते फिरना, परीक्षाओं में फ़ेल हो जाना—मैले कपड़े, खुला गला, बिखरे बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी—बंसीलाल का चित्र लता के मस्तिष्क में खिंच गया और क्षण भर के लिए उसके पागलपन पर वह विषाद से मुस्करा दी।

यह बंसीलाल न होता तो आज उसे यह निराशा न देखनी पड़ती। उसका जीवन जैसा था, अच्छा बीत रहा था। यह बंसीलाल ही था, जिसके कारण जगत से उसका परिचय हुआ। न वह बहस के दिन उस पर वह चोट करता, न अपनी मीठी-मीठी बातों से जगत उसके मन को मोहता और न वह उसकी ओर झुकती। बंसीलाल के कारण ही तो उसे यह असह्य दुःख उठाना पड़ा; उसे अपमानित, तिरस्कृत होना पड़ा। उसके कारण ही तो उसे धोखा हुआ। ये कॉलेज के युवक, सब भौंरे हैं, फूल का रस लेकर उड़ जाने वाले, इनमें परवानों का-सा त्याग कहाँ ? अब भूलकर भी वह भावुकता की नदी में न बहेगी। यह भी अच्छा हुआ कि उसे जल्द ही पता चल गया, नहीं तो कौन जाने वह और कितनी देर तक उसके हाथों में खिलौना बनी रहती।

वह जाकर कुर्सी पर बैठ गयी। ताक़ के टाइम पीस ने टन-टन

कर दिया। लता उठी। बंसीलाल ने कुंडी लगा दी और लता की ओर मुँह फेर कर बोला, "घबराओ नहीं लता। मैं तुम से केवल दो बातें करना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि तुम इन्हें शांति से सुनो। मैं नहीं चाहता कि कोई मेरी बातों में बाधा डाले, इसलिए बैठ जाओ— मैं तुम से अनुनय करता हूँ, बैठ जाओ।"

लता बैठ गयी। बंसीलाल प्रार्थना कर रहा था, परन्तु उसके अनुनय में आदेश का बल था।

बंसीलाल उसके सामने मेज़ के कोने पर बैठ गया। उस समय बिजली चमकी, बादल गरजे और ज़ोर से वर्षा होने लगी। वायु का एक ठंडा झोंका अन्दर आया और उसके साथ ही पानी की तेज़ फुहार—उसने उठकर खिड़की बन्द कर दी और फिर मेज़ पर बैठ गया।

कमरे में पूरी निस्तब्धता छा गयी।

कुछ क्षण तक दोनों चुप रहे। बंसीलाल की आँखों के सामने जाने क्या-क्या घूम गया—तीन लम्बी मंज़िलें, मात्र लोहे का नल, अँधेरा और वर्षा—भय और आशंका को त्यागकर वह जाने किस तरह चढ़ आया था?—दीर्घ निश्वास छोड़कर उसने सिर झुका लिया, एक साथ ही कितनी बातें उसके मस्तिष्क में आकर हलचल मचाने लगीं।

लता ने आज बंसीलाल के मुख को पहली बार इतने निकट से देखा और इन कुछ क्षणों में पहली बार उसे लगा—बंसीलाल सुन्दर भी हो सकता है, पर उसकी सुन्दरता, उदासीनता और बेपरवाही के आवरण में छिपी हुई है—उसकी दाढ़ी बढ़ आयी थी, ओठों पर पपड़ियाँ जम गयी थीं, बाल भीगकर घुँघराले हो गये थे, उसके गले का बटन खुला हुआ था, वह चुपचाप प्रतीक्षा करती रही, पर बंसीलाल नहीं बोला। आख़िर लता ने ही इस मौन को भंग किया।

"बंसीलाल!"

वंसीलाल ने सिर उठाया। लता की ओर उसकी निगाहें निमिष भर को चार हुईं। वंसीलाल का मुख कपास के फूल की भाँति ज़र्द था। अभी कुछ क्षण पहले जो व्यक्ति क्रोध का अवतार बना हुआ था, अब उसे देखकर दया आती थी।

"क्या कहते हो?" लता बोली, "देखो रात कितनी हो गयी है!"

वंसीलाल ने एक दीर्घ-निश्वास छोड़ा। लता के सामने कहने के लिए जो वाक्य उसने आते-आते कंठस्थ किये थे, वे अब अवसर आने पर उसके मस्तिष्क से आकाश के हल्के बादलों की भाँति उड़ गये थे।

लता और कुछ क्षण चुप बैठी रही, फिर उठ खड़ी हुई।

"तुम्हें कुछ नहीं कहना है वंसीलाल, मुझे आज्ञा दो। तुम जिस रास्ते आये हो, जा सकते हो, मैं विश्वास दिलाती हूँ कि किसी से इसका ज़िक्र तक न करूँगी।"

और वह दरवाज़े की ओर बढ़ी।

"ठहरो लता!"

लता रुक गयी और प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखने लगी।

"मेरा अनुमान था, मेरी दशा अपनी मूक भाषा से मेरे हृदय की व्यथा तुम से कह देगी," वंसीलाल ने फ़र्श पर दृष्टि जमाये हुए कहा, "पर मालूम होता है, तुम नहीं समझ सकीं, या समझकर भी न समझने का प्रयास कर रही हो।

"साफ़-साफ़ कहो, वंसीलाल!"

"तुम नहीं समझ सकतीं, लता?"

"मैं कोई अन्तर्यामिनी तो हूँ नहीं, जो तुम्हारे दिल की बात जान लूँ।"

"मेरा पत्र मेरे हृदय का दर्पण था।"

"मैंने वह बिना पढ़े फाड़ दिया था।"

"तो तुम्हारी ओर से यही जवाब है?"

"किसको?"

"मेरी चिरसंचित आशाओं को।"

लता ने और भी कठोर होकर कहा, "वंसीलाल तुम देखते नहीं, समझते नहीं, फिर क्यों मेरी ज़बान खुलवाना चाहते हो ?"

"मैं आज तुम्हारे मुँह से 'हाँ' अथवा 'न', दोनों में से एक शब्द सुनने आया हूँ।"

"तो मुझे दुःख है, मेरे दिल में तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं।"

"लेकिन मेरे दिल में तो है," वंसीलाल ने अचानक भावावेश में कहना शुरू किया, "आँखें आँखों को देखती हैं और मुहब्बत करती हैं। दिल दिल का दर्द महसूस करता है और हमदर्द बन जाता है। तुमने मुझ पर, मेरे अनुराग पर, मेरी श्रद्धा पर अपनी आँखों और दिल के दरवाज़े बन्द कर रखे हैं। तुमने मेरे विनाश की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। तुमने कभी न सोचा कि तुम्हारी एक हमदर्द दृष्टि इस मृतक के लिए संजीवनी का काम देगी। तुम्हारी स्मिति की एक क्षीण-सी रेखा उसमें नव-जीवन का संचार कर देगी।"

अवरुद्ध कंठ को तर करके वंसीलाल फिर बोला, "लता! वंसीलाल सदा ही अब जैसा वंसीलाल न था। तुम्हारी उपेक्षा ने, तुम्हारी कृपा-के अभाव ने, तुम्हारी कम-निगाही ने, उससे उल्लास, हर्ष, खुशी सब कुछ छीन लिया। वह सदा ही ऐसा आवारा, ऐसा असफल न था। तुम्हें शायद मालूम न हो, तुम्हारे आने से पहले अपनी कक्षा ही में नहीं, सारे विश्वविद्यालय में वह सर्व-प्रथम रहा था। खेल-कूद का भी उस जैसा शौक़ीन कोई न था। उसका जीवन एक गीत था। और आज एक वंसीलाल तुम्हारे सामने आया है—पहले वंसीलाल की छायामात्र—और आज वह तुमसे घुटने टेककर, तुम्हारे पाँवों पर सिर झुकाकर तुम से भीख माँगने आया है, या तो इस वंसीलाल के ढाँचे में मुहब्बत की रूह फूँककर उसे जीवित कर दो, या फिर इसमें जो कुछ जान बाकी है, उसे भी ले लो! वंसीलाल आज तुम से जीवन ले जायगा अथवा तुम्हें जीवन दे जायगा।"

यह कहता हुआ बंसीलाल उसके पैरों पर झुक गया। उसके जीवन-मरण का प्रश्न था। कौन जाने फिर आयु भर उसे यह अवसर मिले या न मिले। आज उसके सामने अपना दिल खोलकर रख दे, उसे बता दे कि वह क्या चाहाता है, वह क्या भीख माँगता है। मुद्दत से वह इस अवसर की खोज में था। आज जब उसे यह अवसर मिला तो चुप क्यों रहता, किसी अज्ञात प्रेरणा से उसकी जिह्वा में एक विचित्र शक्ति आ गयी, उसके हृदय में एक विचित्र बल का संचार हो गया। वह जो कुछ कहना चाहता था, उससे भी कहीं अधिक कह गया और जब वह अपने सपनों की देवी के चरणों में झुका तो आवेश के कारण उसकी आँखों में आँसू आ गये।

लता किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सी बैठी अपने पाँवों पर झुके हुए बंसीलाल को देखती रही, इच्छा होने पर भी वह अपने पैर न हटा सकी।

उसके पैरों ने आँसुओं का दो गर्म बूँदों को महसूस किया। क्षण भर के लिए उसके पराजित गर्व ने विजय के उल्लास से फिर सिर उठाया, पर दूसरे क्षण उसके सामने जगत के विश्वासघात का चित्र खिंच गया। उसने मुहब्बत के कितने वादे न किये, वह कितनी बार इन्हीं पैरों पर इसी तरह नहीं झुका, कितनी बार उसने प्रेम और अनुराग से काँपते हुए स्वर में याचनाएँ न कीं; पर अन्त को......ये पुरुष सब शिकारी हैं। शिकार को जाल में फँसाकर, पंख काटकर छोड़ देते हैं—उसने पाँव खींच लिये और बंसीलाल को धीरे से ढकेलते हुए कहा, "क्या करते हो बंसीलाल, पागलपन न करो। जाओ, जाकर अपना काम सम्भालो।"

"कह दो तुम मुझसे मुहब्बत करोगी।"

"मुहब्बत बरबस नहीं पैदा की जाती।"

"कह दो प्रयास करोगी।"

घड़ी ने टन-टन ग्यारह बजाये। लता तिलमिलाकर उठ खड़ी हुई। "जाओ बंसीलाल चले जाओ! बहुत हो चुका, अब चले जाओ!!"

"मेरे प्रश्न का उत्तर ?"

लता ने दरवाज़े की ओर पैर बढ़ाते हुए कहा, "मैं कुछ नहीं कह सकती, मैं कुछ नहीं कह सकती।"

"तो फिर बंसीलाल भी जीवित नहीं रह सकता !" वह खिड़की की ओर बढ़ा, "सब कुछ बिगाड़कर भी यदि तुम्हारा प्रेम न पाया, तो जो शेष है उसे रखकर भी वह क्या करेगा ?"

और यह कहते हुए उसने खिड़की खोल दी और जल्दी से उसमें लटक गया।

लता रुकी—हवा का तेज़ झोंका अन्दर आया। वह काँप गयी। पर्दे हिले, दीवार पर टँगे हुए कैलेण्डर हिले मानो उसके साथ ही सारे-का-सारा कमरा और उसकी प्रत्येक वस्तु काँपने लगी।

"कभी दूसरों की बेवफ़ाई देखकर मेरी वफ़ा याद कर लेना !" और उसने खिड़की से हाथ छोड़ दिये।

"बंसीलाल—बंसीलाल !"—लता भागकर खिड़की में आयी।

बंसीलाल गिरता हुआ दूसरी मंज़िल के छज्जे से अटका और फिर नीचे गली के फ़र्श पर गिरकर तड़पने लगा।

लता चीख़ उठी और बेहोश हो गयी।

नौकर भागकर ऊपर आया। अन्दर से कुण्डी लगी हुई थी। उसने ज़ोर से किवाड़ खटखटाते हुए पुकारा—

"लता रानी ! लता रानी !"

—०—

२०

दूसरे दिन लाहौर के समाचार-पत्रों ने इस घटना को तरह-तरह का रंग चढ़ाकर प्रकाशित किया। एक ने लिखा कि बंसीलाल ने लता को बलपूर्वक भगाने का प्रयत्न किया, जिसमें असफल होने के कारण

उसकी यह दशा हुई। कुछ ने यह खबर दी कि बेकारी से तंग आकर युवक ने दीवार फाँदकर चोरी करने की कोशिश की, किन्तु अभ्यस्त न होने के कारण गिर गया। एक तीसरे ने इसमें प्रेम के अन्धे देवता का हाथ बताया।

और उस समय जब सारे नगर में इस दुःखद घटना पर आलोचनाएँ तथा प्रत्यालोचनाएँ हो रही थीं, मेयो अस्पताल के एक बड़े कमरे की निस्तब्धता में घायल बंसीलाल पट्टियों में लिपटा निश्चेष्ट पड़ा था। उसका सिर फट गया था; दोनों टाँगें और बाजू टूट गये थे, शरीर ऐसा था, जैसे पत्थरों से पिस गया हो, लेकिन अभी साँस बाकी थी और अस्पताल के तीन बड़े डाक्टर उसे मृत्यु के मुँह से बचाने के दुष्कर प्रयत्न में संलग्न थे। एक ओर मूक स्तब्ध खड़ी लता उस मांस-पिण्ड को देख रही थी, जिसके प्राण जीवन और मृत्यु की नाजुक सीमा पर लटक रहे थे।

अपनी बारीक आवाज़ से इस खामोशी को तोड़ते हुए लता ने कहा, "डाक्टर साहब, किसी तरह भी इनकी जान नहीं बच सकती?"

"डाक्टर अमृतराय ने लता की ओर देखा, उस के इस वाक्य में कितना निवेदन निहित था! उन्होंने धीरे से कहा, "बच सकती है, पर वह जीवन मृत्यु से बदतर होगा।"

लता हाथ मलते हुए बोली, "डाक्टर साहब, आप इन्हें जिला लीजिए, किसी तरह बचा लीजिए, इन्होंने मेरे लिए यह कष्ट मोल लिया, मैं इनके लिए सब दुःख उठा लूँगी।"

डाक्टर अमृतराय बोले, "मेरी सम्मति में तो जितनी जल्दी हो सके, इन्हें इस नरक से छुटकारा दिला देना चाहिए, इस तड़पने से तो मौत हज़ार दर्जे अच्छी है।"

तब बड़े डाक्टर ने दार्शनिक भाव से कहा, "डाक्टर का काम बचाना है और हम भी इसे बचाने का भरसक प्रयत्न करेंगे, लेकिन......"

"लेकिन नहीं डाक्टर साहब," लता उद्विग्न हो उठी, "लेकिन न

कहिए, बताइए किस चीज़ की ज़रूरत है ? धन चाहिए ? धन मैं दूँगी ! सेवा चाहिए ? सेवा मैं दिन-रात करूँगी ! बताइए क्या चाहिए ? बस मैं जुटा दूँगी; पर परमात्मा के लिए इन्हें आप बचा लीजिए !

और आँसू अनायास उस की आँखों से बह चले।

"घबराइए नहीं," बड़े डाक्टर ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा, "अपनी ओर से हम कोई कसर न उठा रक्खेंगे; पर चिन्ताजनक बात यह है कि इनके घावों से रक्त अधिक जा चुका है और आपरेशन करने से इन की जीवन-लीला समाप्त हो जाने का डर है।"

"आपरेशन से पहले इन्हें किसी प्रकार जीवित नहीं रक्खा जा सकता ?"—लता ने पूछा।

इस के लिए इन के शरीर में किसी युवा व्यक्ति का रक्त दाखिल करना अनिवार्य है*।" और यह कहकर डाक्टर फिर अपने काम में लग गये।

लता तनिक आगे बढ़कर बोली, "रक्त ! डाक्टर साहब, रक्त मैं दूँगी ! मेरे रक्त का निरीक्षण कीजिए। यदि उस से काम चल सके तो मेरे रक्त का अन्तिम बिन्दु तक इन के शरीर में डाल दीजिए, पर इन्हें किसी तरह बचा लीजिए !"

तभी लता के पिता मलिक पिंडीदास अन्दर दाखिल हुए। पुत्री का अन्तिम वाक्य उन्होंने सुन लिया—एक आवश्यक काम के लिए उन्हें उसी वक्त जाना था और यहाँ यह परिस्थिति आ खड़ी हुई। उन के समझाने-बुझाने का कुछ असर न हुआ था और लता कल की भूखी उसी तरह बिना खाये-पिये अस्पताल आ गयी थी और अब वह इस हद तक तैयार हो गयी थी।

रुँधे हुए गले से उन्होंने कहा, "लता, कुछ मेरे बुढ़ापे का ध्यान करो बेटी।"

क्षण भर तक लता चुप खड़ी अपने वृद्ध पिता को देखती रही।

*Transfusion of Blood.

उन का प्यार, उन की मुहब्बत, उन का प्रेम जैसे मूर्तिमान होकर उसके सामने आ गया। तो क्या वह उस प्यार, उस मुहब्बत का बदला इस अवश्ता से देगी? लता का दिल डाँवाँडोल हो उठा—दूसरे क्षण डाक्टर के कंधों के ऊपर से होती हुई उस की दृष्टि बंसीलाल की मृतप्राय देह पर पड़ी और उसकी आँखों के सामने कल रात का चित्र घूम गया। अनुनय-विनय से भरे हुए बंसीलाल के शब्द उसके कानों में गूँज उठे। तो क्या वह इस युवक को, जिसने उसके लिए अपनी जान तक की बाजी लगा दी, इस दीन-हीन असहाय दशा में छोड़कर चली जाय? वह मुड़ी और उसने अपने हृदय की सारी वेदना अपनी आँखों में भरकर कहा—"पिताजी मुझे न रोकिए!"

मलिक साहब चुपचाप चले गये। उन्हें जल्दी जाना था। जाते-जाते उन्होंने रामनारायण के हाथ में नोटों का एक बंडल दिया और कहा, "बाबा, लता को आँच न आने पाये। किसी तरह का कष्ट न हो, डाक्टरों से कह देना मैं फिर आऊँगा।"

रामनारायण चुप खड़ा रहा, पर उसकी आँखें कह रही थीं—"आँच कैसे आयेगी मालिक, उसे कुछ हो, इससे पहले इस वृद्ध की जान न चली जायेगी।"

रात नौकर ने लता को कमरे में बेहोश पाया था। होश में आने पर वह दीवानी-सी होकर नीचे को भागी थी। बंसीलाल बेहोश, खून में लथपथ पड़ा था। वह उसके घायल शरीर से लिपट गयी थी। उसे स्वयं उठाकर अन्दर ले आयी थी। तभी मलिक साहब भी आ गये थे और तब से घर में किसी ने आराम की साँस न ली थी। सब को यही डर था कि बंसीलाल के साथ लता की जान भी न जाती रहे, अभी तक उसने किसी को कुछ न बताया था; पर पागलों की-सी उस की बातों से मलिक साहब सब कुछ समझ गये थे और उन्हें डर था कि भावातिरेक में लता कोई ऐसी-वैसी बात न कर बैठे। रामनारायण पर उन्हें पूरा विश्वास था। उसके हाथों में सब कुछ छोड़कर तनिक से निश्चिन्त

होकर वे चले गये थे।

प्रेम और उपेक्षा—मन की दो विभिन्न स्थितियों के ही तो रूप हैं। जिस जगत को अभी कुछ क्षण पहले लता अपने हृदय से प्रेम करती थी, उससे अब वह अपने दिल की समस्त शक्तियों से घृणा कर रही थी। और यह बंसीलाल—लता ने जिसके लिए अपने हृदय में कभी तनिक-सा स्थान भी खाली न रखा, आज अचानक उस के सम्पूर्ण हृदय का स्वामी बन बैठा।

लता सोचती थी—जिस व्यक्ति ने उस के लिए जान तक देने में संकोच न किया, वह और क्या न कर सकता था। वह सुन्दर था, रूपवान था, योग्य भी था, निर्धनता की उसके आगे क्या बिसात थी? वह उसे ज़रा उत्साह दिलाती, तो धन-वैभव को बाँधकर उसके चरणों में ला डालता और तभी उसके लिए वह स्वयं अपने आप की बलि देने को प्रस्तुत हो उठी थी।

उसके पिता शीघ्र ही वापस आ गये। उन्हें चैन कहाँ? वे कुछ निश्चिन्त होकर चले तो गये थे, पर उनका मन उधर ही लगा हुआ था। बड़े सर्जन से तो उन्होंने कुछ नहीं कहा, किन्तु डाक्टर अमृतराय को अलग ले जाकर वे उनके सामने रो पड़े। उन्होंने दो सौ रुपये के नोट उनके सामने रख दिये और कहा—'डाक्टर साहब, लता की जान आप के हाथ में है।' डाक्टर अमृतराय ने नम्रता से नोट लौटा दिये और कहा—'आप कोई चिन्ता न करें। मैं उन्हें समझाऊँगा। और यदि वह न भी मानीं, तो भी ऐसा प्रयास करूँगा, जिससे जीवन खतरे में न पड़े।' और फिर लता को दूसरे कमरे में बुलाकर दोनों ने उसे बहुत समझाया, पर लता अपने हठ पर क़ायम रही।

अमृतराय बोले, "बचने पर बंसीलाल का जीवन नरक से भी बुरा होगा।"

"मैं उसे स्वर्ग बना दूँगी।" उसने सामने दीवार की ओर देखते हुए कहा।

"शायद वह बच न सके।"

"तो मैं भी जान दे दूँगी।"

तब तीनों बड़े कमरे में आ गये। चाहे अब कुछ भी हो, लता के लिए वंसीलाल को बचाना ही होगा—यही सोचते हुए डाक्टर अमृतराय बड़े सर्जन से परामर्श करने लगे।

कुछ देर बाद डाक्टरों ने उस के रक्त का निरीक्षण किया। आपरेशन हुआ और कोई पाव भर रक्त वंसीलाल के शरीर में चला गया। लता बेहोश हो गयी, उसका मुख पीला पड़ गया और ओंठ शुष्क हो गये। डाक्टरों ने उसे शक्तिवर्धक दवाइयाँ पिलायीं। ज़र्द चेहरे पर कुछ-कुछ सुर्खी आयी, फीके ओंठ मुसकराये—यदि वंसीलाल उस के लिए मर रहा था, तो वह भी उस के लिए जान दे रही थी!

आपरेशन के बाद डाक्टर साहब बाहर आ गये। अमृतराय ने कहा, "खून की कमी तो किसी-न-किसी तरह पूरी कर दी जायगी, पर इन घावों का क्या होगा?"

"यदि किसी युवा व्यक्ति के शरीर से गोश्त काटकर वहाँ सी दिया जाय तो शायद घाव ठीक हो जायँ।"*

डाक्टर अमृतराय ने जैसे अपने से कहा, "गोश्त कौन देगा?"

"गोश्त मैं दूँगी।"—सीधे-साधे कपड़े पहने एक युवती ने आगे बढ़कर कहा। न जाने वह कब की वहाँ खड़ी थी।

दोनों डाक्टर हैरान से उस की ओर देखने लगे।

—०—

१३

बड़े डाक्टर ने आगे बढ़कर कहा—"तुम गोश्त दोगी?"

"हाँ!"

---

*plastic surgery.

"क्यों ?"

"बंसीलाल मेरा भाई है !"

इस एक वाक्य में इस बलिदान का कारण निहित था। बंसीलाल मेरा भाई है—डाक्टर ने अपने दिल में इस वाक्य को दोहराया। उस का नीरस फ़लसफ़ा इस बात को न समझ सका। भाई—उस ने सोचा—लेकिन भाई के लिए ही इतनी असह्य पीड़ा कौन मोल ले सकता है !

"तुम ने हमारा तात्पर्य नहीं समझा।"

"मैं भली भाँति समझ गयी हूँ।"

डाक्टर ने अपने मतलब को स्पष्ट करते हुए कहा, "आपरेशन से तुम्हारे शरीर से टुकड़े काटकर तुम्हारे भाई के शरीर पर लगाये जायँगे।"

"मैं जानती हूँ।"

दोनों डाक्टर आश्चर्यान्वित से, हैरान से उस का मुँह ताकने लगे, पर यदि वे उस के सरल चेहरे को न देखकर उस के हृदय की गहराई को देखते, उस अथाह समुद्र में पैठते, तो उन्हें उस के साहस पर आश्चर्य न होता। वे उसे पागल या मूर्ख न समझते, बल्कि श्रद्धा से उन का मस्तक नत हो जाता।

राजरानी बंसीलाल की छोटी बहन तो थी, पर उसे बंसीलाल से जो प्रेम था, उस की देख-भाल वह जिस स्नेह से करती थी, उस में बड़ी बहन के प्रेम की-सी चाशनी थी। बंसीलाल, जैसे कुछ अध्ययनशील लेकिन बेपरवाह छात्रों का स्वभाव होता है, अपनी जरूरतों की ओर से उदासीन ही रहता था। खाना मिल जाता तो खा लेता, नहीं पुस्तक सामने रखे बैठा रहता या उठकर मित्रों की मण्डली में जा मिलता।

कॉलेज के छात्रों को अपने कपड़ों का अधिक ध्यान रहता है, वे अपने सूट-बूट और टॉयलेट के लिए ही अपने समय का अधिक भाग खर्च करते हैं; पर बंसीलाल इस ओर से भी बेपरवाह था और उस की

इसी बेपरवाही ने राजरानी को बड़ी बहन की पदवी दे दी थी। बंसीलाल को समय पर खाना खिलाना, उस के कपड़े बदलवाना, उस के काम की चीजें यथा स्थान रख देना, उस ने अपना कर्तव्य बना लिया था। प्रायः वह बड़ी बहनों की भाँति इस उदासीनता के लिए उसे झिड़क भी देती थी, "तुम्हें न जाने कब समझ आयगी!" वह कहती, "कॉलेज में पढ़ते हो, पर अपने कपड़ों तक का होश नहीं, यह मैले कपड़े कब तक पहन रखोगे, इन्हें उतार डालो......।"

बंसीलाल खामोशी से सुन लेता, कभी हूँ-हाँ भी न करता। राजरानी उसे नये कपड़े ला देती, वह खामोशी से पहनकर चला जाता। कभी जब उस की कोई पुस्तक न मिलती, तो कहती, "इतना पढ़ गये, पर किताबों का खयाल रखना तुम्हें न आया। मैं कहती हूँ, आखिर मैं भी तो पढ़ती हूँ, पर मैंने कभी नहीं कहा कि मुझे किताब नहीं मिलती।" लेकिन फिर वह उसे पुस्तक ढूँढ़कर ला देती। ऐसे अवसर पर वह उस की ओर सहानुभूतिपूर्ण निगाहों से देखती और अपनी इस पदवी पर फूली न समाती। उस के भाई की देख-माल का भार उस के सिर पर है, यह बात गर्व से उस का सिर ऊँचा कर देती। शायद अगर बंसीलाल अपना काम स्वयं करना शुरू कर देता, तो राजरानी को दुःख होता।

पिता की मृत्यु के समय बंसीलाल यद्यपि बच्चा था, पर उस की बुद्धि प्रखर थी। सदा वह अपनी श्रेणी में सर्व-प्रथम रहता था। माँ चाहती थी, लड़के के पेट में चार अक्षर पड़ जायँ। वह शिक्षित तो न थी, पर फिर भी संसार का कुछ-न-कुछ अनुभव रखती थी। घर में थोड़ा-बहुत रुपया भी था, एक-दो आभूषण भी थे, यह सब कुछ वह बंसीलाल और उस की बहन पर लगा देना चाहती थी। उस का क्या है, किसी-न-किसी तरह मेहनत-मजदूरी करके अपना पेट पाल ही लेगी। बंसीलाल की फ़ीस माफ़ हो गयी थी, शिक्षा जारी रही और मैट्रीकुलेशन में बंसीलाल प्रान्त भर में सर्व-प्रथम रहा!

राजरानी को भी उस की माँ ने अशिक्षित न रहने दिया। पाँचवीं

कक्षा तक उस का खर्च अधिक हुआ न था, फिर उसे छात्र-वृत्ति मिलने लगी। आठवीं में फिर उसने छात्र-वृत्ति ली, इसलिए माँ ने उसे पाठशाला से न उठाया था। और जिस वर्ष बंसीलाल एफ० ए० में सर्व-प्रथम आया था, उसी वर्ष रानी ने दसवीं पास कर ली थी। जब से बंसीलाल कॉलेज में गया था, तभी से दोनों माँ-बेटी बंसीलाल की आवश्यकताओं का अधिक ध्यान रखने लगी थीं। रानी की वृत्ति का कुछ भाग भी उधर ही खर्च हो जाता था। वह स्वयं भी अपनी पढ़ाई में इतना समय न लगा पाती थी; इसलिए वह पास तो प्रथम श्रेणी में हो गयी; पर सर्व-प्रथम न रह सकी थी। बंसीलाल बी० ए० में दाखिल हो गया, पर रानी अब अपनी शिक्षा जारी न रख सकी।

बी० ए० में बंसीलाल को न जाने क्या हो गया था? राजरानी महसूस कर रही थी, जैसे उस का भाई अब वह भाई नहीं रहा। बेपरवाह तो वह पहले ही था, पर जब भी पढ़ता था, सब कसर निकाल लेता था, किन्तु अब तो धीरे-धीरे जैसे किताबों से ही उस का जी उच्चट गया था। अब यदि वह कुछ कहती भी तो वह उसे डाँट देता। कई-कई दिन घर न आता और प्रायः रातों को भी बाहर ही रह जाता। आता भी तो बेचैन-सा, उद्विग्न-सा! उस के स्वभाव में चिड़चिड़ापन भी आ गया था। राजरानी उस की इस उद्विग्नता को देखकर बेचैन हो जाती। वह उस से इस अशान्ति का कारण पूछने का प्रयास करती, पर जाने बंसीलाल को क्या हो गया था कि अब उसे उस से बात करते भी डर लगता था। तीसरे वर्ष में बंसीलाल दो विषयों में फ़ेल हो गया। राजरानी ने समझा कि अगले वर्ष मन लगाकर पढ़ लेगा, पर जब बी० ए० की परीक्षा सिर पर आयी और बंसीलाल के स्वभाव में कोई अंतर न आया, तो एक दिन उस ने माँ से कहा था—

"भाई साहब आज कल पढ़ाई में मन नहीं लगाते। यदि यही हाल रहा तो डर है बी० ए० में फ़ेल न हो जायँ।"

जैसे बच्चे को उस की पसंद के खिलौने की बुराई करने वाला बुरा

लगता है, उसी तरह माँ को राजरानी की बात बुरी लगी। बंसीलाल से माँ को अगाध प्रेम था। वह उस का खिलौना था, ठाकुर था, विधवा का एक मात्र सहारा था, उस का सब कुछ था। उस के सारे स्वप्न उसी में केन्द्रित थे। फिर राजरानी उन स्वप्नों को भंग करने वाली, उस के ठाकुर की निन्दा करने वाली कौन? माँ ने उसे डाँट दिया, चित्रकार को अपने चित्र में दोष दिखायी देने के बदले प्रायः समालोचक की दृष्टि में दोष दिखायी देता है।

राजरानी चुप हो गयी। उसे नाव में छेद होता साफ़ दिखायी दे रहा था। बच्ची न थी। सब समझती थी; पर ओंठ न हिला सकती थी। अपने लड़के से प्रेम तो सब माताओं को होता है; पर अपने पुत्र के प्रति विधवा का प्रेम तो जगत् विख्यात है। बंसीलाल अब वह बंसीलाल नहीं रहा, यह बात राजरानी जानती थी; किन्तु माँ की आँखों पर मोह का पर्दा पड़ा हुआ था। राजरानी ने बातों-बातों में बंसीलाल को समझाने का प्रयास किया था। घर की दयनीय दशा की ओर उस का ध्यान आकर्षित किया था; पर बंसीलाल को उन दिनों न जाने क्या हो गया था। जिस बहन के इशारे पर वह चलता था, अब उस की बात तक न सुनता था। पढ़ाई, किताबें, बड़े-बड़े मनसूबे, बड़े-बड़े स्वप्न, मानो उस के लिए कोई महत्व न रखते थे। वह इन सब महत्वाकांक्षाओं की ओर से उदासीन हो गया था। अन्त को वही हुआ, जिस का राजरानी को डर था—बी० ए० में बंसीलाज फ़ेल हो गया और कई दिन तक घर न आया।

माँ की आँखों के आगे से पर्दा हट गया। सँवार-सँवारकर रखा हुआ खिलौना टूट गया। गुम-सुम रह गयी। आँसुओं के सिवा उसे कहीं सहारा न मिला।

गली में ला० किशोरीलाल परोपकारी आदमी थे। किसी को कष्ट हो, किसी पर विपत्ति आये, वे उस की सहायता को तैयार हो जाते थे। बंसीलाल की माँ को भी इस विपत्ति में उन के सिवा सहायता करने वाला

कोई न दिखायी दिया।

उसने उन्हीं की शरण ली। वह उन के पैरों पर पड़ गयी। कहने लगी, "महाराज, अब तो आप का ही आसरा है, यदि बंसीलाल न मिला, तो मैं जीते जी मर जाऊँगी।"

लाला किशोरीलाल ने सान्त्वना दी, बोले, "घबराओ नहीं, जो लड़का सदा सर्व-प्रथम ही रहता आया हो, वह यदि परीक्षा में कम नम्बरों से भी पास हो तो ग्लानि से उस का हृदय भर जाता है, फिर फ़ेल होना—वह कितना ही क्यों न चरित्र-हीन हो गया हो, उस की आँखों का पानी कितना भी क्यों न मर गया हो, उसे शोक हुए बिना नहीं रहता।"

बंसीलाल की माँ ने कहा, "मेरा बंसी तो बड़ा शर्मीला है, न जाने कैसे फ़ेल हो गया ? एक-दो अध्यापकों से उस का वैर था, उन्होंने ज़रूर षड्यन्त्र करके उसे फ़ेल कर दिया है। सब की आँखों में तो खटकता था। न जाने किस की कुदृष्टि उस पर पड़ गयी ?"

लालाजी को माँ के भोलेपन पर दया हो आयी। पुत्र कितना भी बुरा, कितना भी चरित्र-हीन क्यों न हो, पर माँ की ममता उस के दोष न देखेगी। उन्हें स्वयं बंसीलाल के पतन का ज्ञान था। एक बार स्वयं उसे बुलाकर समझा चुके थे, किन्तु प्रकट में बोले, "कोई बात नहीं, मैं सब कुछ देख लूँगा, तुम कुछ चिन्ता न करो। आये तो उसे सान्त्वना देना। सफलता और असफलता तो जीवन के साथ है। इन्हीं परिस्थितियों से निकलकर मनुष्य बनता है और उसमें दृढ़ता आती है।"

माँ को डर था कि कहीं बंसीलाल निराश होकर कुछ ऐसी-वैसी बात न कर बैठे। फ़ेल होने का उसे इतना दुःख न था। खेद था तो उस के घर न आने का। रुद्ध कंठ से बोली, "महाराज, आप जाकर उस का पता तो लगाएँ, मेरा तो जी जैसे टूट रहा है, जाने उस ने कुछ खाया-पिया भी है या नहीं। कोई ऐसी-वैसी बात न कर बैठे। इतने दिन हो गये। हमारा तो खाना-पीना हराम हो गया है। उस की बहन

रो-रोकर मरी जा रही है! मैंने सुना है नगर में एक लड़के ने परीक्षा में असफल होने पर रेल के नीचे सिर दे दिया, कहीं वह भी......" इसके आगे माँ कुछ न कह सकी, फफक-फफककर रोने लगी थी।

उस दिन सन्ध्या हो चुकी थी। लालाजी कहीं दूर न जा सके। रात को उन्हें कुछ कम दिखायी देता था, इसीलिए दूसरे दिन सुबह ज्योंही वे बाहर निकले, उन्होंने वंसीलाल के विषय में यह हृदयविदारक समाचार पढ़ा। कुछ क्षण तक बाजार में किंकर्तव्य-विमूढ़ से खड़े रहे। किस मुँह से वंसीलाल की माँ को यह दुःखद समाचार सुनायेंगे? सुनकर वह कैसे सह सकेगी?

यह सोचते-सोचते चुपचाप वे अपनी बैठक में जाकर बैठ गये। अन्त में सोच-सोचकर उन्होंने राजरानी को बुलाया और उसके सामने वह समाचार-पत्र रख दिया। पढ़ते-पढ़ते राजरानी का मुख पीला पड़ गया। वंसीलाल ने चोरी करने का प्रयास किया होगा, इस बात का तो उसे विश्वास न था; पर वह तिमंजिले मकान से गिर पड़ा है, यही सोचकर रानी चेतनाहीन और अवाक् खड़ी रह गयी। समाचार-पत्र उसके हाथ से गिर पड़ा, उसका सिर चकराने लगा, और गिरने से बचने के लिए वह वहीं धरती पर बैठ गयी। समाचार उसने दोबारा पढ़ा और फिर उठ खड़ी हुई। चीखी नहीं, चिल्लायी नहीं। हाँ, बहते हुए आँसुओं को उसने पोंछ लिया और चलने लगी।

लालाजी ने पूछा, "किधर जाती हो?"

"अस्पताल!" और यह कहकर निकल गयी। डेवढ़ी से मुड़कर उसने फिर अवरुद्ध कंठ से कहा, "मेरी माँ का खयाल रखिएगा!" और फिर तेजी से चल पड़ी, पर उसकी चाल शीघ्र ही धीमी हो गयी। अपने जाने वह तेज चल रही थी, पर पाँव तो मन-मन के हो रहे थे, जैसे चलने से जवाब दे रहे हों। वही अस्पताल, जो उसके घर से बहुत दूर न था और जहाँ वह बीसियों बार आयी थी, अब जैसे मीलों दूर दिखायी

देता था। गिरती-पड़ती वहाँ पहुँची तो चुपचाप जाकर बरामदे में ख
हो गयी। उस समय आपरेशन हो चुका था और डाक्टर आपरेश
रूम से बाहर निकल बातें कर रहे थे। उन्हें गोश्त की आवश्यकता थी
अपने भाई का चित्र उसके सामने खिंच गया। मुहब्बत ने जोश मार
आगे बढ़कर बोली "गोश्त मैं दूँगी।"

बड़े डाक्टर ने कहा, "आप आपरेशन के कमरे में तशरीफ़ ले
चलिए।"

और राजरानी चुपचाप चल पड़ी।

—०—

१४

"डाक्टर अमृतराय आये हैं।"

लता उदास-सी उठ खड़ी हुई। रोज़ ऐसा ही होता था, रोज वह इसी तरह उठती थी और फिर उन्हें नमस्कार करके बैठ जाती थी।

इन छः महीनों में उस ने दो बार बंसीलाल के लिए अपना रक्त दिया था, रानी ने पाँच-छः बार अपना मांस दिया था, वह दुर्बल और कृशकाय अस्पताल में पड़ी अपने घावों के भरने की राह देख रही थी, किन्तु इस पर भी बंसीलाल की दशा में कोई परिवर्तन न हुआ था। वह जीवित तो था, पर मुर्दों से बदतर! उसकी सूरत बिगड़ गयी थी, टाँगें और भुजाएँ बेकार हो गयी थीं। सामने के दाँत टूट गये थे, चेहरे तथा कमर की दायीं ओर भारी घाव आ गये थे और मस्तिष्क पर इतनी चोट पहुँची थी कि किसी को पहचानता ही न था—अधिकांश समय चेतनाहीन-सा आँखें बन्द किये रहता, या कभी जागता तो शून्य में ताका करता। उसे देखकर कौन कह सकता था कि यह व्यक्ति कभी सुन्दर भी रहा होगा। न वह बोल सकता था और न वह सुन सकता

था, न समझ सकता था। यह जीवन था ! यह मूर्तिमान मृत्यु थी, जिसमें लता, राजरानी, डाक्टर अमृतराय और बड़े डाक्टर के निरन्तर प्रयत्नों ने उसे घसीट लिया था।

लता इसी पर संतुष्ट थी। सारा दिन वह अस्पताल में उस के सिरहाने बैठी रहती। फ़ैमली-वार्ड में एक कमरा उस ने अपने लिए रिज़र्व करवा लिया था। रक्त देने के बाद उस के शरीर में शक्ति ही न रही थी, पर ज्यों ही उस में कुछ बल आया, वह उठ खड़ी हुई। सारा दिन वह भाई-बहन दोनों की सेवा करती। राजरानी के त्याग ने उस की आँखें खोल दी थीं। वह एक बार रक्त देकर ही गर्व करती थी, लेकिन पाँच बार डाक्टरों को बंसीलाल की कमर और गरदन के घावों के लिए गोश्त की आवश्यकता पड़ी थी और पाँचों बार किसी झिझक या डर के बिना रानी ने अपने आप को पेश कर दिया था। डाक्टर आवश्यकतानुसार उस के शरीर से मांस का एक-दो इंच लम्बा टुकड़ा काट लेते; फिर उस पर पट्टी कर देते, जब वह ठीक हो जाता तो दूसरे आपरेशन के लिए उसे बुला लेते। पहली बार की पीड़ा के बावजूद राजरानी दूसरी बार गोश्त देने के लिए तैयार हो जाती। यही कारण था कि जब डाक्टरों को बंसीलाल के शरीर में और खून पहुँचाने की आवश्यकता पड़ी, तो लता ने दूसरी बार अपने आप को पेश कर दिया।

मलिक साहब ने ऐसा करने से उसे बहुत रोका था। डाक्टर अमृतराय ने भी एकान्त में उसे इस तरह आत्महत्या करने से रोकने का भरसक प्रयत्न किया था। उन्होंने कहा था, "रुपया खर्च करके किसी-न-किसी युवक को इस काम के लिए तैयार किया जा सकता है। मात्र एक विज्ञापन देने की आवश्यकता है। बेकारों की भीड़ में से कोई-न-कोई गहरी रकम लेने के लोभ से अपना पाव-आध पाव रक्त देने को निकल ही आयेगा। आप तो पहले ही दुर्बल हो चुकी हैं, यों अपने शरीर का अन्त न कीजिए; लेकिन लता ने केवल इतना ही कहा था.

"अपनी भूल का दण्ड मैं किसी दूसरे को क्यों दूँ।" अपने बलिदान से जब वह रानी के बलिदान की तुलना करती थी, तो उस के हृदय में एक अदम्य उत्साह उत्पन्न हो जाता था। आध पाव रक्त क्या, वह अपने रक्त का अन्तिम बिन्दु तक बंसीलाल के लिए सहर्ष दे सकती थी।

दिन-रात वह अस्पताल में बैठी उस मांस-पिंड की सेवा-शुश्रूषा में लगी रहती। उस के पिता उसे समझा-समझाकर हार गये थे। उन्होंने अस्पताल आना तक छोड़ दिया था। जितने रुपये वह माँगती, वे भेज देते थे। उस के इस व्यवहार से उन के दिल को बहुत धक्का लगा था। उन्होंने कहा था, "बंसीलाल की सेवा के लिए नौकर भेजे जा सकते हैं, डाक्टरों और नरसों का प्रबन्ध किया जा सकता है, तुम्हारी क्या आवश्यकता है?" किन्तु लता जानती थी नौकरों के दिल में वह दर्द कहाँ जो उस के हृदय में है। चोट जहाँ लगती हो, वहीं टीस होती है, दूसरी जगह नहीं। थककर वे चुप हो गये थे। पिता का हृदय दुखी होता था, अपनी प्रिय पुत्री की यह दशा देखकर खून के आँसू रोता था; पर कर कुछ न सकता था। जो स्वच्छन्दता उसे उन्होंने अपने हाथों दी थी, उसका स्वयं ही कैसे गला घोंट देते। उन्होंने लता को पुरुष के रूप में देखना चाहा था, पर यह न देखा था, इस कोमल कलेवर में कहीं एक धड़कता दिल भी है, जो सोलहो आने नारी का दिल है—भावुक नारी का दिल!

अपनी समस्त शक्तियों से लता बंसीलाल से प्रेम करने लगी थी। वह इस मांस-पिंड से प्रेम न करती थी, वह तो बंसीलाल के उस चित्र से प्यार करती थी, जो उस के बलिदान का चित्र था। बीसियों बार उस की आँखों के सामने वह दृश्य घूम गया था, जब उस के प्रेम में दीवाना बंसीलाल अपनी जान को संशय में डालकर तीसरी मंजिल पर उस के कमरे में चढ़ आया था और उस के कानों में उस की प्रार्थना, उस का आत्म-निवेदन, उस की अनुनय-विनय सब कुछ गूँज जाता था।

कौन उस के लिए इतना त्याग कर सकता ? काश वह उसे तनिक भी प्रोत्साहन देती ! उसे जरा सी आशा दिलाती !! आज वह यों चलने-फिरने से लाचार, बेबस, असहाय न पड़ा होता ! उसने सचमुच उसे तबाह कर दिया। बंसीलाल ने उस रात कहा था— लता, बंसीलाल ऐसा ही न था। हाँ, बंसीलाल ऐसा न था। उसकी उपेक्षा ने उसे इतना निकम्मा, इतना नाकारा बना दिया। फिर वह क्यों न अपना सर्वस्व उस पर न्योछावर कर दे, अपना सारा जीवन उसकी सेवा में गुज़ार दे, अपने शरीर का अन्तिम अणु तक उसके लिए अर्पण कर दे !

उन दिनों लता को कुछ वैराग्य-सा हो गया था। उसका जी संसार और संसार के सारे सुखों से उदासीन हो गया था। लाहौर में कितने अच्छे चल-चित्र आये, किन्तु उसने, उन्हें देखना तो दूर, उन का नाम भी न लिया। इतने नेता लाहौर में आये, पर वह कभी किसी का भाषण सुनने न गयी। इतने आन्दोलन आरम्भ हुए, पर उसने कभी भी उन में दिलचस्पी न ली। और तो और उसने कभी समाचार-पत्र तक न पढ़ा। अपने शरीर और अपनी वेश-भूषा से भी वह प्रायः उदासीन ही रही। जिस पाउडर पर वह जान देती थी, अब उसे उसने कभी भूले से भी हाथ न लगाया था; जिन बालों को वह सौ-सौ नाज़ से पालती थी, अब अनाथों से मालूम होते थे; जिन कानों में नित नये-नये कर्णफूल डाले जाते थे, वे अब प्रायः सूने ही रहते थे और शरीर भी, जिसको दिन में दो-तीन बार नयी-नयी साड़ियों से सुशोभित करती थी, अब एक ही सीधी-साधी-सी धोती अथवा साड़ी से आवृत रहता था। संसार और इसके सुख—इनमें इतना भी ठहराव नहीं, जितना किसी रेत की दीवार में......

उन दिनों उसे परमात्मा से भी कुछ लगन हो गयी थी। आज तक उसे यह पता न था, ईश्वर क्या है ? वह है भी या नहीं ? इस ओर से भी वह सदा उदासीन ही रही। कभी सोचा भी

अस्तित्व में विश्वास न कर सकी, किन्तु अब उसे कहीं से उस महान् शक्ति में आशा हो गयी थी। निराश और बेबसों का अन्तिम सहारा परमात्मा ही है। सब ओर से निराश होकर या तो वे ईश्वर के अनन्य भक्त बन जायँगे या फिर उनसे बड़ा नास्तिक कोई न होगा। लता भी इस बेबसी में उसी महान् शक्ति से सान्त्वना पाती। सुबह-शाम वह उस अन्तर्यामी के आगे सिर झुकाती और बंसीलाल के स्वस्थ होने की प्रार्थना करती और फिर कई बार वह कल्पना-ही-कल्पना में बंसीलाल को स्वस्थ देखती; कल्पना ही में उससे अपनी निष्ठुरता के लिए क्षमा माँगती; कल्पना ही में वह उसके पाँवों में झुक जाती, किन्तु कल्पना के ये प्रासाद ढह जाते, फिर बनाये जाते, फिर धराशायी हो जाते। मनुष्य का मस्तिष्क भी निरीह भोले-भाले बालकों की भाँति मिट्टी के घरौंदे बनाता है, पर यथार्थता की वायु उनकी नीवों को पक्का नहीं होने देती। भोला-भाला पक्षी विटप की सबसे ऊँची शाखा पर अपना घोंसला बनाता है। उसे क्या मालूम कि सबसे पहले बिजली की दृष्टि वहीं पड़ेगी?

डाक्टर अमृतराय हैट को बगल में दबाये हुए दाखिल हुए। वे अस्पताल के नये डाक्टर थे—नवयुवक पर सौम्य—कुछ का ख़याल था कि उनके गाम्भीर्य का कारण उनकी उच्च-शिक्षा है, कुछ का विचार था कि यह अधिकार की गर्मी है। कुछ भी हो, उनके चौड़े मस्तक पर, उनके सुन्दर और सुगठित मुख पर, सौम्यता की गहरी छाप रहती थी। रोगियों से भी उनका व्यवहार कुछ इतना सन्तोषप्रद न था। अपनी पोजीशन से जरा झुकना उनके लिए असम्भव था। अनुशासन में वे विश्वास रखते थे और शायद इसीलिए उनसे कुछ लोग अप्रसन्न भी थे, पर जब से बंसीलाल अस्पताल में आया और उसके साथ ही लता आयी, तब से उनके व्यवहार में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया था। बंसीलाल को एक नज़र देखते ही उन्होंने कह दिया था—"यह नहीं बच सकता," पर

ब लता ने अपनी वेदना भरी आँखों से उसकी ओर देखकर अपने अवरुद्ध कण्ठ से, अपनी उद्भ्रांत वाणी से, उस की जान बचाने की प्रार्थना की तो फिर उन्हों ने जान लड़ा दी। दिन-रात एक करके उसे मृत्यु के मुँह से खींच लाये।—शायद यही पहला केस था, जिस में उन्हों ने इतनी विनम्रता, इतनी विनयशीलता का परिचय दिया था। लता के सामने उन की उदारता की नदी जैसे अपने वेग पर आ जाती, उस के सामने वे अपनी ऊँचाई से उतर आते और रोगियों से ऐसी बातें करते, जैसे दिल में घर कर लेंगे।

एक दिन की बात है, लता जनरल वार्ड में मौजूद थी। तुलसी ने एक भंगी को धक्का दे दिया। लता और अमृतराय दोनों ने उसे देखा और फिर दोनों की निगाहें चार हुईं। अमृतराय ने आव देखा न ताव, तुलसी पर बरस पड़े। उस के दो थप्पड़ भी जड़ दिये—"यह तुम्हारे बाप का अस्पताल है कि यहाँ किसी को आने से रोकते हो? यह अमीरों के लिए नहीं, ग़रीबों के लिए है। अमीर तो दूसरे डाक्टरों से भी लाभ उठा सकते हैं; पर इन निर्धनों के लिए इस अस्पताल के सिवा कहीं सहारा नहीं। तुम चौकीदार हो, खुदा तो नहीं कि इस प्रकार निर्धनों को धक्के दो।"

तुलसी बेचारा दुबककर रह गया था। डाक्टर साहब बड़े स्नेह से मेहतर को अन्दर लाये। वह सहमा हुआ उन की ओर खड़ा तकता रहा था। एक दिन उस ग़रीब की पत्नी बीमार थी। तुलसी ने दया करके उसे अन्दर दाखिल कर लिया था; लेकिन उस दिन वह ग़रीब इसलिए पिटा था कि इतनी भीड़ होते हुए उस ने उसे अन्दर क्यों आने दिया।

डाक्टर साहब का अभिवादन करके लता फिर कुर्सी में धँस गयी, जैसे वह कोई मशीन हो, जिसका काम उठना-बैठना हो।

डाक्टर साहब ने बंसीलाल को देखा, उस की मरहम-पट्टी की और

फिर नर्स को आवश्यक आदेश देकर एक दबा हुआ निश्वास छोड़ वे कुर्सी पर बैठ गये। एक व्यथित निगाह से उन्हों ने पहले लता को देखा फिर बंसीलाल को और फिर एक लम्बी साँस ली—दो महीने से रोज़ ऐसा ही होता था। लता के परिश्रम, उस की निष्ठा, उस के सेवा-भाव को देखकर डाक्टर अमृतराय मुग्ध हो गये थे। कई बार उन्हों ने चाहा था, काश वे बंसीलाल ही होते।

लता के प्रेम-पात्र बनने के लिए वे मृत्यु जैसे जीवन का भी स्वागत करते। उन्हें लता उस समय देवी मालूम होती थी। सूखे बिखरे बालों में, सीधी सी धोती पहने वह उन्हें वन में अपने आप उग आने वाली वेलि सी, अपनी रुखाई में भी सुन्दर दिखायी देती थी। माली ने उसे अपने हाथ से काट-छाँटकर ठीक नहीं किया तो क्या! उसे सुन्दरता से नहीं सजाया तो क्या! वह जिस वृक्ष का भी सहारा लेगी, उस की छाया बढ़ा देगी! बातचीत आरम्भ करने के विचार से डाक्टर साहब बोले, "इन का बचना तो अब निश्चित हो गया है, पर वह जीवन मृत्यु से भी बुरा होगा।"

"अब कितने दिनों में आराम हो जायगा?" लता ने उदास स्वर में पूछा।

डाक्टर साहब का गाम्भीर्य दृढ़ हो गया, फिर भी उन्हों ने मुस्कराने का प्रयास करते हुए कहा, "यों कहिए कि बीमारी कब आरम्भ होगी?"

लता ने आँखों में आँसू भरकर कहा, "डाक्टर साहब, मैंने ही इन्हें इस दशा को पहुँचाया है, मेरी उदासीनता और उपेक्षा ने ही इन्हें इस प्रकार की आत्महत्या पर विवश किया था।

"जीवन में कई बार ऐसी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं," डाक्टर साहब ने दार्शनिक भाव से कहा, "परिस्थितियाँ ही ऐसी होती हैं, मनुष्य का उन पर कुछ बस नहीं होता। आप योंही अपना दिल छोटा करती हैं।"

उस वक्त बंसीलाल ने कराहते हुए टूटे-फूटे स्वर में पुकारा—'लदा'

'लदा'—यही एक शब्द था, जो बंसीलाल कभी-कभी होश में आकर कहता था। शायद वह लता को पुकारता था, या शायद पीड़ा से व्याकुल होने पर अनायास उस के मुँह से यह शब्द निकल जाता था, पर लता यही समझती थी कि वह उसे पुकारता है और कई बार उसके स्वप्न इसी एक शब्द से बिखर जाते थे और वह अचानक उठकर देखती थी कि बंसीलाल को कोई कष्ट तो नहीं।

वह इस तरह उठकर बंसीलाल के बिस्तर पर पहुँची जैसे वह बिजली से बनी हुई हो। उस ने बंसीलाल का सिर अपनी गोद में रख लिया और पुकारा, "बंसीलाल, बंसीलाल!"

बंसीलाल नहीं बोला।

रुद्ध कंठ से लता फिर बोली, "बंसीलाल, बंसीलाल, बोलो, एक बार फिर पुकारो, इसी तरह पुकारो। देखो लता तुम्हारे पास खड़ी है! तुम्हारी सेवा करने के लिए प्रस्तुत है। बंसीलाल! बंसीलाल!!"

बंसीलाल अब भी नहीं बोला। वह बेहोश था। लता उस के विकृत मुख, उस की बन्द आँखों को देखती रह गयी और बड़े-बड़े आँसू उस की आँखों के कोनों पर ढुलक आये, उस ने साड़ी के छोर से उन्हें पोंछ डाला।

डाक्टर अमृतराय की गम्भीरता भी द्रवित हो गयी। उन की बाह्य आकृति भी हृदय के आवेगों से अछूती न रह सकी, आँखें डबडबा आयीं। उन के जी ने चाहा जाकर लता के चरण चूम लें, लेकिन दीर्घ-निश्वास लेकर चुप बैठे रहे। कुछ देर बाद संयत स्वर में उन्होंने कहा—"आप उन्हें न बुलायें, इस से इन की अवस्था खराब हो जाने का डर है। यद्यपि इन्हें अब आराम हो रहा है, तो भी ये उस रस्सी पर लटक रहे हैं, जिस के एक ओर जीवन है और दूसरी ओर मृत्यु है।"

लता चुपचाप उठी और अपनी कुर्सी पर आ बैठी। जब भी बंसीलाल होश में आता था, यही दो शब्द पुकारता था, लता तड़पकर उस के बिस्तर पर जाती थी, उसे बुलाती थी, पर उत्तर न पाकर [illegible]

उद्भ्रांत सी आकर कुर्सी पर बैठ जाती थी।

बात का रुख बदलने के अभिप्राय से डाक्टर अमृतराय ने पूछा, "आपने खाना तो खा लिया होगा ?"

"अभी भूख लगी नहीं !" लता ने जैसे किसी दूसरी दुनिया से जवाब दिया।

डाक्टर साहब ने कहा, "यदि आप इस तरह उपवास करेंगी तो कैसे चलेगा।"

लता ने दीर्घ-निश्वास छोड़ते हुए कहा, "नहीं इतनी जल्दी मुझे मौत नहीं आ सकती।"

—०—

१५

डाक्टर अमृतराय ने बंसीलाल को बचाने के लिए जी जान से जं परिश्रम किया, उस का प्रभाव लता पर चाहे इतना न पड़ा हो, पर राज रानी का हृदय इस गम्भीर पर सहृदय डाक्टर के लिए श्रद्धा से भ उठा था। उस के सामने डाक्टर का जो रूप आया था, वह एक विनम्र उदार, दूसरे के दुःख को अपना दुःख जानने वाले, दयावान डाक्टर क रूप था। इन चन्द महीनों ही में रानी अमृतराय को देवता की तर पूजने लगी थी। उस ने जैसा सुना था, जैसा समझा था, उस से कितने भिन्न हैं—अपनी सूनी घड़ियों में वह यही सोचा करती थी।

सरकारी अस्पताल हो या गैर-सरकारी, चाँदी के देवता की स जगह पूजा होती है। इस देवता के दर्शन से ही दर्प विनम्रता औ कठोरता मृदुता में परिणत हो जाती है। जिन निर्धनों पर इस देवता कृपा नहीं, वे खैराती अस्पतालों से भी निराश ही लौटते हैं। सरक लाख नोटिस लगवाये कि सरकारी नौकरों को कोई रिश्वत न दे, कि

ग़र्ज़ रखने वाले देते हैं । दिल पर पत्थर रखकर देते हैं । वे देने के लिए विवश हैं । न दें तो धक्के खायें । नियम और अनुशासन के नाम पर निकाले जायँ, निराश वापस लौटें ।

उसे स्वयं इस बात का अनुभव था । सम्पन्न लोगों की ओर पहले ध्यान दिया जाता है । ग़रीबों की बारी भी नहीं आती । पर डाक्टर अमृतराय इस के अपवाद थे, उन की आँखों में धनी, निर्धन, सम्पन्न, विपन्न सब एक समान थे । कम-से-कम रानी ने तो ऐसा ही देखा था । एक दिन उन्हों ने एक चौकीदार को इसलिए निकाल दिया था कि उस ने एक निर्धन से चवन्नी रिश्वत ली थी और यदि लता न कह देती तो वह भंगी सदा के लिए नौकरी से हाथ धो बैठता । उसे मालूम था— उन्हों ने एक धनाधीश के लड़के को इसलिए जल्दी देखने से इनकार कर दिया था कि उस समय वे एक ग़रीब जाट के लड़के को देख रहे थे और काफ़ी प्रतीक्षा करने के बाद क्रोध में आकर वे सेठ साहब अपने लड़के को लेकर, गाड़ी में बैठ, अस्पताल से चले गये थे । फिर रोगियों से उन का व्यवहार कितना संवेदनापूर्ण था, उन के स्वर में कितनी मिठास और हमदर्दी थी ! बंसीलाल को उन्हों ने मृत्यु की गहरी खोह से खींच लिया था । वे न होते तो वह भाई से वंचित रह जाती, उसे संसार में बहन के स्नेहपूर्ण नाम से बुलाने वाला कोई न रहता !

जब कभी अमृतराय उस के कमरे में आते, उस का दिल धड़कने लग जाता । जब उसे बुलाते तो उस के मुख पर लाली दौड़ जाती । वह उन्हें देखना चाहती, लेकिन देख न सकती, बात करना चाहती, लेकिन बोल न सकती । उस ने किस तरह एक नहीं, दो नहीं, पाँच बार अपने शरीर के टुकड़े बंसीलाल के शरीर में पैवन्द लगाने के लिए दिये थे, इस बात ने सब को आश्चर्यान्वित कर दिया था, लेकिन कौन जानता है कि उसे तनिक भी दुःख, तनिक भी कष्ट न हुआ था । यदि डाक्टर अमृतराय आपरेशन करें, तो वह अपना अंग-अंग कटवा सकती थी । उन हाथों के स्पर्श-मात्र से ही उस में अपूर्व शक्ति भर ज[illegible]

पीड़ा में भी उसे एक परम सुख का आभास मिलता था।

सन्ध्या का समय था। बाहर बादल घिरे हुए थे और मौसम कुछ भारी भारी था—कुछ नींद सी ला देने वाला—फ़ैमेली-वार्ड के एक कमरे में एक स्वच्छ बिस्तर पर रानी चादर ओढ़े ख़ामोश पड़ी थी। आँखें बन्द थीं, किन्तु सो रही हो, यह बात न थी—दिल की आँखें खुली थीं और मस्तिष्क जाग रहा था। इस जाग्रतावस्था में ही वह एक स्वप्न देख रही थी—डाक्टर अमृतराय उस की मरहम-पट्टी करने के लिए उस के पास ही कुर्सी पर बैठ गये हैं। उन की आँखें उस के चेहरे पर लगी हुई हैं। रानी को लग रहा है जैसे उन की दृष्टि उस के शरीर को स्पर्श कर रही है। एक बार उस ने उन्हें देखने का प्रयास किया। दोनों की निगाहें चार हो गयीं। वह लज्जा से लाल होकर रह गयी। डाक्टर साहब ने मुस्कराकर कहा—'रानी, तुम ने अपने भाई के लिए जो त्याग किया है, वह कौन किस के लिए कर सकता है!'

रानी कुछ कहना चाहती है, पर कह नहीं सकती। लज्जा शब्दों को उस के गले ही में रोक देती है, पर उस का दिल जानता है कि इस दुनिया में एक और व्यक्ति भी है, जिस के लिए वह इस से भी बड़ा त्याग कर सकती है। वह कनखियों से डाक्टर साहब को देख कर और मुस्करा कर रह जाती है।

डाक्टर साहब प्यार से अपना हाथ उस की बाँह पर फेरते हैं, कहते हैं—'रानी, तुम देवी हो, त्याग और बलिदान की मूर्ति हो।'

रानी चुप रह जाती है, उस के समस्त शरीर में रोमांच की सनसनी दौड़ जाती है, हृदय की गति तीव्र हो जाती है और नस-नस में एक अनिर्वचनीय आनन्द का आभास होता है।

तेज़ हवा के झोंकों से रोशनदान बन्द हो जाते हैं। किवाड़ खड़-खड़ा उठते हैं। रानी की कल्पना का जादू टूट जाता है। वह आँखें खोल देती है—न डाक्टर, न वे बातें, न वह जीवनदायक स्वर—उस ने लम्बी साँस लेकर करवट बदली और आँसुओं के दो गर्म मोती

उस की आँखों से ढुलककर उस के बिस्तर में गुम हो गये।

बाहर खूब वर्षा हो रही थी। शायद तेज हवा भी चल रही थी रानी का दिल विषाद से भर आया और अचानक उस की दायीं आँख फड़क उठी। रानी की विचार-धारा पलट गयी। इस भारी एकाकी वातावरण में उसे अपनी माँ की याद हो आयी। कई बार यह बात उस के मन में आयी थी। सोचती थी शायद लाला जी ने उसे बंसीलाल के गिरने की खबर ही न दी हो। लेकिन उसे आना चाहिए था, मेरी इतने दिनों की अनुपस्थिति में क्या उस ने मेरी खोज न की होगी? अवश्य की होगी। उसे सब कुछ मालूम हो गया होगा, फिर क्यों नहीं आयी? क्या उसे यहाँ आने की, अपनी लड़की को देखने की आज्ञा नहीं मिली? फिर सोचती—ऐसा तो कोई नियम नहीं है। उस की दायीं आँख और भी ज़ोर से फड़क उठी। उस के हृदयाकाश पर आशंकाओं के बादल छा गये। उस ने सोचा—आज जब डाक्टर साहब आयेंगे तो वह उन से अपनी माँ की बाबत अवश्य पूछेगी।

कई बार पहले भी उस के मन में यह प्रश्न उठा था। कई बार उस ने पूछने का विचार किया था। आपरेशन के कारण पहले तो बात करने का अवसर ही न मिला और फिर जब आपरेशन खत्म हुआ तो डाक्टर अमृतराय का रोब उस पर कुछ ऐसा छाया कि उन से पूछना उस के लिए अत्यन्त कठिन हो गया। उन के सामने उस की जिह्वा मूक हो जाती थी। वे कुछ पूछते भी तो जवाब न बनने के कारण उस के मुख पर लाली दौड़ जाती थी और शरीर पसीना-पसीना हो जाता था। लता से वह अवश्य पूछ सकती थी, पर इच्छा होते हुए भी उस से वह कुछ न कह सकी थी। न जाने क्यों लता से वह खिची-खिची रहती थी। इस अस्त-व्यस्त दशा में भी लता की आँखों में रानी को एक ऐसी बात दिखायी देती जिस से उस के अधिक सम्पन्न होने का आभास मिलता था। उस के सामने अपनी दीन दशा बताने में रानी को संकोच होता था। बंसीलाल और लता के बीच क्या बात थी, इस का उसे

पीड़ा में भी उसे एक परम सुख का आभास मिलता था।

सन्ध्या का समय था। बाहर बादल घिरे हुए थे और मौसम कुछ भारी भारी था—कुछ नींद सी ला देने वाला—फ़ैमेली-वार्ड के एक कमरे में एक स्वच्छ बिस्तर पर रानी चादर ओढ़े ख़ामोश पड़ी थी। आँखें बन्द थीं, किन्तु सो रही हो, यह बात न थी—दिल की आँखें खुली थीं और मस्तिष्क जाग रहा था। इस जाग्रतावस्था में ही वह एक स्वप्न देख रही थी—डाक्टर अमृतराय उस की मरहम-पट्टी करने के लिए उस के पास ही कुर्सी पर बैठ गये हैं। उन की आँखें उस के चेहरे पर लगी हुई हैं। रानी को लग रहा है जैसे उन की दृष्टि उस के शरीर को स्पर्श कर रही है। एक बार उस ने उन्हें देखने का प्रयास किया। दोनों की निगाहें चार हो गयीं। वह लज्जा से लाल होकर रह गयी। डाक्टर साहब ने मुस्कराकर कहा—'रानी, तुम ने अपने भाई के लिए जो त्याग किया है, वह कौन किस के लिए कर सकता है!'

रानी कुछ कहना चाहती है, पर कह नहीं सकती। लज्जा शब्दों को उस के गले ही में रोक देती है, पर उस का दिल जानता है कि इस दुनिया में एक और व्यक्ति भी है, जिस के लिए वह इस से भी बड़ा त्याग कर सकती है। वह कनखियों से डाक्टर साहब को देख कर और मुस्करा कर रह जाती है।

डाक्टर साहब प्यार से अपना हाथ उस की बाँह पर फेरते हैं, कहते हैं—'रानी, तुम देवी हो, त्याग और बलिदान की मूर्ति हो।'

रानी चुप रह जाती है, उस के समस्त शरीर में रोमांच की सनसनी दौड़ जाती है, हृदय की गति तीव्र हो जाती है और नस-नस में एक अनिर्वचनीय आनन्द का आभास होता है।

तेज़ हवा के झोंकों से रोशनदान बन्द हो जाते हैं। किवाड़ खड़-खड़ा उठते हैं। रानी की कल्पना का जादू टूट जाता है। वह आँखें खोल देती है—न डाक्टर, न वे बातें, न वह जीवनदायक स्वर—उस ने लम्बी साँस लेकर करवट बदली और आँसुओं के मोती दोनों

उस की आँखों से ढुलककर उस के बिस्तर में गुम हो गये।

बाहर खूब वर्षा हो रही थी। शायद तेज हवा भी चल रही थी। रानी का दिल विषाद से भर आया और अचानक उस की दायीं आँख फड़क उठी। रानी की विचार-धारा पलट गयी। इस भारी एकाकी वातावरण में उसे अपनी माँ की याद हो आयी। कई बार यह बात उस के मन में आयी थी। सोचती थी शायद लाला जी ने उसे बंसीलाल के गिरने की खबर ही न दी हो। लेकिन उसे आना चाहिए था, मेरी इतने दिनों की अनुपस्थिति में क्या उस ने मेरी खोज न की होगी? अवश्य की होगी। उसे सब कुछ मालूम हो गया होगा, फिर क्यों नहीं आयी? क्या उसे यहाँ आने की, अपनी लड़की को देखने की आज्ञा नहीं मिली? फिर सोचती—ऐसा तो कोई नियम नहीं है। उस की दायीं आँख और भी ज़ोर से फड़क उठी। उस के हृदयाकाश पर आशंकाओं के बादल छा गये। उस ने सोचा—आज जब डाक्टर साहब आयेंगे तो वह उन से अपनी माँ की बाबत अवश्य पूछेगी।

कई बार पहले भी उस के मन में यह प्रश्न उठा था। कई बार उस ने पूछने का विचार किया था। आपरेशन के कारण पहले तो बात करने का अवसर ही न मिला और फिर जब आपरेशन खत्म हुआ तो डाक्टर अमृतराय का रोब उस पर कुछ ऐसा छाया कि उन से पूछना उस के लिए अत्यन्त कठिन हो गया। उन के सामने उस की जिह्वा मूक हो जाती थी। वे कुछ पूछते भी तो जवाब न बनने के कारण उस के मुख पर लाली दौड़ जाती थी और शरीर पसीना-पसीना हो जाता था। लता से वह अवश्य पूछ सकती थी, पर इच्छा होते हुए भी उस से वह कुछ न कह सकी थी। न जाने क्यों लता से वह खिंची-खिंची रहती थी। इस अस्त-व्यस्त दशा में भी लता की आँखों में रानी को एक ऐसी बात दिखायी देती जिस से उस के अधिक सम्पन्न होने का आभास मिलता था। उस के सामने अपनी दीन दशा बताने में रानी को संकोच होता था। बंसीलाल और लता के बीच क्या बात थी, इस का उसे

अभी तक पता न लगा था। हाँ कुछ सुनी-सुनायी बात, जो उसे मालूम हुई थी, उस ने उस के दिल को और भी संकोच में जकड़ दिया था। वह चाहती थी, वह उससे बातचीत करे, पर लता में उस ने अपनेपन का सदैव अभाव पाया। वह उस के कमरे में आती थी, उस की आवश्यकताओं का ध्यान रखती थी, पर फिर भी न जाने उस के व्यवहार में कुछ ऐसी बात थी कि रानी कुछ भी पूछ न पायी थी। शायद अपनी हीनता और दारिद्रय ने ही उस के मन में इतना संकोच भर दिया था।

वर्षा के छींटे खिड़की पर लगी हुई मोटी जाली से छनकर कमरे में आने का विफल प्रयास कर रहे थे। रानी की निगाहें खिड़की में जम गयीं जैसे वह जाली के छेदों को भेद कर बाहर वर्षा का आनन्द लेना चाहती हों। उसी क्षण कमरे का दरवाजा खुला और भीगी हुई बरसाती पहने, हैट पर खोल चढ़ाये, डाक्टर अमृतराय ने अन्दर प्रवेश किया।

रानी की दृष्टि उन के चेहरे की ओर उठी, फिर झुक गयी, उस के शरीर में सनसनी सी दौड़ गयी। उसे कुछ सर्दी सी लगी और उस ने चादर को कुछ और खींच लिया।

वाटर-प्रूफ़ कोट को उतार कर अलग रखते हुए, हैट को दीवार पर टाँगकर डाक्टर अमृतराय रानी की चारपाई के समीप कुर्सी पर बैठ गये। उन्हों ने पूछा, "अब जी कैसा है?"

रानी को इन दो शब्दों में मिठास की एक नदी सी बहती प्रतीत हुई उसे जान पड़ा जैसे यह नदी कानों से गुज़रकर उसकी नस-नस में प्रवेश कर रही है। आँखें बन्द करके वह इस मिठास का आनन्द लेने लगी। कमरे में एक विचित्र शान्तिमय ठंढक छायी हुई थी। चारपाई के दायीं ओर, दीवार के साथ लोहे की श्वेत डोली पड़ी थी, जिस पर श्वेत वार्निश किया हुआ था, डोली में रानी के कपड़े आदि बन्द थे और उस के ऊपर दूध पीने का प्याला, श्वेत पट्टियाँ, शीशी और दूसरा सामान रखा था। फ़र्श बिलकुल साफ़ था, केवल खूँटी पर लटका हुआ वाटर

प्रूफ़ कोट निचुड़ रहा था। कमरे में अँधेरा सा छाया हुआ था और डाक्टर अमृतराय अपने लम्बे सुडौल, सुगठित और बलिष्ठ शरीर को लिये हुए कुर्सी पर बैठे थे। रानी शान्ति और संतोष के साथ बिस्तर पर आँखें बन्द किये पड़ी थी। पर उस का दिल कैसा धड़क रहा था, इसे वह भली-भाँति जानती थी। डाक्टर साहब ने उसे चुप देखकर फिर धीरे से पूछा, "अब जी कैसा है?"

रानी ने आँखें खोल दीं, किन्तु अमृतराय की ओर बिना देखे हुए कहा, "अच्छी हूँ।"

"आप कब जाना चाहती हैं?"

जाना चाहती हैं! रानी ने एक बार विषाद भरी थकी सी दृष्टि डाक्टर साहब पर डाली, बोली, "जब आप जाने को कहें!"—और फिर उसने मुँह दीवार की ओर कर लिया।

डाक्टर साहब को लगा जैसे यह कहते-कहते रानी का गला रुँध गया है, उसका मुख तो उनकी ओर न था, पर कंठ के स्वर से ही उन्हों ने जाना जैसे उस की आँखों में आँसू छलछला उठे हैं।

डाक्टर साहब ने उठकर, अपने स्वर में और मृदुता भर कर, कहा, "देखो भाई, बंसीलाल को अब प्रायः आराम हो गया है, यदि तुम उसे आराम कह सको। अस्पताल उस के लिए जो कुछ कर सकता था, उस ने किया। तुम सब के त्याग और बलिदान से उस के जीवन की डोरी और लम्बी हो गयी है और वह इस दशा में काफ़ी दिनों तक जीवित रह सकता है। अमृतलता अब उसे ले जाना चाहती है।

"कहाँ ले जाना चाहती हैं?" रानी ने मुड़कर धीरे से पूछा।

यह मुझे मालूम नहीं, लेकिन बंसीलाल को जब आराम हो गया है तब वे अस्पताल छोड़ना चाहती हैं। मुझे उन्हों ने यह कहने को भेजा है कि यदि आप भी चाहें तो अस्पताल छोड़ सकती हैं।

रानी ने केवल अश्रुपूर्ण नेत्रों से डाक्टर साहब की ओर देखा और चुप रही।

अभी तक पता न लगा था। हाँ कुछ सुनी-सुनायी बात, जो उसे मालूम हुई थी, उस ने उस के दिल को और भी संकोच में जकड़ दिया था। वह चाहती थी, वह उससे बातचीत करे, पर लता में उस ने अपनेपन का सदैव अभाव पाया। वह उस के कमरे में आती थी, उस की आवश्यकताओं का ध्यान रखती थी, पर फिर भी न जाने उस के व्यवहार में कुछ ऐसी बात थी कि रानी कुछ भी पूछ न पायी थी। शायद अपनी हीनता और दारिद्र्य ने ही उस के मन में इतना संकोच भर दिया था।

वर्षा के छींटे खिड़की पर लगी हुई मोटी जाली से छनकर कमरे में आने का विफल प्रयास कर रहे थे। रानी की निगाहें खिड़की में जम गयीं जैसे वह जाली के छेदों को भेद कर बाहर वर्षा का आनन्द लेना चाहती हों। उसी क्षण कमरे का दरवाजा खुला और भीगी हुई बरसाती पहने, हैट पर खोल चढ़ाये, डाक्टर अमृतराय ने अन्दर प्रवेश किया।

रानी की दृष्टि उन के चेहरे की ओर उठी, फिर झुक गयी, उस के शरीर में सनसनी सी दौड़ गयी। उसे कुछ सर्दी सी लगी और उस ने चादर को कुछ और खींच लिया।

वाटर-प्रूफ़ कोट को उतार कर अलग रखते हुए, हैट को दीवार पर टाँगकर डाक्टर अमृतराय रानी की चारपाई के समीप कुर्सी पर बैठ गये। उन्हों ने पूछा, "अब जी कैसा है?"

रानी को इन दो शब्दों में मिठास की एक नदी सी बहती प्रतीत हुई उसे जान पड़ा जैसे यह नदी कानों से गुज़रकर उसकी नस-नस में प्रवेश कर रही है। आँखें बन्द करके वह इस मिठास का आनन्द लेने लगी। कमरे में एक विचित्र शान्तिमय ठंढक छायी हुई थी। चारपाई के दायीं ओर, दीवार के साथ लोहे की श्वेत डोली पड़ी थी, जिस पर श्वेत वार्निश किया हुआ था, डोली में रानी के कपड़े आदि बन्द थे और उस के ऊपर दूध पीने का प्याला, श्वेत पट्टियाँ, शीशी और दूसरा सामान रखा था। फ़र्श बिलकुल साफ़ था, केवल खूँटी पर लटका हुआ वाटर

आँखों पर बिखर गयी थीं। उस के दिल में बीसियों आशंकाएँ अपना भयावह रूप धारण करके उठ बैठी थीं। उस की आँखें डाक्टर साहब की ओर लगी हुई थीं और पानी जैसे उन में से बरस ही पड़ना चाहता था। उस ने अत्यन्त ही करुण और विनीत स्वर में कहा, "डाक्टर साहब, मैं आप से प्रार्थना करती हूँ, बता दीजिए मेरी माँ कहाँ है ?"

"रानी देवी, साहस से काम लो; तुम्हारी माँ......" और वे फिर चुप हो गये, जैसे निश्चय कर रहे हों कि बतायँ या न बतायँ ?

रानी उद्विग्न हो उठी। उस ने कहा, "डाक्टर साहब आप सोचिए नहीं, भली बुरी जो भी ख़बर है, बता दीजिए।"

डाक्टर साहब ने खिड़की से दृष्टि हटा ली और संयत स्वर में बोले—

"भई मैंने आज तक तुम्हें नहीं बताया और न तुम्हें यह पूछने का अवसर ही दिया। पर तुम अनुरोध करती हो, बात यह है कि तुम्हारी माँ......

निमिष मात्र के लिए डाक्टर अमृतराय रुके, रानी चीख़ उठी—"कह दीजिए डाक्टर साहब, कह दीजिए—वह मर गयी, इकलौते जवान लड़के की ऐसी दयनीय दशा को देख न सकी, उसे इस तरह असहाय, लाचार, विवश देखकर जीवित न रह सकी—वह मर गयी है।"

और दिल में उठते हुए दुःख के समुद्र को रोकने में अशक्त होकर रानी हाथों में मुँह छिपाकर फूट-फूट कर रो उठी।

"नहीं वह मरी नहीं," डाक्टर साहब ने कहा।

रानी का रोना बन्द हो गया। उठकर वह खड़ी हो गयी, "तो कहिए मेरी माँ कहाँ है ? मेरी माँ कैसी है ?"

डाक्टर साहब ने खूँटी से वाटर प्रूफ का कोट उतारा और धैर्य से बोले, "घबराइए नहीं वह जीवित है।......"

रानी चुप, अपलक खड़ी रही।

डाक्टर साहब ने कोट के बटन लगाते हुए कहा, "बात यह है रानी

कि तुम्हारी माँ कुछ उद्भ्रांत सी हो गयी है, उसे कुछ अपना होश नहीं रहा।"

"होश नहीं रहा, वह पागल हो गयी है—रानी का पीला मुख हिम ऐसा सफ़ेद हो गया, वायु के झोंकों से उस के सिर का दुपट्टा खिसक गया और सूखे बाल बिखर गये।

डाक्टर साहब ने सान्त्वनापूर्ण स्वर में कहा, "हाँ वह पागल हो गयी है, किन्तु तुम पढ़ी-लिखी हो। तुम्हें साहस से काम लेना चाहिए, न जाने उसे कैसे मालूम हो गया। भागी-भागी अस्पताल में आयी और रोकर वंसीलाल को देखने के लिए शोर मचाने लगी। मैंने उसे ढाढ़स बँधाया और यह कहकर कि आराम हो रहा है, घर जाने को कहा लेकिन फिर न जाने कैसे वह वंसीलाल के कमरे में घुस आयी। मैंने चौकीदार से कह भी दिया था कि उसे अन्दर न आने देना! उस के ज़रा इधर-उधर होते ही वह घुस आयी और वंसीलाल को इस दशा में देखते ही उस ने चीख़कर ज़ोर से दीवार से टक्कर मारी और अचेत होकर गिर पड़ी। जब होश में आयी तो पागल थी।"

"पागल हो गयी, मेरी माँ पागल हो गयी!"—रानी ने वेबसी से हाथ मलते हुए उन्मादिनी की भाँति कहा। फिर वह संयत हो गयी और जैसे अपना सारा धैर्य्य इकट्ठा करके उस ने पूछा, "अब कहाँ है?"

"पागलखाने में।"

"पागलखाने में!—रानी के सन्तोष का बाँध टूट गया। उस ने चीख़कर कहा—"माँ पागलखाने में!"

और अचेत होकर फ़र्श पर गिर पड़ी।

डाक्टर हैट सिर पर रखने लगे थे। उन्हों ने उसे फेंककर रानी को सम्हाला। उसके सिर से खून निकल रहा था और उस के घाव भी हरे हो गये थे। चीखकर उन्हों ने आवाज़ दी—

"मिस बैटी! मिस बैटी!!"

१६

कोमल वर्ग से सम्बन्धित और जीवन को किसी-न-किसी हद तक प्रभावित करने वाली सब घटनाएँ डाक्टर अमृतराय की कल्पना के सम्मुख घूम गयीं।

शाम का वक्त था। अस्पताल से आकर डाक्टर साहब नीचे ड्राइंगरूम में ही बैठ गये थे और वहाँ बैठे-बैठे उस लोक में खो गये थे, जिसे कल्पना सृजित करती है और जो मनुष्य को कुछ क्षण के लिए इस दुनिया से बहुत दूर ले जाता है।

बचपन के वे दिन याद आ गये, जब वे अपने गाँव से बाहर नदी के किनारे खेला करते थे। गयी रात तक छटकी हुई चाँदनी में गाते फिरा करते थे। जीवन एक स्वप्न था और इस स्वप्न की सुन्दर प्रतिमा थी गिरिजा—डाक्टर साहब के पड़ोसी की सुन्दर लड़की। यद्यपि बचपन से डाक्टर साहब उस के साथ खेले थे, किन्तु जब यौवन के देवता ने उन दोनों के कानों में अपना नवीन संदेश दिया तो दोनों की निगाहों में संकोच आ गया, पर हृदय शायद एक दूसरे के और भी समीप हो गये। इस के बाद डाक्टर साहब मेडिकल कालेज में दाखिल होने के लिए लाहौर आ गये थे। वहाँ भी यद्यपि गिरिजा की याद उन्हें सताया करती थी, पर परिस्थिति की यथार्थता ने उन्हें बता दिया था कि वे चाहें तो देवी की भाँति अपने हृदय के मन्दिर में बैठाकर गिरिजा को पूज सकते हैं, पर उसे पा सकेंगे, इस की आशा उन्हें नहीं करनी चाहिए। वह एक अमीर घराने के दीपक, गिरिजा एक निर्धन के घर की लड़की; वे जाति के क्षत्री, गिरिजा ब्राह्मण और फिर देहात के पुराने रीति-रिवाज की दीवारें! दोनों किसी तरह भी एक सूत्र में न पिरोये जा सकते थे। इसीलिए उन के लिए गिरिजा कभी गाँव जाने पर याद आ जाने की चीज ही रह गयी थी। धीरे-धीरे लाहौर के नये जीवन ने यह भी बता दिया कि गिरिजा सुन्दर चाहे कितनी भी क्यों न हो, पर वह

अशिक्षित है, अपढ़ और गँवार है और इसलिए एक भावी डाक्टर की सहचरी होने के कदापि योग्य नहीं। जब डाक्टर साहब दूसरे वर्ष में थे तभी गिरिजा का विवाह हो गया और उस की याद भी डाक्टर साहब के मस्तिष्क से लुप्त हो गयी। हाँ, जब कभी विमला का कटु व्यवहार उन्हें असह्य हो जाता तो अपने कमरे के एकान्त में बैठे-बैठे उन्हें गिरिजा की याद आ जाती, जिस से उन्होंने सदैव स्नेह पाया, प्यार पाया; नाज़, नख़रा, ग़ुस्सा, अनबन जहाँ उन्हें ढूँढ़ने से भी कभी न मिले।

विमला कालेज में उन्हीं के दर्जे में पढ़ने वाली एक लड़की थी। पहले-पहल जब डाक्टर साहब ने उसे देखा था तो गिरिजा के सामने वह सर्वथा तुच्छ और क्षुद्र दिखायी दी थी। उस वक्त वह नये-नये अपने गाँव से आये थे और गिरिजा उन के मस्तिष्क पर छायी हुई थी। उसका साँचे में ढला हुआ शरीर, सुडौल अंग, सुषमा से बना हुआ सुन्दर मुखड़ा उस में नगीनों-सी जड़ी हुई दो आँखें, विशाल मस्तक, सुनहरे बाल उन के हृदय पट पर अपना अधिकार जमाये हुए थे। विमला में वह बात कहाँ थी? उस में नज़ाकत थी, नफ़ासत थी, आकर्षण भी था। पर गिरिजा का-सा स्वास्थ्य, उस की-सी सुन्दरता, उस की सरलता उसमें न थी। लेकिन एक दिन आया कि सरल सुन्दरता के मुकाबले में डाक्टर साहब इस कृत्रिम नज़ाकत पर ही रीझ उठे। विमला को चाहने वाले वे अकेले ही तो थे नहीं, फिर वह क्यों न मानिनी होती। ज्यों-ज्यों वे उसकी ओर बढ़ते, वह खिचती जाती और ज्यों-ज्यों वह खिंचती जाती अमृतराय उतना ही उस की ओर बढ़ते जाते और गिरिजा की अपूर्णता उतनी ही उन्हें स्पष्ट होती जाती। हँसाने के साथ विमला रुलाती भी कम न थी, पर इतना होते हुए भी वे उसी पर मरते थे। जब उस का व्यवहार असह्य हो जाता तो अमृतराय को गिरिजा की याद आ जाती। किन्तु जब विमला फिर एक मदभरी मुस्कान से उन की ओर देखती, तो वे सब कुछ भूलकर उस की मूर्ति के उपासक बन जाते।

इसी तरह मेडीकल कालेज के पाँच साल बीत गये । विमला अन्त तक उन के लिए एक छलना, मृग-मरीचिका ही बनी रही और इसी बीच डाक्टर साहब एफ० आर० सी० एस० की डिग्री लेने इंगलैंड चले गये। वहाँ उन के जीवन में आयी एक तीसरी रमणी फ़्लोरा ! डाक्टर साहब ने अनुभव किया कि बहुत समय से जिस जीवन-संगिनी की खोज वे कर रहे थे, वह फ़्लोरा ही है। उस में गिरिजा की सुन्दरता थी और विमला की सुकुमारता, यही नहीं, बल्कि वे दोनों गुण उस में कहीं अधिक मात्रा में मौजूद थे। गिरिजा उसके सामने फीकी मालूम होती थी और विमला नौसिखिया।

फ़्लोरा से उनका मिलन 'हैमर स्मिथ पैले' लंदन में उस समय हुआ था जब कि उन के किसी मित्र ने उस से उन का परिचय करा दिया था। उस रात उन्हों ने अपने आप को धन्य समझा था। उन्हें सारी रात नींद न आयी थी। आकाश के रंग जैसी नीली गहरी उस की आँखें, तीखी चितवन, लम्बा-पतला शरीर, सुडौल अंग, ये सब के सब उन की आँखों में घूमते रहे थे और जब दूसरे दिन पैले में वे उस के नाच में गये, किसी निपुण कारीगर के हाथों साँचे में ढले हुए उस के अंगों को उन्हों ने देखा तो वे अपने आपे में न रहे थे और फिर उन्हों ने अपनी समस्त शक्तियाँ इस जादूगरनी को अपने वस में करने के लिए लगा दी थीं। कुछ देर के लिए उन्हें ऐसा महसूस भी हुआ था कि वे अपने उद्देश्य में सफल हो गये हैं। फ़्लोरा के साथ कई सुखद दिन और कई आनन्दमयी रातें भी उन्हों ने गुजारीं, इसी जीवन में स्वर्ग-सुख का अनुभव भी उन्हों ने किया। उन के डिग्री लेने के बाद फ़्लोरा पत्नी-रूप में उन के साथ भारत चलने को तैयार भी हो गयी, पर जब वह दिन आया तो उन्हों ने सुना कि फ़्लोरा ने किसी दूसरे युवक से शादी कर ली है जो उसी वर्ष आई० सी० एस० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है। तब उन्हों ने जाना कि सुन्दरता और सलीके के अतिरिक्त एक तीसरी वस्तु भी है जो नारी में होनी आवश्यक है और वह है वफ़ादारी—अपने प्रेमी अथवा

पति के प्रति प्रेम होने के साथ-साथ उन्नति तथा अवनति में उसी से ल
लगाये रखने की भावना।

अब अमृतराय सतर्क हो गये थे। सतर्क क्या, उदासीन हो गः थे। इस के बाद आँखों को कई तस्वीरें अच्छी लगीं, लेकिन फ़्लोरा कं याद ने मन को उन की ओर आकर्षित न होने दिया। प्रायः वे सोचा करते—क्या इस शिक्षा, संस्कृति तथा सुघड़ता से गिरिजा की सरलता-पूर्ण अशिक्षा ही अच्छी न थी? उस में चाहे वह सलीका न हो जो आधुनिक नारी की विशेषता है पर प्रेम और वफ़ादारी का वहाँ अभाव न था।—ऐसे अवसरों पर उन के हृदय से एक दीर्घ निश्वास बरबस निकल जाया करता था।

मन की ऐसी ही अवस्था में वे भारत आ गये थे और शीघ्र ही मेयो अस्पताल में नियुक्त हो गये थे। यहाँ उन्हों ने देखा लता को—जिस में सेवा का भाव शिक्षा के साथ कूट-कूटकर भरा हुआ था। कोई ग्रेजुएट लड़की भी इस लगन से, इस तन्मयता से किसी की सेवा कर सकती है, यह बात उन के लिए सर्वथा नयी थी। यदि लता के स्थान पर विमला होती, तो क्या वह अपने प्रेमी की इतनी सेवा कर सकती? डाक्टर साहब को इस में सन्देह था।

बंसीलाल से लता को प्रेम था या नहीं, इस बात को उन्हों ने कभी नहीं सोचा और न यही विचार किया कि लता के इस त्याग का कारण क्या है? उन्हों ने तो उसे सदैव सेवा-शुश्रूषा में व्यस्त पाया और उस लगन के साथ जिस से माँ अपने बच्चे की, बहन अपने भाई की और पत्नी अपने पति की सेवा भी नहीं कर सकती। तभी उन के हृदय में गिरिजा, विमला और फ़्लोरा के धुँधले चित्रों को मिटाकर लता की तस्वीर खिंच गयी थी।

किसी के पैरों की चाप सुनायी दी। डाक्टर साहब ने सिर उठाया। देखा—नौकर चाय की ट्रे लिये आ रहा है। वे कुछ चौंक कर, कुछ हड़बड़ाकर उठे। नौकर ने ट्रे मेज़ पर रख दी और चाय का प्याला

बनाकर डाक्टर साहब को दिया। एक दीर्घ निश्वास छोड़कर उन्होंने प्याले को मुँह से लगा लिया।

१७

लता ने कहा, "मैंने इस एक महीने में जीवन को जैसे देखा है वैसे पहले कभी न देखा था। ऐसा मालूम होता है जैसे मैं पहले से कुछ अधिक समझदार, कुछ अधिक बुद्धिमती हो गयी हूँ।"

उस के पिता कुर्सी पर बैठे सिर्फ़ सिगरेट पीते रहे। लता का ध्यान उन के श्वेत बालों की ओर चला गया, जो कनपटी से ऊपर शनैः शनैः कालिमा पर विजय प्राप्त करते चले जा रहे थे। फिर उस ने उन के चेहरे की झुर्रियाँ और चिपके हुए गालों को देखा—उस के पिता बूढ़े हो चले थे, लता ने आज तक उन्हें इस दृष्टि से न देखा था। जीवन उस के लिए एक उल्लास था। दुःख जो भी था, लता के भाग में न आया था और उस ने ऐसा समझा था कि उस के पिता भी इस दुःख से उसी की तरह अनभिज्ञ हैं और सच तो यह है कि उस ने कभी इस समस्या पर विचार ही न किया था। उस ने अपने पिता के दुःख को मापने का प्रयास ही न किया था। अपनी स्वर्गीय पत्नी की स्मृति में जवानी के मधुवन को मरुस्थल बनाने में, उस की नन्हीं निशानी को पाल-पोसकर परवान चढ़ाने में, उसे उत्तम शिक्षा देने में उन्हें कितनी परेशानी का सामना करना पड़ा, लता ने कभी इस का ख़याल भी न किया था। उस ने नहीं जाना था कि इन चन्द महीनों में अपनी प्राणों से भी प्रिय पुत्री की उद्दंडता से उन्हें कितना हार्दिक दुःख पहुँचा है, कितनी मर्मान्तिक वेदना हुई है, कितनी मानसिक और शारीरिक पीड़ा पहुँची है!

अपने हठ के आगे लता ने इन सब बातों पर ध्यान न दिया था। पर आज इस एकान्त में, इस बड़े कमरे में, इस बिजली के धीमे प्रकाश में, इस सौम्य, मौन और गम्भीर मूर्ति को देखकर उसे प्रतीत हुआ कि उस के पिता बूढ़े हो चले हैं और जो प्रफुल्लता उन के चेहरे पर सहज ही खेला करती थी, वह अब दिखायी नहीं देती।

कुछ क्षण बाद सिगरेट की राख को फर्श पर रखी हुई ऐश ट्रे में फेंकते हुए मलिक साहब ने जैसे अपने शब्दों को तोलते हुए गम्भीरता से कहा, "लता, तुम अब सयानी हो। बच्ची नहीं हो। मैंने तुम्हें आवश्यक शिक्षा दी, स्वतन्त्रता दी, इस स्वतन्त्रता के गुण और दोष भी तुम्हें बता दिये, इस आज़ादी का युवक और युवतियों पर क्या-क्या प्रभाव पड़ता है, समाज ने कौन से प्रतिबन्ध लगा रक्खे हैं, यह बात भी तुम्हें बता दी और फिर इस विस्तृत संसार में अपनी जगह बनाने के लिए छोड़ दिया। मैं चाहता था, तुम अपने हर काम के सम्बन्ध में पहले सोचो, उसके समस्त पहलुओं पर विचार करो, पर तुम ने ऐसा नहीं किया। तुम अपने आप को चतुर समझती हो, लेकिन यह ग़लत है। तुम भी भावुकता की लहर में बह गयी हो! मैं तुम्हें अब क्या कहूँ?"

लता चुप रही!

"मैं मानता हूँ", मलिक साहब बोले, "बंसीलाल के प्रेम की क़द्र तुम्हें करनी चाहिए, किन्तु अब जब वर्तमान परिस्थितियों में तुम उसे अधिक लाभ नहीं पहुँचा सकतीं, तुम्हें ऐसा प्रबन्ध कर देना चाहिए था, जिस से उस का शेष जीवन आराम से गुज़र जाय। इस मृत-प्राय व्यक्ति के लिए अपने कार्यक्रम, अपनी महत्वाकांक्षाओं, अपने जीवन और उस की आवश्यकताओं तक से बेपरवाह हो जाना, मेरे ख़याल में, कोई ठीक बात नहीं है।"

"महत्वाकांक्षाएँ, जीवन के कार्यक्रम, ये तो व्यर्थ की बातें हैं पिता जी!" लता ने विनम्रता, पर दृढ़ता से कहा, "मनुष्य की बिसात ही क्या है? उस की महत्वाकांक्षाओं और उस के कार्यक्रम में स्थिरता ही

कितनी है ? परिस्थितियों की झंझा क्षण भर में उन्हें छिन्न-भिन्न कर देती है। बंसीलाल ही को देखिए। आशाएँ उसकी कितनी ऊँची न होंगी ? उद्देश्य उसका कितना महान् न होगा ? उस का समय कितना बहुमूल्य न होगा ? किन्तु परिस्थितियों पर उस का क्या वश चला ? कहाँ गयीं उस की आशाएँ, वे कार्यक्रम, वे महत्वाकांक्षाएँ ? उस का सब कुछ तबाह हो गया ! वह स्वयं जीवन और मृत्यु की सीमा पर डोलने लगा !"

"इसी लिए कि वह भावुक था। जो लोग मस्तिष्क का आंचल छोड़कर भावुकता को अपना पथ-पदर्शक बनाते हैं, उन का यही अंजाम होता है। इसी लिए मैंने तुम से कहा है कि सब पहलुओं पर विचार करो और भावों की धारा में न बहो।"

"मैं सब कुछ सोच चुकी हूँ पिता जी, मैं जाना चाहती हूं" लता ने हठपूर्वक कहा।

"तो जाओ, मैं तुम्हें न रोकूँगा। लड़के अपने माता-पिता की आज्ञा की अवज्ञा नहीं करते क्या ? मैंने भी तुम्हें लड़कों की भाँति ही शिक्षा दी है और तुम्हें अपना पुत्र ही समझा है। अब तुम यदि ग़लती करो तो भी मैं कुछ न कहूँगा। यदि किसी बात में मेरी बदनामी हुई, तब भी मैं परवाह न करूँगा। मुझे शायद तुम ने पहचाना नहीं, तुम्हारा पिता दूसरों से सर्वथा भिन्न है, वह स्वतन्त्र विचार रखता है, वह सिद्धान्तों पर जान देता है, दुनिया की उसे परवाह नहीं।"

लता की आँखें सजल हो गयीं। उस के पिता उठ खड़े हुए। लता ने भर्रायी हुई आवाज़ से कहा, "लता मर जायगी पर आप की निन्दा न होने देगी।"

मलिक साहब फिर बैठ गये, उन्हों ने कहा, "भावुक लोगों की प्रतिज्ञाओं पर कैसे विश्वास किया जाय ? उन्हें अपने आप पर ही काबू नहीं होता।"

लता ने रुमाल से आँखें पोंछते हुए कहा, "आप को इस ओर से

शिकायत का मौका न मिलेगा। आप इसे चाहे मेरी मूर्खता कहें, पर यह अन्तिम बात है जो मैं इस सम्बन्ध में करना चाहती हूँ। जिस व्यक्ति ने मेरे कारण अपनी जान को संशय में डाल दिया, उस के लिए मैं यह अन्तिम यत्न अवश्य करूँगी, चाहे प्रकटतया वह एक अर्थहीन प्रयत्न से अधिक महत्व न रखता हो, पर इस के बाद मैं प्रण करती हूँ कि अपने आप को बिलकुल आप के हाथों में छोड़ दूँगी। जैसा आप कहेंगे, वैसा ही करूँगी।"

पिता चुप रहे।

लता ने अवरुद्ध कंठ से कहा, "आप ने मुझे माँ की तरह पाला है। मैं आप से इसी तरह हठ करती रही हूँ। मैंने आप को कष्ट भी बहुत दिया है और मैं जानती हूँ कि मेरे व्यवहार से आप को दुःख भी बहुत पहुँचा है, लेकिन मैं विवश हूँ। फिर भी आप को विश्वास दिलाती हूँ कि मैं मर जाऊँगी, इस से पहले कि आप पर कोई कलंक आय। आप ने मुझे जो स्वच्छन्दता दी है, उस का अनुचित लाभ न मैंने उठाया है, न उठाऊँगी। मैं कहती हूँ कि यदि मैं अपने इस यत्न में असफल रही, तो अपने आप को, अपने भविष्य को पूर्णतया आप के हाथों में छोड़ दूँगी। जैसा आप कहेंगे वैसा ही करूँगी।"

"तुम्हारी इच्छा!" उस के पिता ने एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ कर कहा। शायद उन का गला भर आया था। आँखें सजल हो उठी थीं। इतना कहकर वह तेज़ी से कमरे से निकल गये। लता फिर कौच पर बैठ गयी—उसके पिता उसे कितना प्यार करते थे, उस की जुदाई के ख़याल से वे कितने विह्वल हो जाते थे, उस की उद्दंडता और हठ ने उन्हें कितना दुःख पहुँचाया था, किन्तु इस पर भी उन्हों ने किस तरह उसे क्षमा कर दिया था और बंसीलाल को अस्पताल से लाकर घर रखने की आज्ञा दे दी थी? पर अब तो उनकी आँखों से दूर जाने का प्रश्न था और लता को उन्हों ने कभी आँख की ओट भी न होने दिया था। लता की आँखों में आँसू भर आये और वह रुमाल में मुँह

छिपाकर रोने लगी। क्या उस की माँ उस से इतना प्यार कर सकती थी? क्या वह उसे इतनी शिक्षा, इतनी स्वच्छन्दता दे सकती थी? क्या वह इस तरह क्षमा कर सकती थी? कभी नहीं। उस के पिता उस के पिता ही न थे, उस की माँ भी थे। लता स्वयं उन्हें कितना चाहती थी? पर यह विवशता! उस की आँखें नहीं, हृदय रो रहा था।

और दूसरे कमरे में वृद्ध मलिक साहब मेज पर कुहनियाँ टेककर हाथों में सिर रक्खे बैठे थे और उन की आँखों में उमड़े हुए आँसू मेज़ के कपड़े में समा रहे थे। उन्हें अपनी लड़की से कितनी मुहब्बत थी! वे नहीं चाहते थे कि वह इस तरह जगह-जगह भटकती फिरे। उन्हें डर था, वह अस्वस्थ हो जायगी। बंसीलाल की तीमारदारी ने उसे अधमरी कर दिया था। दो बार तो उस ने अपना रक्त दिया, यदि इस निरन्तर परेशानी से वह बीमार हो गयी। यदि कहीं वह......इस के आगे सोच ही न सकते थे। उन्हें रुलाई आ जाती। इस उद्दंड चंचल लड़की से उन्हें कितनी मुहब्बत थी, वह उन की आज्ञा की अवहेलना कर देती, तब भी वह क्रोध न करते, शायद उस की यह उद्दंडता, उस का यह हठ ही उन्हें प्रिय था। उस की अनुपस्थिति में उन का जीवन कितना शुष्क, कितना नीरस, कितना उदास हो जायगा, इस की कल्पना ही से वे घबरा उठते थे।

बंसीलाल को लता घर ले आयी थी। अस्पताल में जो कुछ हो सकता था, हो चुका था। अमृतराय एक-दो बार यहाँ भी देख गये थे और उन्हों ने वादा किया था कि वे सैर के समय स्वयं ही इधर चक्कर लगा जाया करेंगे। लता उन के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ थी। घर आने पर उस ने उन्हें फ़ीस देनी चाही थी, पर उन्हों ने इनकार कर दिया था। उस के अनुरोध पर उन्हों ने कहा था, "आप मुझे बुलायेंगी तो फ़ीस ले लूँगा, किन्तु आया तो मैं अपने ही आप हूँ। फिर फ़ीस कैसी?" यह कहते हुए मुस्कराकर और फिर एक लम्बी साँस छोड़कर वे चले गये थे।

इतने दिनों में वह बंसीलाल के सम्बन्ध में कोई निर्णय न कर सकी थी, केवल अस्पताल से उसे घर लाकर रख लिया था। पर शाम को उस ने अचानक फैसला कर लिया था और रात को जब उस के पिता आये थे, उसने उन्हें बताया कि वह बंसीलाल को लेकर तीर्थयात्रा करेगी।

अनारकली में उसे सुषमा मिल गयी थी। दोनों आठवीं श्रेणी तक साथ पढ़ी थीं। बाद में सुषमा की शादी हो गयी थी और लता जैसे शिक्षा की न समाप्त होने वाली मंज़िल की ओर बढ़ गयी थी, किन्तु दोनों में कोई भी एक दूसरे को भूली न थी। दोनों जब भी मिलती थीं, भूले-बिसरे दिन याद हो आते थे। गयी-बीती घड़ियाँ आँखों के सामने घूम जाती थीं। सुषमा लता के भावी पति के सम्बन्ध में तरह-तरह के मज़ाक किया करती थी और लता सुषमा के पति के सम्बन्ध में दो-एक बातें कहकर हँस लेती थी। फिर दोनों अपने सुख-दुःख की बातें एक दूसरे से करती थीं। आज भी ऐसा ही हुआ, अनारकली में दोनों की भेंट हो गयी। लता तो चाहती थी कि सुषमा घर चले, पर समय न था। वह तीर्थयात्रा के लिए जा रही थी, कुछ आवश्यक चीज़ें खरीदने आयी थी। दोनों एक तरफ़ होकर बातें करने लगी थीं और तब तक करती रही थीं जब तक तनिक परे अकेले खड़े हुए सुषमा के पति ने उकता कर यह न कहा था कि देर हो रही है, अब चलो, अभी कितना ही सामान ख़रीदना है।

सुषमा का विवाह हुए छः-सात वर्ष बीत गये थे, किन्तु सन्तान से उस की गोद खाली ही रही थी। सास-ससुर और स्वयं उस का पति बच्चे के लिए बहुत लालायित थे, चाहते थे कि एक नन्हें से खिलौने की किलकारियों से उन के घर का सूना आँगन मुखरित हो जाय। इतनी धन-राशि, इतना अतुल वैभव ! कौन इस का उपभोग करेगा ? कौन वंश का नाम चलायेगा ! सुषमा डरती थी, यदि और एक-दो साल तक उस की कोख खाली रही तो सौत उस के सीने पर आ बैठेगी। जिस सुषमा को पहली नज़र में लता ने अपने से भाग्यवती समझा था, जिस के मुसकराते

चेहरे को देखकर वह दिल-ही-दिल में अपनी उदासी पर रो उठी थी, वही सुषमा स्वयं कितनी दुखी है, इस बात को जानकर उस का कंठ भर आया था। इसीलिए सुषमा तीर्थयात्रा करने का विचार रखती थी। उसे विश्वास था, तीर्थों का भ्रमण करते-करते उसे कोई-न-कोई ऐसा योगी अथवा संन्यासी अवश्य मिल जायगा, जिस के वरदान से उस की मनोभिलाषा पूरी हो जायगी; जिसकी एक चुटकी राख उस के आँचल को पुत्र-रत्न से भर देगी। फिर यदि वह अपने उद्देश्य में असफल भी रही, तो इस बहाने तीर्थयात्रा ही सही, न जाने बाद को कितने दुःख उठाने पड़ें!

जब दोनों सहेलियाँ अलग हुईं तो लता ने बंसीलाल के सम्बन्ध में भी निर्णय कर लिया था। वह भी बंसीलाल को लेकर तीर्थयात्रा करेगी, कौन जाने ईश्वर को क्या मंज़ूर है, शायद कोई ऐसा योगी मिल जाय जो बंसीलाल को नीरोग कर दे, उसे चलने-फिरने और बोलने के योग्य बना दे।

भाग्य को वह न मानती थी, हाँ परिस्थितियों पर उस का विश्वास था, पर परिस्थितियाँ भी तो भाग्य ही से बनती हैं। यदि वह तीर्थ-यात्रा ही न करेगी तो उसे कोई योगी मिलेगा ही कैसे? वरदान के लिए तो तपस्या करनी ही पड़ती है। इस इच्छा की पूर्ति के लिए तो तीर्थों को जाना ही पड़ेगा! फिर यदि सौभाग्य-वश कोई योगी मिल गया तो उस के दिल की कामना पूरी हो जायगी—सुषमा अंध-श्रद्धा से जो कुछ करना चाहती थी, लता सोच-विचार के बाद भी वही कुछ करने को तैयार थी। जीवन में ऐसे भी क्षण आ जाते हैं, जब समझ और सोच की शक्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं, जब मन के आगे मस्तिष्क का कोई वश नहीं चलता और मनुष्य सब कुछ सोचने पर भी वही करता है, जिसे मानने को साधारणतया बुद्धि तैयार नहीं होती।

पिता के चले जाने के बाद जब तबीयत सम्हली तो लता सब घटनाओं पर धीरे-धीरे विचार करने लगी। उस के पिता ने कहा था कि वैसे लता चाहे भारतवर्ष का भ्रमण कर ले, पर यह विचार कि कोई

ऐसा योगी मिल जायगा जो बंसीलाल को स्वास्थ्य प्रदान कर दे, सर्वथा असम्भव है। लता समझती थी कि उस के पिता ठीक कहते हैं, बंसीलाल को कोई बीमारी होती तो उस की औषधि मिल जाती, पर यहाँ तो उस का शरीर ही पिस सा गया था। अब तो कोई दैवी शक्ति ही उसे उस का पुराना रूप-रंग दे सकती है। प्रकट लता को सफलता की कोई आशा न थी, किन्तु फिर भी उस के दिल में कोई था जो कह रहा था कि आख़िर एक बार कर देखने में क्या बुराई है। न सही सैर ही हो जायगी, न सही अनुभव ही हो जायगा, न सही तबीयत ही बदल जायगी !

उस वक्त घंटी बजी और नौकर ने आकर कहा, "डाक्टर साहब आये हैं।" लता वहाँ से उठकर ऊपर के कमरे में चली गयी। उस के पीछे-पीछे डाक्टर अमृतराय आये।

"कैसी तबीयत है," डाक्टर साहब ने कौच पर बैठते हुए कहा।

"अच्छी हूँ।"

"बंसीलाल ?"

"वैसा ही है।"

डाक्टर साहब केवल 'हूँ' कहकर रह गये।

लता ने पूछा, "कहिए, क्या पीजिएगा, चाय अथवा लैमनेड ?"

"नहीं, कुछ नहीं, धन्यवाद !" कहते हुए डाक्टर साहब उठे।

लता ने उन के मुख की ओर देखा। आँखें फ़र्श पर लगी हुई हैं और चेहरा कुछ सुर्ख़ हो गया है। उस ने कहा, "कुछ काम न हो तो ज़रा बैठिए, आप से एक परामर्श करना है।

डाक्टर साहब बैठ गये। उन का हृदय तनिक ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा।

"फ़रमाइए ?"

"मैं बंसीलाल को लेकर तीर्थों की सैर करना चाहती हूँ ?"

"किस लिए ?"

"यों ही, कुछ तबीयत बहल जायगी और सम्भव है कि कोई ऐसा योगी मिल जाय जो बंसीलाल को स्वास्थ्य प्रदान कर दे।"

डाक्टर साहब को साधु-महात्माओं पर विश्वास न था, लेकिन लता की बात को वे काटना न चाहते थे। बोले, "अच्छी बात है। आप का स्वास्थ्य भी कुछ गिर गया है, कुछ विनोद हो जायगा, स्वास्थ्य भी बन जायगा, पर आप के साथ एक बीमार है!"

"हाँ, यही मैं सोचती हूँ!"

"मेरा विचार है आप के साथ कोई नर्स इत्यादि—मेरा मतलब है कोई मेडिकल आदमी होता तो अच्छा था।"

लता चुप सोचती रही।

"आप जानती हैं, बंसीलाल स्वयं तो हाथ भी नहीं हिला सकता, अपनी इच्छा प्रकट नहीं कर सकता और फिर कौन जाने कब उस की हालत कैसी हो जाय! इस सूरत में आप को कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।"

लता फिर भी चुप रही। इस सम्बन्ध में उस ने अभी कुछ न सोचा था।

कुछ क्षण बाद डाक्टर अमृतराय ने पूछा, "भला आप कब तक जाना चाहती हैं?"

"अभी तक कोई फ़ैसला नहीं किया!"

"मेरा मतलब है," डाक्टर साहब ने सकुचाते हुए कहा, "यदि आप कुछ देर ठहरकर जाना चाहें तो शायद मैं ही आप के साथ हो सकूँ। मेरा अपना इरादा भी हिन्दुस्तान के तीर्थों की सैर करने का है, लेकिन जब से आया हूँ, अस्पताल में इतना निमग्न रहा हूँ कि समय ही नहीं मिला।"

लता का चेहरा खिल उठा, उस ने पूछा, "आप कब तक जाने का विचार रखते हैं?"

"जब भी छुट्टी मिल जाय। मेरी छुट्टी बाकी भी है, मैं कल ही

दरख़्वास्त से दूँगा।"

"तब तो बहुत ही अच्छा होगा!" लता ने प्रसन्नता से कहा, "आपने मुझ पर इतनी कृपा की है, मैं कैसे इस सब के लिए कृतज्ञता प्रकट करूँ?"

"इस की कोई ज़रूरत नहीं, मैं तो स्वयं इस केस में दिलचस्पी रखता हूँ।" डाक्टर साहब मुसकराये और उठ खड़े हुए।

लता उन्हें दरवाज़े तक छोड़ने गयी।

डाक्टर साहब चले तो एक विचित्र प्रकार का नशा उन्हों ने अपनी नस-नस में महसूस किया। ऐसे शराबी भी होते हैं, जो बोतलें चढ़ा लेते हैं, लेकिन बक नहीं पड़ते; नशे में होते हैं, समस्त शरीर में एक सरूर अनुभव करते हैं, लेकिन लड़खड़ा नहीं जाते, डाक्टर साहब भी ऐसे ही शराबी की तरह चलते हुए घर पहुँचे।

—०—

१८

महिला महाविद्यालय के छात्रावास में, बरामदे के सामने घास पर राजरानी बैठी थी। धूप ढल चुकी थी और सन्ध्या धीरे-धीरे दिन के साम्राज्य पर अपना अधिकार जमाती जा रही थी।

रानी बैठी थी—दूर किसी कमरे से गाने की हल्की सी आवाज़ आ रही थी। कोई लड़की काम करते-करते शायद गुनगुना रही थी—कोई करुण गीत, जिस से उस के दिल को कुछ हुआ सा जा रहा था।

दूर खेल के मैदान में लड़कियाँ तरह-तरह के खेल खेल रही थीं। कुछ दौड़ लगा रही थीं, कुछ आँख-मिचौनी खेलती थीं और कुछ यों ही खड़ी थीं, वातावरण उन के कहकहों से गूँज रहा था।

मैदान के अन्तिम सिरे पर बैडमिंटन के जाल लगाये जा रहे थे और

एक दो हँसमुख लड़कियाँ हाथों में रैकेट लिये, दुपट्टे कमर में कसे आ पहुँची थीं। टैनिस-लॉन में खेल आरम्भ हो चुका था और गेंद कभी जाल के इस पार और कभी उस पार लुढ़क रही थी।

रानी बैठी थी—मूक और स्तब्ध ! गेंद के साथ उस की दृष्टि भी इधर से उधर और उधर से इधर चली आती थी। सोचती थी जीवन भी गेंद की भाँति ही है। भाग्य का रैकेट उसे जिधर चाहता है, उठा फेंकता है। भाग्य ही तो था जिस ने उसे असहाय, अनाथ बनाकर छोड़ दिया, परिस्थितियाँ ही तो थीं जिन्हों ने अमृतराय और लता को उस के जीवन-मार्ग में ला फेंका और संयोग ही तो था जिस ने उसे यहाँ होस्टल में ला पटका—भाग्य, संयोग और परिस्थितियाँ—तीनों एक ही चीज़ के पृथक्-पृथक् नाम हैं—बाप मर गया, माँ मर गयी और भाई मुर्दों से बुरी दशा को पहुँच गया। इस पर ही बस हो जाती तो खैर पर दिल को यह बेचैनी का रोग लग गया। इस रोग का इलाज किस हकीम के पास है, इस बीमारी की औषधि किस वैद्य के पास है ?

यह बीमारी ही तो है कि अस्पताल से आने के बाद रात की नींद और दिन का चैन हराम हो गया। अस्पताल में तो ऐसा न था। आपरेशन के बावजूद, दुर्बलता के बावजूद, उसे नींद आ जाती थी, किन्तु अब जब कि वह दुर्बल नहीं है, उसे नींद क्यों नहीं आती ? भूख क्यों नहीं लगती ? खोयी-खोयी सी वह क्यों रहती है ? उदास-उदास-सी क्यों रहती है ?

डाक्टर अमृतराय—उन के लिए उस के दिल में इतनी मुहब्बत क्यों है ? माना उन्हों ने उस पर अहसान किये; माना बंसीलाल की जान उन्हों ने बचा ली, माना वे उस से अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते रहे, माना कि जब लता ने चलते समय रानी के भविष्य का प्रबन्ध करने के लिए उसे विद्यालय में दाखिल करने के सम्बन्ध में विचार प्रकट किया तो डाक्टर अमृतराय ने उस का समर्थन किया और उस की शिक्षा का ठीक प्रबन्ध करने में उन्हों ने काफ़ी सहायता की पर

इन सब बातों का यह तो मतलब नहीं कि सोते-जागते डाक्टर अमृतराय ही का ध्यान रहे, कल्पना की आँखें उन्हीं का चित्र देखती रहें, कान उन्हीं की बातें सुनते रहें।

लता बंसीलाल को लेकर तीर्थयात्रा को चली गयी, अमृतराय भी छुट्टी लेकर उस के साथ हो लिये, यह रानी को क्यों अच्छा नहीं लगा? इस में उस के भाई का ही लाभ था, उसी भाई का जिस के लिए वह अपनी जान तक देने को तैयार थी। अगर डाक्टर साहब साथ होंगे तो बंसीलाल को समय-कुसमय डाक्टरी सहायता पहुँच सकेगी, उस की देख-भाल ठीक तरह हो सकेगी। उस के स्वास्थ्य का क्या ठिकाना? घाव मिल गये तो क्या हुआ? दुर्बल व्यक्ति को हज़ार रोग रहते हैं, और बंसीलाल तो दुर्बल ही नहीं, अपाहिज और असहाय भी है, फिर उसे आराम पहुँचाने के ख़याल से यदि डाक्टर साहब लता के साथ चले गये, तो रानी को क्यों बुरा लगा? क्यों उस के दिल में शिक्षा प्राप्त करने के बदले साथ जाने की इच्छा हुई?

तीर्थयात्रा के लिए जाते समय लता को रानी का ख़याल आया था। माँ के पागल होने और पागलख़ाने में मर जाने के बाद रानी अब सर्वथा अनाथ और असहाय थी। उस के बलिदान ही से वास्तव में बंसीलाल की जान बची थी और इसे लता अपने पर अहसान समझती भी थी। रानी के भविष्य का कुछ प्रबन्ध किये बिना वह जाना न चाहती थी। इसलिए जाने से कुछ दिन पहले उस ने डाक्टर साहब द्वारा उस से पुछवाया था। रानी ने भी साथ जाने की इच्छा प्रकट की थी। तब लता ने स्वयं अस्पताल जाकर उसे समझाया था और कहा था कि बंसीलाल को तुम मुझ पर छोड़ो, उस की ज़रा भी चिन्ता तुम न करो और अपने भविष्य को बनाने का प्रयास करो। और चाहे अनिच्छा पूर्वक ही क्यों न सही, रानी ने कालेज में दाख़िल होना स्वीकार कर लिया था। उस की शिक्षा का ख़र्च लता ने अपने सिर पर ले लिया था। प्रवेश-शुल्क दे दिया गया, फ़ीस भी दे दी गयी और

रानी छात्रावास में दाख़िल कर दी गयी। आख़िरी दिन उसे पता लगा, अमृतराय भी साथ जा रहे हैं, तब उसे लता पर असीम क्रोध हो आया, उस का दिल भी साथ जाने के लिए मचल उठा, लेकिन अब तो वह विद्यालय में दाख़िल हो चुकी थी, मन मारकर रह गयी। जाने क्यों लता और अमृतराय के सामने उस की ज़बान पर ताला लग जाता था। वह रानी जो अस्पताल में निधड़क डाक्टरों के सामने चली गयी थी, जिस ने बिना किसी लज्जा-शर्म के गोश्त के टुकड़ों के लिए अपनी जंघाओं को पेश कर दिया था, क्यों इतनी ख़ामोश हो गयी, कहाँ से उस में इतनी झिझक आ गयी, क्यों वह जोर देकर न कह सकी—मैं भी साथ जाऊँगी, क्यों न वह कोई बहाना बना सकी, क्यों उसे कोई बहाना न सूझा?

भाग्य! कौन जाने भाग्य का रेकेट उसे कहाँ से कहाँ फेंक दे? अगर उस के वश की बात होती तो वह लता के साथ जाती। वह स्वतन्त्र होती, उस के पास काफ़ी रुपया होता तो वह कभी भी अकेली लाहौर न रहती। बहाना—फिर बहानों की क्या कमी होती? क्या बंसीलाल उसे प्रिय न था, क्या वह उस का भाई न था, क्या उस ने उस के लिए लता से कम त्याग किया था, क्या अब बंसीलाल को उस की आवश्यकता न थी? सब कुछ था, बहाने भी थे, युक्तियाँ भी थीं। केवल परिस्थितियाँ उस के पक्ष में न थीं, उस के नक्षत्र उस के पक्ष में न थे। भाई को वह भाई न कह सकती थी, उस के सम्बन्ध में सोच न सकती थी?

उसे भविष्य में अन्धकार के सिवा कुछ दिखायी न देता था। फिर यदि लता ने उस के भविष्य के बारे में सोचा कि रानी दो वर्ष और शिक्षा प्राप्त करने के बाद ट्रेनिंग कालेज में दाख़िल हो जाय ताकि भविष्य के लिए आर्थिक चिन्ताओं से वह मुक्त हो जाय तो क्या बुरा किया? रानी को यह क्यों अच्छा न लगा? यह तो उस पर अहसान था। रानी ने भी, जब वह अस्पताल में अपने घावों के खल जाने औ

माँ के पागलपन का समाचार सुनने के बाद भविष्य की चिन्ताओं के कारण बेचैन थी, लता का यह फ़ैसला सुना था तो यही समझा था और फिर स्वाभिमान के कारण अस्वीकार करने पर जब लता ने आकर उसे स्वयं समझाया था तो वह लता की उदारता से मुग्ध हो गयी थी, किन्तु यह सुन कर कि अमृतराय भी लता के साथ जायँगे, रानी के दिल से वह सब श्रद्धा विलुप्त हो गयी, न जाने क्यों अहसान के पर्दे में उसे छल नज़र आया!

रानी सोचती थी यह अहसान कहाँ! यह तो अहसान के पर्दे में अपना स्वार्थ सिद्ध करना है, उसे अपने मार्ग से हटाया गया है और जितना अधिक वह इस बात को सोचती उतना ही अधिक उस का हृदय जलता था। लता अमृतराय को चाहती है और अमृतराय लता को, बस दोनों इकट्ठे घूमने चले गये हैं, बंसीलाल की बीमारी तो बहाना है। किन्तु दूसरे क्षण उसे ख़्याल आया कि लता अमृतराय को नहीं चाहती। उसे वास्तव में बंसीलाल से प्रेम है, नहीं तो उसे क्या ज़रूरत थी कि दो बार अपने शरीर का रक्त बंसीलाल के लिए देती। यह अमृतराय हैं जो उसे चाहते हैं, तब बरबस एक दीर्घ निश्वास उस के ओठों से निकल जाता।

रानी बैठी थी—उन खेलों, उन कहकहों से कहीं दूर, कल्पना के अपने ही संसार में। बीते दिन एक-एक करके उस के सामने आये। उन दिनों ने उस से जो कुछ छीन लिया था और उसके बदले में दुख, विषाद और व्यथा की सूरत में उसे जो कुछ दे दिया था, उस पर भी उस ने विचार किया। वह उद्विग्न हो उठी। लम्बी साँस लेकर, कुर्सी छोड़ वह बरामदे में घूमने लगी। सहसा किसी ने पीछे से उस की आँखें बन्द कर दीं।

लीला हँसमुख लड़की थी। बचपन से रानी के साथ पढ़ती आयी थी। दोनों पाठशाला में हँसोड़ प्रसिद्ध थीं। दोनों के क़हक़हे प्रायः क्लास में गूँजा करते थे, अध्यापिकाएँ उन से परेशान रहा करती थीं।

लीला ने जब सुना कि रानी होस्टल में आ गयी तो भागी-भागी उस से मिलने आयी। देखा रानी सिर नीचा किये बरामदे में घूम रही है। उस ने झट पीछे से जाकर आँखें बन्द कर लीं।

जब रानी ने लीला का हाथ बरबस हटाया तो दोनों की आँखें चार हुईं। लीला के दिल को धक्का लगा। उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे उस ने रानी के भ्रम में किसी और लड़की की आँखें बन्द कर ली हों। लेकिन नहीं, यह तो रानी ही थी, उस की जानी-पहचानी रानी से कितनी भिन्न ? उस की परिचित रानी तो उल्लास की मूर्ति थी, चंचल और शोख ! उस के गालों में गुलाब हँसा करते थे, ओठों में स्वच्छ पत्तियों की मुस्कान रहती थी और आँखों में अदम्य उत्साह होता था ! और यह दुखी रानी—वेदना जैसे इस के रोम-रोम से टपकी पड़ती थी। गाल पतझड़ के मुरझाये फूल से, ओठ सूखी पत्तियों ऐसे और आँखें जैसे थकी-थकी शून्य, घुले हुए बादलों सी गम्भीर ! क्या यह उस की वही सहेली थी ? क्या यह वही रानी थी ?

रानी ने भी महसूस किया कि उस के व्यवहार में असभ्यता सी आ गयी है। बरबस ओठों पर मुस्कराहट लाते हुए उस ने लीला का हाथ थाम लिया और फिर दोनों चुपचाप खेल के मैदान की ओर चल दीं। दोनों में कोई बात न हुई ! बात किस तरह शुरू की जाय, दोनों में से कोई न सोच सकी। लीला जिस रानी से बातें करने आयी थी, वह यह रानी न थी। अब किसी दूसरी तरह बात शुरू करनी पड़ेगी और वह किस तरह की बात शुरू करे, यह उसे अभी तक न सूझा था। और रानी—वह इस मुलाकात के लिए तैयार न थी। उस ने कुछ सोचा ही न था और न वह इस मानसिक स्थिति में ही थी कि कुछ सोच सके।

दोनों चुपचाप एक किनारे जाकर खड़ी हो गयीं। पहले दिन होते तो रानी सबसे पहले खेल के मैदान में कूद पड़ती। किन्तु अब उन सब खेलों पर, उन खेलने वाली लड़कियों पर, एक उदासीन सी दृष्टि डालती हुई वह चुपचाप खड़ी रही।

लीला शुरू से ही होस्टल में रहती थी, रानी केवल उस की मित्रता के कारण कभी-कभी छात्रालय में आ जाया करती थी। इस बार जब वह स्वयं भी वहीं आ गयी तब भी लीला से क्यों नहीं मिली ? इस बार वह इतने दिन क्यों ग़ैर-हाज़िर रही ? क्यों परीक्षा के बाद अगली श्रेणी में दाख़िल न हुई ? लीला तो समझ बैठी थी, अब रानी आगे न पढ़ेगी, अब रानी का कहीं विवाह हो जायगा, लेकिन रानी तो उसी विद्यालय में आ गयी थी, फिर वह इतनी उदास क्यों है ? उस की हँसी को क्या हुआ ? वह बीमार-सी क्यों हो गयी ? ये प्रश्न थे जो लीला रानी से पूछना चाहती थी, लेकिन वह शुरू कैसे करे, यही उसे न सूझता था, और इस समय मुखर लीला मूक और गूँगी बन गयी थी।

दोनों चुपचाप खेल के मैदान से बैडमिंटन लॉन में और वहाँ से टैनिस कोर्ट की तरफ़ चली गयीं, निष्प्राण पुतलियों की भाँति। वहाँ कुछ देर खड़े रहकर और टैनिस के खेल पर नज़र डालकर दोनों होस्टल की तरफ़ लौट पड़ीं, उसी तरह मौन, जैसे वे एक दूसरे से रूठी हुई हों।

कमरे में पहुँचकर रानी चुपचाप बिस्तर पर पड़ गयी और उस के हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकल गया। इस पर जैसे लीला को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो आया। वह उस के साथ बिस्तरे पर जा बैठी और कोशिश करके उस ने पुकारा—'रानी !' लेकिन आवाज़ जैसे उस के कण्ठ में ही रह गयी। रानी क्या सुनती, स्वयं उसे ही जब सुनायी न दी। दूसरी बार अपना सब साहस बटोरकर लीला ने उसे दोनों कन्धों से पकड़ लिया और कहा—"रानी !"

रानी ने केवल अपनी आँखें ऊपर उठा दीं।

लीला ने देखा, रानी की आँखों में आँसू छलछला आये हैं। इन भरी हुई आँखों ने मानो लीला को जिह्वा दे दी। उस ने कहा, "रानी, मेरी बहन, अपनी लीला को भी न बताओगी। मैं तो पूछने वाली ही थी कि तुम इतने दिनों कहाँ रहीं, मिली क्यों नहीं, नतीजा सुनने के

बाद शीघ्र ही दाखिल क्यों न हो गयी ? मैं पूछना चाहती हूँ रानी, यह तुम ने सूरत कैसी बना ली है, तुम्हारी आकृति को, तुम्हारी हँसी को, तुम्हारे कुन्दन की तरह दमकते रंग को क्या हुआ ?"

रानी ने कुछ उत्तर न दिया, केवल उस ने ऊपर निगाहें उठायीं और आवेश वश लीला को भुजाओं में कस कर अपना मुँह उस की गोद में छिपा लिया।

लीला को जान पड़ा कि वह सिसक-सिसक कर रो रही है।

—o—

१६

सराय देवराज के बरामदे में बेचैनी से घूमते हुए लता ने कहा, "यहाँ भी काफ़ी गर्मी है !"

अमृतराय एक बिस्तर पर बैठे दीवार से पीठ लगाकर सुस्ता रहे थे। दाहिनी तरफ़ चारपाई पर बंसीलाल पड़ा था। लता की बात का उन्हों ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल बंसीलाल पर एक तीव्र दृष्टि डालकर ख़ामोश हो रहे।

सराय के आँगन में बने हुए चबूतरे पर कुहनी टेक कर लता खड़ी हो गयी। पिछले कुछ महीनों की घटनाएँ तस्वीरों की भाँति उस के सामने खिंच गयीं। इस यात्रा से बंसीलाल को कुछ लाभ न हुआ था, बल्कि समस्त सावधानी के बावजूद उस का स्वास्थ्य कुछ गिरा ही था। लता की तीर्थयात्रा, मन्दिरों की परिक्रमा, मठों का दर्शन, साधुओं और सन्तों की जड़ी-बूटियाँ—सब निरर्थक सिद्ध हुई थीं। हृषीकेश के आगे वनों में वह गयी, मथुरा, प्रयाग, काशी वह गयी, अच्छे प्रसिद्ध योगियों की सेवा में वह उपस्थित हुई, किन्तु इस तपस्या का परिणाम कुछ न निकला और आज सब ओर से निराश होकर वह एकान्त की

लीला शुरू से ही होस्टल में रहती थी, रानी केवल उस की मित्रता के कारण कभी-कभी छात्रालय में आ जाया करती थी। इस बार जब वह स्वयं भी वहीं आ गयी तब भी लीला से क्यों नहीं मिली? इस बार वह इतने दिन क्यों ग़ैर-हाज़िर रही? क्यों परीक्षा के बाद अगली श्रेणी में दाख़िल न हुई? लीला तो समझ बैठी थी, अब रानी आगे न पढ़ेगी, अब रानी का कहीं विवाह हो जायगा, लेकिन रानी तो उसी विद्यालय में आ गयी थी, फिर वह इतनी उदास क्यों है? उस की हँसी को क्या हुआ? वह बीमार-सी क्यों हो गयी? ये प्रश्न थे जो लीला रानी से पूछना चाहती थी, लेकिन वह शुरू कैसे करे, यही उसे न सूझता था, और इस समय मुखर लीला मूक और गूँगी बन गयी थी।

दोनों चुपचाप खेल के मैदान से बैडमिंटन लॉन में और वहाँ से टैनिस कोर्ट की तरफ़ चली गयीं, निष्प्राण पुतलियों की भाँति। वहाँ कुछ देर खड़े रहकर और टैनिस के खेल पर नज़र डालकर दोनों होस्टल की तरफ़ लौट पड़ीं, उसी तरह मौन, जैसे वे एक दूसरे से रूठी हुई हों।

कमरे में पहुँचकर रानी चुपचाप बिस्तर पर पड़ गयी और उस के हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकल गया। इस पर जैसे लीला को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो आया। वह उस के साथ बिस्तरे पर जा बैठी और कोशिश करके उस ने पुकारा—'रानी!' लेकिन आवाज़ जैसे उस के कण्ठ में ही रह गयी। रानी क्या सुनती, स्वयं उसे ही जब सुनायी न दी। दूसरी बार अपना सब साहस बटोरकर लीला ने उसे दोनों कन्धों से पकड़ लिया और कहा—"रानी!"

रानी ने केवल अपनी आँखें ऊपर उठा दीं।

लीला ने देखा, रानी की आँखों में आँसू छलछला आये हैं। इन भरी हुई आँखों ने मानो लीला को जिह्वा दे दी। उस ने कहा, "रानी, मेरी बहन, अपनी लीला को भी न बताओगी। मैं तो पूछने वाली ही थी कि तुम इतने दिनों कहाँ रहीं, मिली क्यों नहीं, नतीजा सुनने के

याद शीघ्र ही दाखिल क्यों न हो गयी ? मैं पूछना चाहती हूँ रानी, यह तुम ने सूरत कैसी बना ली है, तुम्हारी आकृति को, तुम्हारी हँसी को, तुम्हारे कुन्दन की तरह दमकते रंग को क्या हुआ ?"

रानी ने कुछ उत्तर न दिया, केवल उस ने ऊपर निगाहें उठायीं और आवेश वश लीला को भुजाओं में कस कर अपना मुँह उस की गोद में छिपा लिया।

लीला को जान पड़ा कि वह सिसक-सिसक कर रो रही है।

—०—

१६

सराय देवराज के बरामदे में बेचैनी से घूमते हुए लता ने कहा, "यहाँ भी काफ़ी गर्मी है !"

अमृतराय एक बिस्तर पर बैठे दीवार से पीठ लगाकर सुस्ता रहे थे। दाहिनी तरफ़ चारपाई पर बंसीलाल पड़ा था। लता की बात का उन्हों ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल बंसीलाल पर एक तीव्र दृष्टि डालकर ख़ामोश हो रहे।

सराय के आँगन में बने हुए चबूतरे पर कुहनी टेक कर लता खड़ी हो गयी। पिछले कुछ महीनों की घटनाएँ तस्वीरों की भाँति उस के सामने खिंच गयीं। इस यात्रा से बंसीलाल को कुछ लाभ न हुआ था, बल्कि समस्त सावधानी के बावजूद उस का स्वास्थ्य कुछ गिरा ही था। लता की तीर्थयात्रा, मन्दिरों की परिक्रमा, मठों का दर्शन, साधुओं और सन्तों की जड़ी-बूटियाँ—सब निरर्थक सिद्ध हुई थीं। हृषीकेश के आगे वनों में वह गयी, मथुरा, प्रयाग, काशी वह गयी, अच्छे प्रसिद्ध योगियों की सेवा में वह उपस्थित हुई, किन्तु इस तपस्या का परिणाम कुछ न निकला और आज सब ओर से निराश होकर वह एकान्त की

खोज में धर्मशाला आ पहुँची थी। यहाँ छावनी या मेक्लोडगंज में किसी ठण्डी मनोरंजक जगह एक छोटा सा बंगला लेकर रहने का उस का विचार था।

बरसात के दो-तीन महीने यहाँ दिन-रात वर्षा होती है। अधिकांश समय कमरों में ही बैठना पड़ता है। मकान सुन्दर, सुरुचिपूर्ण और एक दूसरे से दूर बने हुए हैं। एकान्तवास की इच्छा रखने वालों के लिए यह बहुत अच्छी जगह है। लता छः महीने निरन्तर यात्रा करने के बाद थक गयी थी और डाक्टर अमृतराय भी अधमरे से हो गये थे। दोनों एकान्त चाहते थे, आराम चाहते थे, किन्तु अमृतराय की आराम की इच्छा में स्वार्थ भी कहीं छिपा बैठा था।

आज तक वे छाया की भाँति लता के साथ रहे थे, किन्तु उन्हें अपने मन की बात लता के सामने खोलकर रख देने का कोई अवसर न मिला था। लता कभी स्थिर होकर न बैठी थी, आँधी के झोंके की भाँति वह निरन्तर एक से दूसरी और दूसरी से तीसरी जगह चलती चली आयी थी, यहाँ तक कि उसके शरीर में अब शक्ति ही न रही थी। और एक दिन उस ने इच्छा प्रकट की थी कि कहीं सुस्ता लिया जाय, ज़रा आराम ले लिया जाय।

डाक्टर अमृतराय भी थक चुके थे। जिस जोश से वह लता के साथ चले थे, वह भी अब समाप्त-प्राय प्रतीत होता था और यदि लता और कहीं आगे बढ़ने का विचार करती तो वह उसका विरोध करते। वह भी अब एकान्त चाहते थे—ऐसा एकान्त जिस में लता बंसीलाल के अतिरिक्त उन्हें भी देख सके। अब तक जिस तरह लता बंसीलाल के लिए सब कुछ करती रही थी, इसी तरह वे भी एक-मात्र लता की प्रसन्नता के लिए सब कुछ करते रहे थे, उन का काम लता से तनिक और कठिन था। लता केवल बंसीलाल की सेवा-शुश्रूषा करती थी, अमृतराय बंसीलाल का ही नहीं, लता का भी ध्यान रखते थे। किन्तु लता को इतना अवकाश कहाँ कि वह उन के इस त्याग का अर्थ समझ

सके। वह तो यही समझती आ रही थी कि अमृतराय भी दर्द भरा दिल रखते हैं, उन्हें बंसीलाल के केस में दिलचस्पी है, उस के साथ उन्हें हमदर्दी है, इसलिए वे साथ चले आये हैं। डाक्टर साहब ने स्वयं भी यही बात प्रदर्शित की थी, पर इस निःस्वार्थ सेवा की तह में कौन सी भावना काम करती है, इस बात को लता न समझ सकी थी। अब अमृतराय चाहते थे कि एकान्त में लता उन की ओर भी देखे और उन की इस सेवा को भी सफल बनाये।

लता ने जिस लगन, जिस निष्ठा से बंसीलाल की सेवा की थी, उस से उन की दृष्टि में लता की इज़्ज़त और भी बढ़ गयी थी। एक ग्रेजुएट लड़की किसी रोगी की इतनी सेवा करती है, यह उन के लिए नयी बात थी। इसी सभ्यता के रंग में रंगी हुई विमला शायद इस मांस पिंड को देखना भी पसन्द न करती और फ़्लोरा, वह तो अपने प्रेमी की मृत्यु के दिन ही दूसरे से लौ लगा लेती। वह चाहते थे उसी सेवा, उसी लगन, उसी निष्ठा से लता के दिल में अपनी जगह बना लें। रुपया उसे अपनी ओर न खींच सकता था, वह स्वयं धनी बाप की इकलौती लड़की थी। रूप का भी उस के यहाँ इतना मूल्य न था— जो एक मांस-पिंड, कुरूप रोगी से प्रेम कर सकती है, उसकी पूजा कर सकती है, वह मन आने पर ही किसी अन्य व्यक्ति को अपने अनुराग का दान दे सकती है और किसी तरह नहीं। यहाँ तो सेवा का मूल्य था और इसी साधन से वह अपने उद्देश्य में सफल होना चाहते थे। इसीलिए जब लता ने एकान्त में कुछ महीने बिताना स्वीकार कर लिया तो अमृतराय ने सुख की साँस ली थी। उस एकान्त में—जहाँ अपाहिज बंसीलाल, लता और उनके सिवा और कोई न होगा—उस का प्रेम-पात्र बन सकना शायद कठिन न होगा। जब वर्षा का आधिक्य होगा, जब किसी दूसरे से बात करने को जी तरसेगा, जब लता को अपने पागलपन से अवकाश मिलेगा, डाक्टर साहब अपने दिल को खोलकर उस के सामने रखने का अवसर पा सकेंगे।

आज सुबह वे लता और बंसीलाल के साथ धर्मशाला में उतरे थे। उन का विचार था कि ज़िला बोर्ड की धर्मशाला में कुछ दिन बितायेंगे और बाद में जब किसी अच्छे मकान का प्रबन्ध हो जायगा तो फिर वहाँ चले जायेंगे, किन्तु यहाँ आकर मालूम हुआ कि ज़िला बोर्ड की धर्मशाला में कन्या पाठशाला खुल गयी है, इसलिए विवश हो वे सराय देवराज में ही उतर पड़े थे।

सराय देवराज को इसीलिए सराय कहा जा सकता है कि उस का नाम सराय रखा गया है, नहीं तो सराय शब्द के साथ जिस विशालता का आभास होता है, उस का वहाँ निशान तक नहीं है। एक अच्छा खासा मकान है, जिस में तीन ओर कुल मिलाकर दस-बारह छोटे-छोटे कमरे हैं, कमरों के आगे बरामदा है, मध्य में एक आँगन है और उस में चबूतरा और बस! यही सराय देवराज है।

चबूतरे पर कुहनी रक्खे हुए लता सामने बरामदे की ओर देखने लगी। चार में से तीन कमरों के दरवाजे खुले थे और तीन विभिन्न प्रान्तों की संस्कृतियाँ वहाँ आकर इकट्ठी हो गयी थीं। पहले कमरे के सामने चारपाई पर एक कृश-काय युवती रोग से पीड़ित लेटी हुई थी। शायद तपेदिक से ग्रस्त थी, क्योंकि थोड़ी-थोड़ी देर बाद कष्ट से खाँस उठती थी। उस के सिरहाने उस की खूबसूरत, लम्बे क़द और गहरी आँखों वाली सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट बहन बैठी थी, जो उस का सिर दबा रही थी और दाहिनी ओर फ़र्श पर उस की माँ थी जो उस के रोग का कारण दाँतों का दर्द बता रही थी, शायद इस विचार से कि सराय वाले कहीं उन्हें निकाल न दें। ये लोग पंजाबी थे। लता बहुत देर तक दोनों बहनों के चेहरों की तुलना करती रही, आखिर इस प्रकार तपेदिक से ग्रस्त बहन की सेवा करने का परिणाम क्या होगा?—कल्पना-ही-कल्पना में लता ने उस युवती के सुन्दर मुख को रुग्णा बहन के मुख की भाँति पीला-ज़र्द होते, उस के शरीर को सूखते, कंकाल होते और किसी ऐसी ही सराय में खाँस-खाँसकर अपने शेष जीवन के दिन

गिनते देखा। लता की आँखें खुलने सी लगीं, वह सिहर उठी और एक लम्बी साँस लेकर उस ने इस दृश्य से निगाह हटा ली।

दूसरे कमरे में अभी कुछ देर पहले ही एक बंगाली कुटुम्ब उतरा था। उन की जल्दी-जल्दी चलती हुई ज़बानों से बंगाली के शब्द लता के पंजाबी कानों को कुछ विचित्र से लगते थे।

उन के बाद तीसरा कमरा बन्द था और चौथे कमरे में कुछ पहाड़ी रात काटने को आ ठहरे थे। लम्बे-लम्बे क़द, उस्तरे से बने चौड़े-चौड़े सपाट मस्तक, विशाल वक्षस्थल, बड़े-बड़े पाँव, टख़नों से ऊँचे उठे पाजामें, गले में खादी की मैली कमीजें, उन पर पट्टी के मोटे कोट!—सराय एक छोटी सी दुनिया है; बस, और कुछ नहीं। विभिन्न प्रान्तों, विभिन्न स्वभावों और विभिन्न चरित्रों के लोग जीवन की विविधताओं के साथ आते हैं। कुछ देर रहते हैं, फिर चले जाते हैं और संसार के विशाल गर्त्त में गुम हो जाते हैं। फिर कोई भी नहीं जानता कि उस के साथ के कमरे में जो व्यक्ति था, वह कहाँ गया और उस का क्या अंजाम हुआ।

लता सोचते-सोचते विचारों के जाल में उलझ-सी गयी। जीवन! यह जीवन भी क्या विचित्र वस्तु है, कितने परिवर्तन, कितनी हलचलें इस में निहित हैं। अपने छोटे से जीवन की सब गयी-बीती घटनाएँ उस की आँखों के सामने घूम गयीं—बचपन—प्यार और लाड़ से पला हुआ, जवानी—प्रसन्नता और उल्लास से भरपूर और उस के बाद, उस के बाद जवानी के पागलपन की बातें......

लता ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा। उस की कुहनी दुखने लगी थी। उस ने उसे चबूतरे से हटा लिया और बंसीलाल पर एक निगाह डालकर बेचैनी से बरामदे में घूमने लगी।

२०

एक हाथ में विष की शीशी लिये और दूसरे में कमीज़ का गिरेबान थामे डाक्टर अमृतराय बंगले के बरामदे में घूम रहे थे।

मेक्लोडगंज और छावनी में निरन्तर दो दिन खोजने के बाद उन्हों ने धर्मशाला से कोई छः मील और छावनी से एक डेढ़ मील ऊपर यह बंगलानुमा मकान पसन्द किया था। कुल तीन कमरे थे, उन के आगे बरामदे, रसोई और स्नान-गृह अलग थे! मकान के आगे छोटा-सा बगीचा भी था और चारों ओर घने बन्हे के वृक्ष थे। पर उस समय कुछ भी दिखायी न दे रहा था। निशीथ की नीरवता थी, गहरा अंधकार! और उस पर बादलों ने आकर एक और तह चढ़ा दी थी। घाटी के वृक्ष और बगीचा सब एकाकार हो रहे थे। कुछ धुँधियाली-सी दरवाजे के अन्दर आकर कमरे में भी छा गयी थी और रोशनी जैसे सिकुड़कर लैम्प के इर्द-गिर्द एक छोटे से दायरे में सीमित हो गयी थी।

डाक्टर साहब ने हवा की नमी को महसूस किया, पर वे उसी प्रकार घूमते रहे। अपने ही कमरे के आगे नंगे पाँव, ताकि साथ के कमरे में सोयी हुई लता अथवा दूसरे कमरे में सोया हुआ बंसीलाल जाग न जायँ। बंसीलाल के सम्बन्ध में लता का पागलपन अभी उसी प्रकार बना हुआ था। यहाँ आये उन्हें एक सप्ताह हो गया था, पर बंसीलाल की सेवा-शुश्रषा में लता की तल्लीनता रंचमात्र भी कम न हुई थी। बंसीलाल ठहरा अपाहिज, वह न उठ-बैठ सकता था, न मुँह हाथ धो सकता था, न स्वयं खा-पी सकता था और न अपनी कोई ज़रूरत ही पूरी कर सकता था। यह सब काम लता स्वयं करती थी। दवा समय पर देना, खिलाना-पिलाना, उस के कमरे की सफ़ाई करना, सब कुछ उस ने अपने ज़िम्मे ले रखा था। किसी बात में वह कभी एक मिनट की भी देर न होने देती थी। रात को 'अलार्म' लगाकर समय

पर दवा पिलाती और दिन को और कोई काम न होता तो उस के सिरहाने बैठी-बैठी उस के विकृत चेहरे को देखती रहती या पाँव के नाखूनों से फ़र्श कुरेदा करती और कुछ न होता तो स्वेटर ले बैठती, लेकिन ठीक वह कभी न बुन पाती, दो सलाइयाँ चढ़ाती तो दो उतार देती।

डाक्टर अमृतराय का ख़याल था कि एकान्त से ऊबकर लता उन का साथ चाहेगी। उस के साथ बैठने, सैर को जाने और बातें करने का अवसर मिलेगा और इस बीच में वे अपने मनोभावों को प्रकट कर सकेंगे। शक्ल-सूरत से वे बुरे न थे, बल्कि सुन्दर और बलिष्ठ थे, उन के स्वर में भी एक तरह की मिठास थी! विमला और फ्लोरा से उन्हें जो निराशा हुई थी, उस ने उन्हें जितना रूखा और सन्देहशील बना दिया था, वैसे अब वे न रह गये थे। परन्तु लता की आँखें अमृतराय की सुन्दरता न देखती थीं, उस के कान उन की मीठी वाणी न सुनते थे और जब आँखें देखती न हों, कान सुनते न हों तो सुन्दरता और मिठास किस काम आ सकते हैं? अब उन्हें निराशा होने लगी थी। वे यह अनुभव करने लगे थे मानो किसी निर्जीव मूर्ति के आगे वे अपने हृदय को घुला रहे हैं। क्या हुआ यदि अपने इन दो ओठों से उन्हों ने अपना प्रेम प्रकट नहीं किया; यदि यह नहीं कहा—लता मैं तुम से प्रेम करता हूँ—लेकिन क्या उन की आँखें उन के हृदय का दर्पण न थीं? क्या उन का व्यवहार उन के दिल का आईना न था? कई बार उन्हों ने चाहा कि वापस लाहौर चले जायँ। सोचते, पागल के साथ कहाँ तक पागल बनें, पर दिल उन के मार्ग में बाधा बन जाता था। जितनी छुट्टी उन की शेष थी, समाप्त हो चुकी थी और अब उन्हें आधे वेतन पर छुट्टी बढ़वानी पड़ रही थी। फिर भी अपने उद्देश्य के सफल होने की उन्हें आशा कम ही दिखायी देती थी।

प्रायः ऐसा होता है कि दो आदमी रोज़ मिलते हैं, रोज़ बातचीत करते हैं, पर एक दूसरे के लिए अपरिचित ही रहते हैं। यही हालत

अमृतराय और लता की थी। उन्हों ने कभी लता पर यह न प्रकट होने दिया कि वंसीलाल के लिए सहानुभूति के अतिरिक्त उन के मन में और भी कोई भाव है और लता को इतना अवकाश ही न मिला था कि वह उन की ओर ज़रा और ध्यान से देखे—सोचे कि अपना काम, अपना आराम छोड़कर वे क्यों उस के साथ भटकते फिरते हैं—क्या वंसीलाल ही उन की दिलचस्पी का केन्द्र है या कुछ और भी? दोनों इतने दिन साथ रहने पर भी अभी तक खुले न थे, दोनों के मध्य शिष्टाचार की एक दीवार खड़ी थी और अमृतराय अनुभव करने लगे थे कि जब तक वंसीलाल जीवित है, तब तक यह दीवार न टूटेगी।

बाहर वर्षा होने लगी। डाक्टर साहब केवल नाइट-सूट पहने हुए घूम रहे थे। मेंह की फुहार वायु के साथ बरामदे में आ रही थी। कुछ क्षण डाक्टर साहब वहीं खड़े रहे। फिर वंसीलाल के कमरे की ओर बढ़े, पर कुछ ही पग जाकर ठिठक गये और धीरे-धीरे फिर अपने कमरे में लौट आये। दरवाज़ा उन्हों ने बंद कर दिया और उस से पीठ लगाकर चुपचाप खड़े हो गये।

अन्दर कमरे में अंगीठी पर रखी हुई लालटेन अपनी धुँधली रोशनी से कमरे के अंधकार को दूर करने का प्रयास कर रही थी। अंगीठी के नीचे कोयले धधक रहे थे, पर उन पर श्वेत राख की एक हल्की-सी तह जम गयी थी। कमरे में एक ओर एक चारपाई थी, जिस पर श्वेत चादर बिछी थी और पैरों की ओर रेशमी रजाई तह करके रखी थी। वे फिर चुपचाप कमरे में घूमने लगे। उन के मन और मस्तिष्क में द्वन्द्व जारी था, एक निमिष के लिए भी वे बिस्तर पर न लेटे थे। दम उन्हें घुटता हुआ महसूस हुआ। उन्हों ने बढ़कर खिड़की खोल दी और जैसे हताश से होकर कुर्सी पर गिर गये।

बाहर ज़ोर से वर्षा हो रही थी, नमदार हवा के झोंके अन्दर आने लगे, उन्हों ने खिड़की बंद कर दी, पर कमरे में बैठना असह्य सा हो

गया। अपना शरीर उन्हें जलता हुआ महसूस होने लगा। उन्हों ने फिर दरवाजा खोला और बाहर बरामदे में निकल आये। वहाँ की ठंढी हवा में उन्हें कुछ शान्ति मिली। एक दीर्घ-निश्वास उन्हों ने छोड़ा—काश बंसीलाल अस्पताल में न आता, काश वह आपरेशन से न बचता काश उन्हें लता से मुहब्बत ही न होती, काश ठीक रास्ते पर बहती हुई जीवन की नदी इस प्रकार अनिश्चित मार्ग में न बहने लगती।

बंसीलाल—उस के अस्तित्व ही से उन्हें घृणा थी। इस गोश्त के लोथड़े को क्या अधिकार है कि वह दो दिलों के मध्य दीवार बना रहे। जब कभी वह लता के साथ जीवन बिताने का मीठा स्वप्न देखते, यही कंकाल, मृत-प्राय व्यक्ति भयावह प्रेतात्मा की भाँति उन के स्वप्नों को भंग कर देता। उन्हें विश्वास था कि यदि बंसीलाल न रहे तो लता अवश्य उन की ओर झुकेगी, वह अवश्य उन के आगे आत्म-समर्पण कर देगी।

सोचते—यह मांस-पिण्ड किसी का क्या बना-बिगाड़ सकता है? क्यों यह अधिक देर तक जीवित रहे?

जीवन के सम्बन्ध में भी उन के विचार भिन्न थे। धीमे-धीमे जलने वाली लैम्प की बत्ती की अपेक्षा वे ज्वाला को अधिक पसन्द करते थे, जो एक बार भमक कर जले और बुझ जाय। वसन्त के किसी प्रभात में जन्म लेकर दिन भर प्रेम करके सन्ध्या को जीवन लीला समाप्त कर लेने वाला पक्षी उन के विचार में अच्छा था—उन मनुष्यों की अपेक्षा जो मर रहे हैं, लेकिन फिर भी मरना नहीं चाहते। जिन का शरीर जवाब दे चुका है, जिन के हाथ-पाँवों में जान नहीं, जिन की आँखें निस्तेज हो चुकी हैं, जो ठीक तरह चल फिर नहीं सकते, ठीक तरह बोल नहीं सकते, जो संसार में भार-स्वरूप हैं, लेकिन फिर भी जीना चाहते हैं। फिर भी जीवन की नदी से दो चुल्लू और भर लेना चाहते हैं। ऐसे आदमियों को जीवित रहने और उन्हें जीवित रखने की क्या आवश्यकता है?

और आज उन्हों ने फैसला कर लिया था—यहाँ से निराश जाने के बदले वे अपने प्रतिद्वन्द्वी को ही मार्ग से हटा देंगे। कई दिन से उन के मन में युद्ध जारी था और आज तो वे क्षण भर के लिए भी सो न पाये थे। माना कि बंसीलाल अपाहिज है, माना कि उस के जीवन का कोई अर्थ नहीं, माना कि वह स्वयं अपने लिए एक बोझ है, माना कि मृत्यु द्वारा वह इस नरक से मुक्ति प्राप्त करेगा, फिर भी.............. फिर भी......

इसी उधेड़ बुन में विष की शीशी जेब में डाले वे कितनी ही देर तक घूमते रहे। फिर उन्हों ने निर्णय कर लिया—संसार में पग-पग पर प्रतियोगिता है, द्वन्द्व है, शक्त ही सफल है, अशक्त ही असफल है। दुर्बल को कोई अधिकार नहीं कि वह सबल के मार्ग में रोड़ा बने, बंसीलाल उन के मार्ग का काँटा है, वे उसे हटाकर दूर कर देंगे......

उन्हों ने लता के दरवाजे से कान लगाया—जब कोई आवाज़ न सुनायी दी तो अधिक एकाग्रता से सुनने का प्रयास किया। अब की बार उन्हें अनुभव हुआ जैसे किसी के अत्यन्त धीरे-धीरे साँस लेने की आवाज़ आ रही है, पर शायद यह एकाग्रता द्वारा तीव्र होने वाली उन की कल्पना की ही आवाज़ थी। फिर वहाँ से हट कर उन्हों ने साथ के दरवाजे से कान लगाये। निस्तब्धता छायी थी। और ध्यान से सुनने पर उन्हें धीरे-धीरे से कराहने का शब्द सुनायी दिया। एक निमिष के लिए वे इसी हालत में चोरों की भाँति खड़े रहे। उन की साँस रुक गयी, उन के शरीर की सब चेष्टाएँ क्षण भर के लिए स्तब्ध हो गयीं और कुछ क्षण वे इसी तरह मूक चुप-चाप खड़े रहे, फिर उन्हों ने दरवाज़ा अन्दर की ओर ढकेला।

२१

दिन भर की थकी-माँदी लता आराम की नींद सो रही थी।

बंसीलाल के और उस के कमरे को मिलाने वाले दरवाज़े में टँगा हुआ लैम्प अपने धीमे प्रकाश से उस के चरणों में लोटा जा रहा था। चारपाई के समीप ही अँधेरे में दो कुर्सियाँ पड़ी थीं। इन के साथ छोटी सी मेज़ थी, जिस पर एक सुन्दर मेज़पोश बिछा था और उस पर ओवलटीन का डिब्बा, चम्मच और खाली गिलास पड़े थे। एक अँग्रेजी पत्रिका भी थी और मेज़ के नीचे फर्श पर किसी पत्र के कुछ पृष्ठ बिखरे पड़े थे।

लता सोई हुई थी। उस का थका हुआ शरीर नींद की सुख भरी गोद में आराम कर रहा था। पीला चेहरा कमरे के धीमे प्रकाश में और भी पीला मालूम होता था। आँखों की पंखुड़ियाँ बंद थीं, पर ओंठ मुस्करा रहे थे। उस समय लता एक सुखद स्वप्न देख रही थी—उसके सामने एक सुन्दर और सुरम्य घाटी थी, दोनों ओर पहाड़ थे, ऊँचे और ढलवान—चीड़ के वृक्षों से ढके हुए। घाट के मध्य एक नाला बह रहा था—कल-कल गति से अपने हृदय में संचित इन पहाड़ों के प्रेममय गीत गाता हुआ। उस के मध्य रेत और पत्थरों का एक नन्हा द्वीप सा बन गया था। उसी पर एक सुन्दर बँगला था, जिस के ऊपर की मंज़िल में वह आराम कुर्सी डाले बैठी थी। स्नेहमयी धूप उस के आधे शरीर को हल्की और मीठी गर्मी पहुँचा रही थी। सहसा बादल का एक टुकड़ा निचले पहाड़ों के पीछे से उठने लगा। देखते-देखते वह सुन्दर युवक की सूरत में बदल गया। लता ने आँखें मलीं, हाँ, वह युवक ही था। लता ने तनिक ध्यान से देखा—अरे यह तो जगत चढ़ा आ रहा है—वही सुन्दर चेहरा, वही चंचल आँखें, वही नीला सूट, वही काली फैल्ट— लता ने उपेक्षा से मुँह फेर लिया, कुर्सी घुमा ली। जगत !—उस के नाम ही से उसे नफ़रत हो गयी थी। वे दिन—वे

सब दिन जिन्हें वह किसी समय अपने जीवन के उन्माद भरे, रस भरे, विस्मृति भरे दिन समझती थी, समझती कि जिन से उस का जीवन सफल हो गया है—वही दिन अब उस के हृदय में काँटों की भाँति खटकते थे, और उन दिनों की स्मृतियाँ भुलायी न जा सकी थीं, उस के हृदय में कचोटे लेती थीं। वह अपने शरीर के अणु-अणु से, रोम-रोम से उस से घृणा करती थी— चाहती थी वे दिन, वे सब दिन स्मृति-पट से ऐसे मिट जायँ, जैसे उन का कोई अस्तित्व ही न था।

बाहर की ओर पीठ किये हुए, वहीं कुर्सी पर बैठे-बैठे, उस ने यह महसूस किया कि कोई बरामदे पर चढ़ा आ रहा है। उस ने आँख फिरा कर भी नहीं देखा। उस ने अनुभव किया कि कोई उस के कन्धे को छू रहा है, वह उसी तरह बैठी है, उधर देखती नहीं, हिलती नहीं। उस का कन्धा हिलाया जाता है, वह परवाह नहीं करती। तभी उस ने सुना, कोई रुद्ध कण्ठ से कह रहा है—मत देखो लता, मेरी ओर मत देखो—मैं इस घाटी में कूद पड़ूँगा और दूसरे क्षण मेरा शरीर पत्थरों पर तड़पता हुआ दिखायी देगा, तब भी मेरी ओर न देखना—हाँ दूसरों की बेवफ़ाई देखकर मेरी वफ़ा याद कर लेना।

यह सुनते ही लता विद्युत वेग से मुड़ी। देखा बंसीलाल सामने खड़ा है। लिबास तो वही है, पर जगत नहीं बंसीलाल है—आँखों में आतुरता है, चेहरे पर उन्माद और ओंठ सूख गये हैं। लता ने बाहें फैला दीं और दूसरे ही क्षण दोनों एक दूसरे के आलिङ्गन में बद्ध थे। लता का सिर जैसे उस के वक्षस्थल से लगा, जैसे उस में विलीन हो जाना चाहता था, जिस के दिल की धड़कन उसे साफ़ सुनायी दे रही थी; उस का रोम-रोम मानो उस की साँस की गर्मी को महसूस कर रहा था, मानो उस का स्वागत करने को आतुर हो रहा था, जो धीरे-धीरे बंसीलाल के झुकते हुए ओंठों से उस की सुन्दर और सुकोमल गरदन की ओर बढ़ी आ रही थी। उस की साँस तेज हो रही थी और शरीर का सारा रक्त मानो उसी एक स्थल पर केन्द्रित होने को आतुर था।

उसी क्षण किवाड़ खुलने की आहट हुई। लता जैसे चौंक कर घबरा कर, उस आलिङ्गन से मुक्त होने के लिए छटपटायी। क्षण भर के लिए उस की आँख खुल गयी। न वह घाटी, न नाला, न रेत, न बंगला, हाँ उस का हृदय अवश्य जोर से धड़क रहा था और शरीर साधारण गर्मी महसूस कर रहा था। बाहर शायद वर्षा हो रही थी, हवा सायँ-सायँ कर रही थी, हाँ लैम्प अवश्य एक बार धीमी हुई, लता ने फिर आँखें बन्द कर लीं और उसी सुखद स्वप्न की कल्पना करने लगी।

और बंसीलाल के कमरे के बाहर बरामदे में डाक्टर अमृतराय सिर से पाँव तक कान बने खड़े थे। वर्षा और वायु के डर से बंसीलाल के कमरे का यह दरवाजा प्राय: बन्द ही रहता था और जो भी चीज़ उस के कमरे में पहुँचानी होती, लता के कमरे में से होकर पहुँचायी जाती थी। आज सन्ध्या को लता सोने की तैयारी करने लगी, तो डाक्टर साहब अपनी नोट बुक वहाँ भूल आने का बहाना करके बंसीलाल के कमरे में गये थे और आते-आते धीरे से सिटकिनी खोल आये थे। लता पूर्ववत अपने कमरे के दरवाजे की सिटकिनी लगा कर सो गयी थी। वर्षा ऋतु के कारण किवाड़ों की लकड़ी कुछ फूल गयी थी और यद्यपि अन्दर से सिटकिनी खुली थी, पर डाक्टर साहब ने धीरे से धकेला तो दरवाजा न खुला। तब उन्हों ने उसे जोर से धकेलने का प्रयास किया था, इस बार यद्यपि किवाड़ खुले तो नहीं थे, पर कुछ पीछे को अवश्य हट गये थे। यह वही आवाज़ थी जो लता ने स्वप्न में सुनी थी।

कितनी ही देर तक डाक्टर अमृतराय किवाड़ों के साथ कान लगाये इस बात की आहट लेते रहे कि कहीं लता जाग तो नहीं पड़ी। उस समय बाहर हवा की सायँ-सायँ और वर्षा के शोर की अवहेलना करके उन की श्रवण-शक्ति जैसे दीवारों के अन्दर धँसी जा रही थी। उस समय अन्दर जरा भी आहट होती तो उन्हें सुन[illegible]

लेकिन कुछ था नहीं। भीतर पूर्ण निस्तब्धता थी। डाक्टर साहब ने अच्छी तरह सन्तोष करके धीरे से दरवाजे को खोला और दबे पाँव भीतर दाखिल हुए। फिर कन्धे से धकेल कर किवाड़ बन्द कर दिये और सिटकनी लगा दी ताकि हवा से फिर न खुल जायँ। इस के बाद वे धीरे से बढ़े।

यह कमरा शेष कमरों से छोटा था। यहाँ दीवार में अँगीठी नहीं थी। एक कोने में लोहे की अँगीठी अवश्य थी, जिसमें किसी समय दहकने वाले कोयलों की राख पड़ी हुई थी। सामने चारपाई पर बंसीलाल पड़ा था, इसी राख की भाँति बेजान! किसी दिन जवानी की इस राख में भी आग थी, आग में तेज था और तेज में दूसरे को जलाने की शक्ति थी, किन्तु अब वह इसी राख की भाँति असहाय, दीन-विवश अपनी शय्या पर पड़ा था। लिहाफ़ कुछ उस के ऊपर था, और कुछ एक तरफ़ को धरती पर गिर गया था, चेहरा अँधेरे में था। लैम्प का क्षीण प्रकाश केवल उस की गरदन तक जाता था। पास एक छोटी सी मेज़ पर दवा की कुछ शीशियाँ रक्खी हुई थीं। सामने एक खूँटी पर तौलिया टँगा था, उस के नीचे फर्श पर चिलमची और साबुन-दानी पड़ी थीं।

लैम्प के समीप पहुँच कर डाक्टर साहब रुके। दूसरे कमरे में लता लेटी हुई थी, लैम्प के इस धीमे प्रकाश में डाक्टर साहब उस की सुन्दरता को जी भर देख लेने का लोभ संवरण न कर सके। उन की निगाहें उस के सुन्दर मुख पर जाकर जम गयीं। मालूम होता था जैसे कोई अप्सरा गा कर, थक कर सो गयी है, पर उस के मस्तिष्क से वे दृश्य नहीं मिटे, इसीलिए ओंठ मुस्करा रहे हैं। उन्हें इच्छा हुई कि वे जाकर एक बार उन सोये हुए गर्म ओंठों को चूम लें, दूसरे क्षण यह इच्छा प्रबल आकांक्षा में परिणत हो गयी और वे पंजों के बल धीरे-धीरे आगे बढ़े।

वे भूल गये कि उन के आने का उद्देश्य क्या है? वे भूल गये कि

इस समय चूक जाने का मतलब सदैव के लिए असफल रह जाना है। वे बढ़े जा रहे थे, जैसे चुम्बक ऐसी कोई शक्ति उन्हें अपनी ओर खींच रही हो। उन की आँखें लता के सुन्दर चेहरे पर थीं और पाँव धीरे-धीरे उठ रहे थे। वे दरवाज़े के पास आ गये। लैम्प, मानो क्षीण प्रकाश की बुझी-बुझी सी आँखों से उन के इस पागलपन को देख रहा था। डाक्टर साहब को जान पड़ा जैसे कोई बड़ी गहरी, हृदय की अन्तरतम गहराइयों में डूब जाने वाली दृष्टि उनके इस कृत्य को देख रही है। उन्हों ने बढ़ कर लैम्प को तनिक और धीमा कर दिया और लता के कमरे में दाखिल हुए। लैम्प का प्रकाश घटने से लता के चेहरे पर हल्का सा पर्दा छा गया था, किन्तु उस के ओठों पर खेलने वाली मुस्कान उन्हें अब भी अपनी ओर खींच रही थी, जैसे उन्हें आमन्त्रित कर रही हो और वे धीरे-धीरे बढ़े जा रहे थे। तब मेज़ के पास फ़र्श पर पड़े हुए समाचार पत्र को उन के पाँवों से ठोकर लगी और ऐसी आवाज़ हुई जैसे हवा के कारण काग़ज़ के हिलने से हुआ करती है। अमृतराय चौंके और इस के साथ ही उन्हें अपनी स्थिति का, उस उद्देश्य का खयाल आ गया जिस के लिए अपने मन को इतने दिन से वे दृढ़ करने का प्रयत्न कर रहे थे।

आज वे एक क्षण के लिए भी न सोये थे, यहाँ तक कि बिस्तर पर लेटे तक न थे, घूम-घूम कर, बैठ-बैठ कर वे अपने कृत्य की भलाई-बुराई के सम्बन्ध में अपने अन्तर से परामर्श करते रहे थे। एक आवाज़ कहती थी—यह गुनाह है, परमात्मा की बनायी हुई सृष्टि को नष्ट करना पाप है, जो काम वे करने जा रहे हैं, समाज में उस का दंड मौत है। कानून इस मामले में अन्धा है, वह नहीं देखता कि हत्या या उद्देश्य क्या है, इस में मृतक का लाभ था या नहीं, वह तो केवल दंड देना जानता है। आत्महत्या के प्रयास करने वाले को कानून इसलिए क्षमा नहीं कर देता कि यदि वह आत्म-हत्या न करता तो भूख के कारण भी तो मर जाता या संसार में उस प्राणी के लिए अब कोई आकर्षण न

लेकिन कुछ था नहीं। भीतर पूर्ण निस्तब्धता थी। डाक्टर साहब ने अच्छी तरह सन्तोष करके धीरे से दरवाजे को खोला और दबे पाँव भीतर दाखिल हुए। फिर कन्धे से धकेल कर किवाड़ बन्द कर दिये और सिटकनी लगा दी ताकि हवा से फिर न खुल जायँ। इस के बाद वे धीरे से बढ़े।

यह कमरा शेष कमरों से छोटा था। यहाँ दीवार में अँगीठी नहीं थी। एक कोने में लोहे की अँगीठी अवश्य थी, जिसमें किसी समय दहकने वाले कोयलों की राख पड़ी हुई थी। सामने चारपाई पर बंसीलाल पड़ा था, इसी राख की भाँति बेजान! किसी दिन जवानी की इस राख में भी आग थी, आग में तेज था और तेज में दूसरे को जलाने की शक्ति थी, किन्तु अब वह इसी राख की भाँति असहाय, दीन-विवश अपनी शय्या पर पड़ा था। लिहाफ़ कुछ उस के ऊपर था, और कुछ एक तरफ को धरती पर गिर गया था, चेहरा अँधेरे में था। लैम्प का क्षीण प्रकाश केवल उस की गरदन तक जाता था। पास एक छोटी सी मेज़ पर दवा की कुछ शीशियाँ रक्खी हुई थीं। सामने एक खूँटी पर तौलिया टँगा था, उस के नीचे फर्श पर चिलमची और साबुन-दानी पड़ी थीं।

लैम्प के समीप पहुँच कर डाक्टर साहब रुके। दूसरे कमरे में लता लेटी हुई थी, लैम्प के इस धीमे प्रकाश में डाक्टर साहब उस की सुन्दरता को जी भर देख लेने का लोभ संवरण न कर सके। उन की निगाहें उस के सुन्दर मुख पर जाकर जम गयीं। मालूम होता था जैसे कोई अप्सरा गा कर, थक कर सो गयी है, पर उस के मस्तिष्क से वे दृश्य नहीं मिटे, इसीलिए ओंठ मुस्करा रहे हैं। उन्हें इच्छा हुई कि वे जाकर एक बार उन सोये हुए गर्म ओंठों को चूम लें, दूसरे क्षण यह इच्छा प्रबल आकांक्षा में परिणत हो गयी और वे पंजों के बल धीरे-धीरे आगे बढ़े।

वे भूल गये कि उन के आने का उद्देश्य क्या है? वे भूल गये कि

इस समय चूक जाने का मतलब सदैव के लिए असफल रह जाना है। वे बढ़े जा रहे थे, जैसे चुम्बक ऐसी कोई शक्ति उन्हें अपनी ओर खींच रही हो। उन की आँखें लता के सुन्दर चेहरे पर थीं और पाँव धीरे-धीरे उठ रहे थे। वे दरवाज़े के पास आ गये। लैम्प, मानो क्षीण प्रकाश की बुझी-बुझी सी आँखों से उन के इस पागलपन को देख रहा था। डाक्टर साहब को जान पड़ा जैसे कोई बड़ी गहरी, हृदय की अन्तरतम गहराइयों में डूब जाने वाली दृष्टि उनके इस कृत्य को देख रही है। उन्हों ने बढ़ कर लैम्प को तनिक और धीमा कर दिया और लता के कमरे में दाखिल हुए। लैम्प का प्रकाश घटने से लता के चेहरे पर हल्का सा पर्दा छा गया था, किन्तु उस के ओंठों पर खेलने वाली मुस्कान उन्हें अब भी अपनी ओर खींच रही थी, जैसे उन्हें आमन्त्रित कर रही हो और वे धीरे-धीरे बढ़े जा रहे थे। तब मेज़ के पास फ़र्श पर पड़े हुए समाचार पत्र को उन के पाँवों से ठोकर लगी और ऐसी आवाज़ हुई जैसे हवा के कारण काग़ज़ के हिलने से हुआ करती है। अमृतराय चौंके और इस के साथ ही उन्हें अपनी स्थिति का, उस उद्देश्य का खयाल आ गया जिस के लिए अपने मन को इतने दिन से वे दृढ़ करने का प्रयत्न कर रहे थे।

आज वे एक क्षण के लिए भी न सोये थे, यहाँ तक कि बिस्तर पर लेटे तक न थे, घूम-घूम कर, बैठ-बैठ कर वे अपने कृत्य की भलाई-बुराई के सम्बन्ध में अपने अन्तर से परामर्श करते रहे थे। एक आवाज़ कहती थी—यह गुनाह है, परमात्मा की बनायी हुई सृष्टि को नष्ट करना पाप है, जो काम वे करने जा रहे हैं, समाज में उस का दंड मौत है। कानून इस मामले में अन्धा है, वह नहीं देखता कि हत्या या उद्देश्य क्या है, इस में मृतक का लाभ था या नहीं, वह तो केवल दंड देना जानता है। आत्महत्या के प्रयास करने वाले को कानून इसलिए क्षमा नहीं कर देता कि यदि वह आत्म-हत्या न करता तो भूख के कारण भी तो मर जाता या संसार में उस प्राणी के लिए अब कोई आकर्षण न

रह गया था। वह तो प्राकृतिक नियम में हस्तक्षेप मात्र को दंडनीय मानता है। फिर अमृतराय को क्या अधिकार है कि वे वंसीलाल को मौत के घाट उतार दें ? जब कि क़ानून के अनुसार वे स्वयं आत्म-हत्या तक नहीं कर सकते थे। मान लिया वंसीलाल अपाहिज है, मान लिया वह संसार और उस के सुखों का उपभोग नहीं कर सकता, मान लिया कि वह धरती पर केवल भार स्वरूप है; फिर भी वह जीवित है। उस का जीर्ण-शीर्ण कलेवर जाने कितनी अभिलाषाओं का, कितने अरमानों का घर है। अरमानों और आशाओं के इस टूटे हुए खँडहर को भी विध्वंस करना पाप है।—उन की आत्मा पुकार-पुकार कर यह कह रही थी।

लेकिन मस्तिष्क में जो दानव छिपा बैठा था, वह कहता था—ये विचार पुराने हैं, जर्जर हैं। जीवित रहने का तात्पर्य जीवन के संघर्ष में पूर्ण रूप से सहयोग दे सकना है। जो व्यक्ति संसार में किसी प्रकार के सुख का उपभोग नहीं कर सकता और न दूसरों को करने देता है, उसे क्या हक़ है जीवित रहे और दूसरों के मार्ग का काँटा बने। यदि वह स्वयं नहीं मरता तो समाज को उसे मौत के घाट उतार देना चाहिए। शरीर का कोई अंग निष्क्रिय हो जाय तो उसे अलग कर दिया जाता है, फिर क्यों समाज के शिथिल अंग को काट कर न फेंक दिया जाय ?

और फिर वंसीलाल के जीवित रहने से दूसरों को ही कष्ट न था, बल्कि स्वयं वंसीलाल को भी असीम पीड़ा थी। डाक्टर अमृतराय आरम्भ से ही इस ख़याल के थे कि ऐसे जीवन से मौत कहीं अच्छी है। एक बार उन के पड़ोसी के लड़के ने मकान की छत से एक पिल्ले को नीचे फेंक दिया था। पिल्ला मरा तो नहीं, पर उस की हड्डी हड्डी पिस गयी थी। वह असह्य पीड़ा से तड़प रहा था। डाक्टर साहब जानते थे कि वे उसे अच्छा न कर सकेंगे और यदि वह अच्छा हो भी गया, तो यह बात उन को भली-भाँति मालूम थी कि उस की दशा अत्यन्त दयनीय हो जायगी और पिसी हुई टाँगों से वह घसिटता फिरेगा। उन्हों

ने तत्काल गोली से उस का काम तमाम कर दिया। बंसीलाल की दशा उस पिल्ले से अच्छी न थी। अंतर केवल यह था कि पिल्ले को मारना शायद इतना बड़ा अपराध न था, बल्कि तब तो वह पुण्य-कृत्य ही समझा गया था, किन्तु बंसीलाल को मारना शायद पुण्य न समझा जाय और इसीलिए वे उसे मारने के लिए गोली से काम न ले सकते थे। हाँ, विष इस उद्देश्य को भली-भाँति पूरा कर सकता था और कई दिन के अन्तर्द्वन्द्व के बाद वे इस के लिए तैयार भी हो गये थे।

अपने मन को समझाने के लिए उन्होंने सोच लिया था कि वे बंसीलाल को इस नरक से मुक्ति दिला देंगे, किन्तु अंतर के किसी कोने में छिपी हुई आत्मा की आवाज़ मानो मूक भाषा में पुकार-पुकारकर कह रही थी—यह पाप-पुण्य का ढोंग छोड़ो। तुम्हें लता से प्रेम है और बंसीलाल उस प्रेम के रास्ते में रुकावट है, इसलिए उसे हटा रहे हो। उन्हें जान पड़ा जैसे युक्तियों द्वारा उन्होंने अपनी आत्मा का गला घोंट दिया है। जो कृत्य समाज की दृष्टि में पाप है, उसे वे पुण्य कैसे बता सकते हैं। आज वे अपराधियों की भाँति उस असहाय दीन-हीन व्यक्ति को विष का घूँट पिलाने आये हैं। उनकी दृढ़ता दुर्बलता में परिणत हो गयी और एक काग़ज़ का तनिक-सा हिलना भी उन्हें कँपा देने के लिए काफ़ी हो गया।

वे वापस पीछे को मुड़े और जल्दी-जल्दी पंजों के बल चलते हुए वहाँ पहुँचे, जहाँ से वे लता के कमरे की ओर घूमे थे, खड़े होकर उन्होंने एक बार फिर लता को देखा। वह सुख की नींद सो रही थी।

वह जादू भी—जिस ने उन्हें अपना आप भुला दिया था, जिस के प्रभाव से वे जगह-जगह की ख़ाक छान, नौकरी की परवा न करते हुए यहाँ आ पहुँचे थे—इस समय सो रहा था, किन्तु सोकर भी वह कितना प्रभावशाली हो गया था—इतनी सरलता, इतनी सुन्दरता, इतना आकर्षण—डाक्टर साहब फिर मन्त्र-मुग्ध से हो गये, सोते में लता के

मुसकराते हुए ओठों को चूम लेने के लिए उन का मन फिर व्यग्र हो उठा।

उसी समय वंसीलाल कराह उठा। डाक्टर साहब ने उस की ओर देखा। वंसीलाल का लिहाफ़ फ़र्श पर गिर पड़ा था और सर्दी के कारण वह अपनी पंगु टाँगों को अपने पेट में दबाये हुए ठंढ से ठिठुर रहा था।

डाक्टर साहब धीरे-धीरे उस की ओर बढ़े, रजाई को उठाकर वंसीलाल के विस्तर पर रखा। फिर धीरे से उस के गले तक रजाई उढ़ा दी। इस के बाद उन्होंने घड़ी को देखा—दो बजे थे। इसी समय रोज लता उठकर दवा पिलाया करती थी। पर अलार्म शाम को ही उन्होंने बन्द कर दिया था। उन्होंने सन्तोष की गहरी साँस ली। फिर जेब से शीशी निकाल ली और चम्मच निकालकर विष की एक खुराक उस में उलट दी। एक क्षण के लिए उन का हाथ काँपा, एक बार उन का सारा शरीर काँपा, चम्मच गिर न जाय, इस खयाल से उन्होंने दृढ़ता से उसे पकड़ लिया। उन का शरीर फिर काँपने लगा। चम्मच जोर से हिलने लगा। उन्होंने तत्काल उसे उसी शीशी में उलट दिया और चम्मच को मेज पर पटककर और शीशी को जेब में डालकर स्तब्ध-से खड़े रहे। उन की निगाहें प्रकट घड़ी पर जमी हुई थीं, लेकिन उन का दिल उन्हें इस दुर्बलता पर कोस रहा था।

कुछ क्षण बाद उन्होंने फिर चम्मच उठाया। वंसीलाल चुपचाप सोया पड़ा था। उस का मुँह कुछ खुला हुआ था। डाक्टर साहब ने एक निमिष के लिए उस की ओर देखा और फिर चम्मच में विष डाल दिया, लेकिन वंसीलाल के चेहरे पर दृष्टि जमाये खड़े रहे और उन का मस्तिष्क विषपान के बाद उस की विकृत मुखाकृति की कल्पना करता रहा।

दूसरे कमरे में लता उसी सुखद स्वप्न को वापस लाने के प्रयास में अर्ध-निद्रावस्था में पड़ी थी—अमृतराय दबे पाँव उस के कमरे में उस

की सुन्दरता के आकर्षण से खिंचे चले आये हैं और फिर वापस चले गये हैं, इस का उसे कोई ज्ञान न था। वह तो उसी घाटी में, उसी नाले के मध्य रेत पर बने हुए बंगले का स्वप्न देख रही थी कि अचानक कुछ आहट हुई। उस ने कान लगाकर सुना। उठकर वह बिस्तर पर बैठ गयी। विस्मृत की-सी अवस्था में वह कुछ क्षण उसी तरह चारपाई पर बैठी रही। उसी दरवाजे से बंसीलाल के कमरे में किसी व्यक्ति की छाया दिखायी दी। उसी तरह अस्तव्यस्त दशा में दुपट्टा लिये बिना वह दरवाज़े तक आयी और दोनों हाथ चौखट पर फैलाकर खड़ी हो गयी। सामने अमृतराय हाथ में चम्मच लिये खड़े थे। उन के चेहरे का एक हिस्सा लता को दिखायी दे रहा था। एक क्षण के लिए उस की निगाह घड़ी पर गयी—दो बजे थे। दवा का समय था, पर वह जाग न सकी थी, इसलिए स्वयं डाक्टर साहब दवा पिलाने आये हैं—यह सोचकर उस के हृदय में डाक्टर साहब की इस सहृदयता, इस कर्तव्य-परायणता के प्रति श्रद्धा-सी पैदा हो गयी। उन का श्वेत चेहरा और कुछ पिचके हुए गाल देखकर उस के सामने उन के त्याग का चित्र अङ्कित हो गया।

वह सोचने लगी—इन जैसे सहृदय व्यक्ति भी संसार में कितने होंगे, जो एक रोगी को आराम पहुँचाने के लिए अपनी नौकरी की परवाह न करें; नगर-नगर घूमते फिरें, जंगलों और पहाड़ों की ख़ाक छानें; उस के स्वास्थ्य के ध्यान में स्वयं अपने स्वास्थ्य को खतरे में डाल लें—लता के हृदय में डाक्टर अमृतराय के लिए श्रद्धा का समुद्र उमड़ आया। उस के जी में आया कि दौड़कर इस देवता का पाँव चूम ले। इस तन्मयता में लता का एक हाथ चौखट से फिसल गया और वह मुँह के बल धरती पर आ गिरी।

उस के गिरने की आवाज से डाक्टर साहब चौंके। उन के हाथ से चम्मच गिर गया, हृदय धड़क उठा, चेहरा क्षण भर के लिए पीला पड़ गया, किन्तु दूसरे ही क्षण सम्हलकर लता की ओर आगे बढ़े और उसे धरती से उठाया। लता की बाहों के स्पर्श मात्र से उन के

शरीर में सनसनी दौड़ गयी और जब उठते समय वह उन के वक्षस्थल के बिलकुल समीप हो गयी तो अपने अपराध को भूलकर उन का हृदय एक नवीन आशा से धड़कने लगा।

लता गिरी थी, किन्तु सम्हल गयी थी। हाँ, उस के हाथ पर जरा सी खरोंच जरूर आ गयी थी। डाक्टर साहब ने मुसकराने का प्रयास करते हुए कहा, "चोट तो नहीं आयी ?"

"बिलकुल नहीं !"

और यह कहती हुई, हाथ झाड़ते हुए वह अपने कमरे की ओर दुपट्टा लेने के लिए भागी। उस समय डाक्टर साहब ने विद्युत वेग से मेज पर पड़ी हुई विष की शीशी जेब में रखी और चम्मच को बूट तले मल दिया, जिस से उस में कुछ मिट्टी लग गयी। दूसरे क्षण लता दरवाजे पर आ गयी। इस घटना से वह कुछ शरमा सी गयी और उस के ज़र्द चेहरे पर सुर्खी की एक बारीक-सी लहर दौड़ गयी थी। मुसकराते हुए उस ने कुछ शिकायत भरे स्वर में कहा, "आप ने इतना कष्ट क्यों किया। मैं तो जग जाती, किन्तु अलार्म ही सुनायी न दिया। ऐसी घोड़े बेचकर सोयी कि कुछ खबर ही न रही। आप स्वयं कष्ट करने के बदले मुझे ही जगा देते।"

डाक्टर साहब ने ओठों पर बरबस मुसकराहट लाते हुए कहा, "नहीं कोई बात नहीं। समय हो गया था, मुझे नींद नहीं आ रही थी, मैंने कहा चलो मैं ही दवाई पिला आऊँ। दरवाजा शायद अन्दर से खुला था, इसलिए मैं आ गया और दवा पिलाने ही जा रहा था कि वह गिर गयी।"

लता आगे बढ़ी, उस ने चम्मच उठाया।

"ज़रा इसे साफ कर लीजिए !" डाक्टर साहब ने धीरे से कहा।

लता ने अँगीठी से राख लेकर उसे माँजा और फिर धो डाला।

"अपने हाथ साबुन से धो लीजिए !" डाक्टर साहब ने बेपरवाही से

चम्मच लेते हुए कहा।

लता साबुन से हाथ धोने लगी। डाक्टर साहब मेज से दवा की शीशी उठाकर बंसीलाल को पिलाने लगे। लता की निगाहें उन के चेहरे पर जमी रहीं और उस का हृदय पुकार-पुकारकर कहता रहा—कितना सहृदय है यह डाक्टर! कितना भला, कितना दयावान!

—०—

२२

रानी ने दाई के हाथ से रुक्का ले लिया। अंग्रेजी में लिखा था :—

निमन्त्रण

रानी बहन से प्रार्थना की जाती है कि वह कमरा नम्बर १४ में दर्शन देकर और उस टी-पार्टी में सम्मिलित होकर कृतार्थ करें, जो लीला बहन की सगाई के सुसमाचार की खुशी में अभी एक घंटे के बाद होने जा रही है।

—सावित्री

रानी ने कागज़ का पुर्जा मेज पर रख दिया। वह कुछ देर घूमने के विचार से बाहर जा रही थी, पर जा न सकी। उस ने मेज पर पड़े हुए कागज़ पर जल्दी में लिखी हुई इन चन्द पंक्तियों को एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा और फिर कई बार पढ़ा—यहाँ तक कि उस की दृष्टि बे मतलब कागज के इस सिरे से उस सिरे तक दौड़ने लगी।

सगाई—कितना सुखद और कल्पनाओं की दुनिया आबाद कर देने वाला शब्द है! नवयुवतियों के दिलों में इस शब्द से कितनी गुदगुदी, कितनी सनसनाहट पैदा हो जाती है। उन का मस्तिष्क कितनी ऊँचाइयों पर उड़ जाता है और वायु में कितने प्रासाद निर्मित हो जाते

हैं। जिस लड़की की सगाई होती है, उस के स्वप्नों की दुनिया का बस जाना तो स्वाभाविक ही है, पर उस के साथ उस की सहेलियों के सपनों के संसार भी आबाद हो जाते हैं। अपने भावी पति, अपनी भावी सुसराल, सास-देवर और नन्दों की कल्पनाएँ उन के मन-मस्तिष्क पर छा जाती हैं और नयी खुशियों, नयी प्रसन्नताओं की कल्पना उन्हें मस्त बना देती है और जीवन में एक नया अध्याय आरम्भ हो जाता है।

कोई कितने भी गरीब घर में क्यों न पैदा हुई हो, किसी की आशाएँ बाद को कैसी भी असत्य और निराधार क्यों न सिद्ध होने वाली हों, किन्तु जब कोई नवयुवती अपनी किसी सहेली की सगाई का समाचार सुनती है तो अपने होने वाले पति को उस के पति से कहीं अधिक सुन्दर और अपनी भावी सुसराल को उस की सुसराल से कहीं अधिक सुसम्पन्न देखती है।

रानी की कल्पना-दृष्टि के सामने भी एक चित्र खिंच गया—डाक्टर अमृतराय का चित्र! खूबसूरत लम्बा कद, नीला सूट, पैरों में काले अमेरिकन बूट, सिर पर काली फेल्ट, कमीज के रंग की टाई, बाजू पर ओवरकोट, रौबीली चाल और मीठी आवाज! उन के साथ अपनी सगाई और शादी का उल्लास-जनक दृश्य उस की आँखों के सामने घूम गया और उस की नस-नस में एक अनिर्वचनीय उल्लास, एक मीठा मादक नशा भर गया।

आँधी की भाँति कमरे में प्रवेश करते हुए सावित्री ने कहा, "तुम यहाँ बैठी क्या कर रही हो, वहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है।"

रानी ने एक बार उस की ओर देखा और फिर अपने कमरे में निगाह घुमाकर, एक दबी हुई आह छोड़कर सावित्री के साथ चल पड़ी।

दोनों जल्दी-जल्दी लीला के कमरे में पहुँचीं। वहाँ कमरे का सब सामान एक ओर करके, दरी पर छः-सात लड़कियाँ बैठी थीं और सामने की तरफ मध्य में बैठी थी लीला—उल्लास की जीवित मूर्ति!

हर्ष से उस का चेहरा दमक रहा था। नीले आसमानी रंग की साड़ी और ब्लाउज़ में उस का यौवन खिला पड़ता था। यह साड़ी उस की ससुराल से आयी थी और सहेलियों के अनुरोध से तत्काल उस ने इसे पहना था। कानों में लम्बे-लम्बे काँटे लटक रहे थे और कलाई पर सुनहरा गजरा दमक रहा था।

अपने कमरे से लीला के कमरे तक आते-आते रानी ने अपने विषाद को भुलाकर चेहरे को प्रसन्न बना लिया था और उस की स्वाभाविक मुस्कान जो कभी-कभी कहीं जा छिपती थी, फिर वहाँ खेलने लगी थी।

कमरे में उन दोनों के प्रवेश करते ही लड़कियाँ उठ खड़ी हुईं। सावित्री ने ऊँचे स्वर में कहा, "यह रही लीला, भावी श्रीमती मनहर की प्राइवेट सेक्रेट्री, कुमारी राजरानी।"

इस पर एक क़हक़हा कमरे में गूँज उठा। रानी और लीला में इतनी मुहब्बत थी और दोनों इतना समय साथ बिताती थीं कि अन्य लड़कियों को उन के प्रेम पर ईर्षा हुआ करती थी। लीला रानी की सलाह के बिना कुछ भी न करती थी। इसलिए रानी कालेज में उस की प्राइवेट सेक्रेटरी के नाम से प्रसिद्ध थी।

रानी ने खड़े-ही-खड़े क्षण भर में चारों तरफ निगाह दौड़ायी —सामने खिड़की में स्टोव पर चाय का पानी गरम हो रहा था, मेज़ पर दो टी-सेट दो ट्रे में लगे रखे थे और चन्द तशतरियों में पेस्ट्री रखी थी। बोली, "यह गुप-चुप कैसे तय हो गया, हमें पता तक नहीं दिया और यहाँ सब तैयारी भी हो गयी।"

मिस भण्डारी ने मुँह बनाकर कहा, "पता दिया होता तो हो चुकती पार्टी, सेक्रेटरी महोदया कुछ करने ही कब देतीं?"

कमला बोली, "हमें पता भी तो अभी लगा। बस पार्टी का प्रस्ताव हुआ और सावित्री की कृपा से दो घंटों में सब प्रबन्ध भी हो गया। देर हो जाती तो पार्टी का क्या आनन्द आता। मज़ा तो जब है कि

इधर मँगनी हो उधर पार्टी !"

इस पर सब फिर खिलखिलाकर हँस पड़ीं ।

रानी लीला की बगल में जा बैठी और उस ने धीरे से लीला के कान में कहा, "मैं तुम्हें बधाई देती हूँ !"

लीला लज्जा से लाल होकर रह गयी ।

रेणुका बोली, "जितनी देर में चाय तैयार होती है, उमा ही कुछ सुनायँ ।"

सावित्री ने वहाँ मेज के पास ही टी-सेट पर झुके-झुके कहा, "हाँ भई गा दो न ।—

हठ छोड़ सकी चल संग मेरे, तोहे कान्ह आज बुलावत हैं ।"

उमा ने कहा, "आज तो लीला बहन ही से कुछ सुना जाय ।"

सावित्री ने कहा, "यह सब से पीछे सुनायँगी ।"

इधर एक तरफ लज्जा वर्मा और कुन्ती मलरा में फुसर-फुसर हो रही थी । उमा ने हारमोनियम अपनी तरफ़ खिसकाते हुए कहा, "यह आपस में गुप-चुप क्या बातें हो रही हैं ?"

लज्जा ने कहा, "कुन्ती ने एक कविता लिखी है ।"

"कविता !" सब एक बार ही चिल्ला उठीं ।

"हाँ ! बहन लीला की सगाई की खुशी में, आशु कवियत्री हैं ये भी ।"

उमा ने हारमोनियम परे खिसकाते हुए कहा, "वाह ! पहले कविता ही होनी चाहिए ।

"यह तो छिपी रुस्तम निकली !" सावित्री बोली ।

"नहीं, नहीं, मैंने कोई कविता नहीं लिखी ।" कुन्ती ने लजाते हुए कहा । "नहीं लिखी ?" लज्जा ने उस के ब्लाउज की जेब से कागज छीनते हुए सब के आगे उपस्थित कर दिया ।

कुन्ती उसे धकेलकर बोली, "हटो मैं सुनाती हूँ ।"

तब कुन्ती आयु में इन सब से छोटी और गम्भीर थी । यहाँ जितनी लड़कियाँ थीं, रानी और कुन्ती को छोड़कर सब शोख और

चंचल थीं। कमला चाय बनाने में सावित्री की सहायता कर रही थी, वहीं से खड़े-खड़े बोली—

"हाँ, हम भी सुन रही हैं, ज़रा ऊँची आवाज से। जब पुरुष विवाहों पर सेहरे पढ़ते हैं तो लड़कियाँ अपनी सहेलियों की शादी-मँगनी पर क्यों न कुछ पढ़ें। मैं लीला की शादी पर कुन्ती से सेहरा बनवाकर पढ़ूँगी।

तब कुन्ती ने अपनी कविता पढ़नी शुरू की। केवल तुक के साथ तुक मिलायी गयी थी, किन्तु समयानुकूल होने के कारण उस तुकबन्दी पर ही निरन्तर क़हक़हे लगते रहे। कुछ उम्र के कारण और कुछ अवसर की वजह से बात-बात पर लड़कियाँ खिलखिला रही थीं। कुन्ती बोली, अपनी पतली बारीक आवाज में :—

उड़ती चिड़िया उड़ती आई,
समाचार यह बढ़िया लाई।
है लीला की हुई सगाई,
सब मिल कहो बधाई बधाई॥

और सब ने उस के स्वर में अपना स्वर मिलाकर कहा—

'बधाई बधाई!'

और कमरा क़हक़हों से गूँज उठा, कुन्ती ने दूसरा चरण सुनाया :—

लीला चुप चुप जो रहती थी,
मन ही मन में सब सहती थी।
उसकी आशा अब बर आई,
सब मिल कहो बधाई, बधाई॥

कमला ने कहा, "कुछ इन के उन के बारे में भी लिखा है?"
कुन्ती ने कहा, "सुनिए!"

मनहर सुन्दर और सलोना,
लीला को है मिला खिलौना।

क्या अच्छी सी चीज़ है पाई,
सब मिल कहो बधाई बधाई ॥

और निरन्तर क़हक़हों और तालियों के शोर में कुन्ती ने अपनी यह आशु कविता समाप्त करते हुए काग़ज के पुर्जे को फिर मरोड़कर ब्लाउज की जेब में रख लिया।

इस के बाद उमा ने हारमोनियम छेड़ा।

सावित्री ने कहा, "चाय तैयार हो गयी है, पहले इस के साथ इन्साफ़ किया जाय, फिर गाना होगा।" इसके बाद कमला की सहायता से उस ने सब के आगे मिठाई, फल और नमकीन की तश्तरियाँ रख दीं।

कुन्ती ठहरी कवियत्री बोली, "साक़ी कौन बनेगा ?"

सावित्री ने कहा, "प्राइवेट सेक्रेटरी।"

इस पर फिर एक क़हक़हा गूँजा। रानी ने सावित्री की ओर उन आँखों से देखा जो पूछ रहीं थीं कि तुम बाज़ न आओगी क्या ? और फिर आगे बढ़कर उस ने चाय के प्याले तैयार किये।

सावित्री ने कहा, "टोस्ट का प्रस्ताव करके चाय के दो घूँट ही भर लिये जायँ, यहाँ तो यही मधु का प्याला है।"

रानी ने टोस्ट का प्रस्ताव किया :—

"श्रीयुत और (श्रीमती भावी) मनहर की स्वास्थ्य कामना के लिए !" और सब ने चाय के कप उठाये और ओठों से लगा लिये।

मिस भण्डारी ने कहा, "मुझे इस में आपत्ति है। यदि पुरुषों की पार्टी होती और इन के उन की, स्वास्थ्य कामना का प्रस्ताव होता और यह वाक्य कहा जाता, तो स्वाभाविक होता, जिस में पहले उन का और फिर इन का नाम आता। पर यहाँ तो वाक्य ऐसे होने चाहिएँ— 'कुमारी लीला और उनके भावी पति की सेहत के लिए !" यदि वह अपने दोस्तों में स्त्रियों के अस्तित्व को नहीं मानते तो हम भी ऐसा ही करेंगी।"

रानी ने कहा, "मैं अपने टोस्ट में यह आवश्यक संशोधन करती हूँ।"

इस पर कमरे में फिर मीठी मादक हँसी गूँज उठी और सब ने एक बार फिर प्याले उठाकर ओठों से लगाये।

चाय के बाद उमा ने एक रसीला गाना गाया और सब उपस्थित लड़कियों की ओर से सावित्री ने लीला को बधाई दी और पार्टी में आने वालियों को धन्यवाद दिया। उमा और कुन्ती बतरा को विशेष रूप से धन्यवाद दिया गया। जब सब चलने लगीं तो सावित्री ने हँसते-हँसते कहा, "सब प्रार्थना करो कि जल्द ही रानी से भी इसी तरह की पार्टी नसीब हो।"

रानी की आँखों में अपने भविष्य का अँधेरा छा गया और उस का हँसता हुआ चेहरा उतर गया। लड़कियाँ चली गयीं तो रानी आकर धम से दरी पर बैठ गयी। लीला ने देखा कि उस की आँखों में आँसू छलछला आये हैं।

उस के पास बैठते हुए लीला ने अनायास ही अपनी दोनों भुजाएँ उस के गले में डालकर पूछा, "रानी बहन!"

और आँसुओं की दो बूँदें रानी के गालों पर टपककर बहने लगीं।

—०—

२३

सुबह का वक्त था। बन्हे के हरे-हरे घने वृक्षों के ऊपर नीला निखरा आसमान अजीब बहार दे रहा था। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से घिरी हुई चोटियाँ मूक भाषा में जैसे नवजीवन का सन्देश सुना रही थीं। उस छोटे से बँगले के आगे एक छोटा-सा बगीचा था। एक दो जगह

जंगली फूल लगे हुए थे। एक तरफ़ सीमेंट के चबूतरे पर पानी का नल था। दायीं ओर वृक्ष की फुनगी पर बैठी हुई एक छोटी-सी चिड़िया अपने मीठे स्वर से गीतों का सागर बहा रही थी और लता मन्त्र-मुग्ध-सी उस का गाना सुनने में निमग्न थी। चिड़िया कितनी सुन्दर थी, कैसी रंग-बिरंगी और कैसी मीठी आवाज थी उस की! जब गाती थी तो उस के दिल को कुछ होने सा लगता था। रात जो स्थान भयानक और डरावना मालूम हो रहा था, इस समय एक मनोमुग्धकारी सुरम्यता में लिपटा जान पड़ रहा था।

डाक्टर अमृतराय नहाकर बाथ रूम से निकले। दरवाजा खुलने की आहट से चिड़िया उड़ गयी। कुछ क्षण बाद लता भी उठ खड़ी हुई। डाक्टर साहब कपड़े बदलकर बाल बना रहे थे कि लता उन के कमरे में दाखिल हुई। दोनों कुर्सियों पर बैठ गये। नौकर चाय लाया, डाक्टर साहब ने लता की ओर देखा। लता जैसे उन का अभिप्राय समझ गयी और उस ने भी नौकर से अपनी चाय वहीं लाने को कहा।

वहाँ आने के बाद लता अपने या बंसीलाल के कमरे में ही रहा करती थी। इस एक सप्ताह में डाक्टर साहब के कमरे में वह आज पहली बार आयी थी। वे उस के कमरे में जाते थे, पर वह उन से केवल मतलब की बात ही करती थी। उस ने कभी महसूस ही नहीं किया कि अमृतराय की ओर भी उस का कुछ कर्तव्य है। इस सूने में किसी से दो बातें करने को वे तरस भी सकते हैं। किन्तु रात पहली बार उसे अनुभव हुआ कि डाक्टर अमृतराय भी उस के साथ हैं, उन की ओर भी उस का कुछ कर्तव्य है। डाक्टर साहब का जर्द चेहरा, उन के जरा पिचके गाल और बिखरे बाल देखकर उसे मालूम हुआ कि बंसीलाल की सेवा में केवल वही जी-जान निछावर नहीं कर रही, एक दूसरा व्यक्ति भी अपना तन-मन लगा रहा है और फिर उस ने और भी अधिक महसूस किया कि अमृतराय की ओर भी उस का कुछ कर्तव्य है। जिस प्रकार भीड़ में दबा हुआ व्यक्ति नहीं देख पाता कि उसे

बचाने वाला कौन है और जब बाहर निकलता है तो अपने रक्षक को पहचानकर उस को धन्यवाद देता है, इसी तरह कठिन परिस्थितियों की भीड़ ने अमृतराय को पहचानने का अवसर लता को न दिया था। उस ने डाक्टर साहब के चेहरे की ओर देखा और दिल की गहराई से उठने वाली लम्बी साँस को दबा लिया।

चाय आ गयी थी। दोनों ने खामोशी से प्यालियाँ मुँह से लगा लीं। दोनों कोई बात शुरू करना चाहते थे, लेकिन दोनों उचित वाक्य ढूँढ रहे थे। विचार-मग्न लता ने एक घूँट पिया, चाय बहुत गरम थी। उस की ज़बान जल गयी, प्याला ओठों से अलग हट गया। अमृतराय प्याला ओठों से लगाये लता की ओर अनिमेष दृगों से देख रहे थे, उन्हें चाय पीने का ध्यान ही न रहा था।

प्यालों के ऊपर से दोनों की आँखें चार हुईं। लता ने प्याला रख दिया। वह मुसकरा उठी, "बहुत गरम है, मेरी तो ज़बान जल गयी।"

अमृतराय ने भी प्याला रख दिया और खामोशी से उस की ओर देखते रहे। उन से कोई उत्तर न बन आया। उस से क्या कहना है, यत्न करने पर भी वे स्थिर न कर सके। लता के सामने न जाने उन्हें क्या हो जाता था। चुप बैठे उस की ओर देखते रहे—लता कृशकाय तो हो गयी थी, स्वास्थ्य में जो सुन्दरता होती है, वह उस में न थी, पर दुर्बलता में उस का सौन्दर्य और भी निखर गया था। आँखें उस की ऐसे मालूम होती थीं जैसे अभी मद में भरकर बन्द हो जायँगी। उस के सुन्दर पीले से मुख को देखकर दिल में कुछ मीठा-सा दर्द होने लगता था।

लता ने फिर प्याला मुँह से लगा लिया। अमृतराय उसी तरह मौन, मंत्र-मुग्ध से बैठे रहे और देखते रहे कि लता ने एक बार प्याला मुँह से लगाकर फिर नहीं हटाया। उस की आँखें तेज़ चाय के मटमैले-से रंग में गड़ी रहीं, ओठ चुसकी लगाते रहे, किन्तु मस्तक न जाने किस उलझन को सुलझाने में व्यस्त रहा। आखिर चाय के प्याले को

खाली करके लता ने एक लम्बी साँस ली और उसे तश्तरी में रखकर उठी। उस ने रूमाल से मस्तक को पोंछा। यह देखकर डाक्टर अमृतराय ने भी प्याला उठा लिया। चाय ठंडी हो गयी थी, इसलिए उसे वे एक ही घूँट में पी गये।

लता कमरे में टहलने लगी और फिर दीवार पर लगे हुए एक कैलण्डर के पास जा खड़ी हुई। एक बार मेक्लोडगंज, कुछ चीजें खरीदने डाक्टर साहब गये थे। वहीं से वे यह कैलण्डर भी ले आये थे। कैलेण्डर में जो चित्र था, उस में दो-तीन लड़के 'शतरंज' खेल रहे थे। लता खड़ी होकर देखने लगी। डाक्टर साहब भी उसी के पास आकर खड़े हो गये, अचानक लता ने उन की ओर मुड़कर कहा, "आप को शतरंज का शौक़ है, डाक्टर साहब?"

डाक्टर साहब की आँखें किसी भावी आशा से चमक उठीं, कहने लगे, "इंगलैण्ड जाने के पहले तो खेला करता था।"

लता ने कहा, "मैं भी कुछ थोड़ा बहुत खेल लेती हूँ।"

डाक्टर साहब बोले, "यहाँ कोई 'इनडोर' खेल है ही नहीं, नहीं तो कुछ दिलचस्पी ही रहती है।"

लता ने एक दबी हुई साँस छोड़कर कहा, "यह जगह इतनी सूनी है और बरसात आरम्भ हो गयी है।"

इसी समय बंसीलाल के कुछ स्पष्ट शब्द सुनायी दिये, उसे शायद किसी चीज़ की आवश्यकता थी, शायद लिहाफ़ उस पर से खिसक गया था, लता भाग गयी। डाक्टर साहब ने बाहर नज़र दौड़ायी। घाटियों से बादल ऊपर उठ रहे थे जैसे कोई दैवी शक्ति नीचे से तैयार करके उसे उड़ने के लिए छोड़ रही हो। देखते-देखते वृक्षों के घने पत्तों को, वाटिका के पौधों को, पानी के नल को बादलों ने अपने अंक में ले लिया। कमरे के अन्दर बादल घुस आये। डाक्टर साहब ने वाटरप्रूफ कोट पहना और छाता उठाकर बाहर निकल गये।

धीरे-धीरे बादल ऊपर उठे और ज़ोर की वर्षा होने लगी, डाक्टर अमृतराय नीचे को ध्यान किये चुपचाप सावधानी से चलते गये। छावनी के बाज़ार में सेठ रामसिंह की दुकान पर पहुँचकर उन्होंने पूछा, "आप के यहाँ शतरंज होगी ?"

"शतरंज तो नहीं है।"

डाक्टर साहब चुप हो गये, फिर बोले, "मेक्लोडगंज में मिल सकेगी ?"

"कह नहीं सकता, शायद नौरोजी की दुकान पर मिल जाय !"

"और कोई खेल होगा ?"

"यानी.........?"

"कैरम अथवा बैगाटिल ?"

"कैरम होगा।"

"और बैगाटिल ?"

"होगा..........नहीं !"

"अच्छा मैं शतरंज के सम्बन्ध में पूछ आऊँ !"

यह कहकर डाक्टर साहब ने छाता उठाया और मेक्लोडगंज की ओर चल पड़े। मेक्लोडगंज छावनी से कोई दो-तीन मील के फ़ासले पर है। वर्षा काफ़ी तेज़ होने लगी थी, लेकिन डाक्टर साहब ने उस की परवाह नहीं की। अपने ध्यान में मग्न तेज़ चलते हुए मेक्लोडगंज में नौरोजी की दुकान पर पहुँचे और पूछा कि आपके यहाँ शतरंज है।

मालूम हुआ कि है तो सही, पर कहीं पड़ी होगी, छान-बीन के बाद पता लग सकेगा।

डाक्टर साहब ने विनीत स्वर में कहा, "इस वक्त किसी तरह नहीं मिल सकती ?"

"इस वक्त मिलना सम्भव नहीं," दुकान के मालिक ने कहा, "यदि आप कह जायँ तो हम परसों तक देख छोड़ेंगे, किन्तु केवल मोहरे हैं, बिसात नहीं !"

डाक्टर साहब विषाद से हँसे और दुकान के बाहर निकल आये। सोचने लगे कि अब क्या करें ? शतरंज तो आज ही चाहिए, कौन जाने दो दिन बाद लता की तबीयत पर फिर वही पुरानी उदासीनता छा जाय। तो क्यों न धर्मशाला में जाकर देख आऊँ। मूसलाधार वर्षा हो रही थी और फिर दूरी का खयाल भी आया, वापस जाने को जी चाहा, वे एक क्षण के लिए वापस छावनी की ओर मुड़े भी, सोचा वहाँ से कैरम ही ले जायँगे, लेकिन फिर खयाल आया कि लता ने तो उन्हें शतरंज के लिए कहा था, और फिर वर्षा में कैरम बोर्ड के खराब हो जाने का भी डर है, शतरंज का क्या है, ओवर कोट में छिपाकर ले जा सकते हैं, तो फिर क्यों न एक बार शहर जाकर देख लिया जाय। इस खयाल के आते ही वह फिर पीछे की ओर लौट पड़े।

मेक्लोडगंज से धर्मशाला को दो मार्ग जाते हैं, एक मोटर का, दूसरा पैदल। मोटर का मार्ग ज़रा लम्बा है इसलिए डाक्टर साहब छोटे मार्ग से हो लिये। इस मार्ग से कोतवाली तक ढलवान-ही-ढलवान चली गयी है। डाक्टर साहब जल्दी-जल्दी चलने लगे, लेकिन पथरीला रास्ता था, एक बार पाँव जो फिसला तो बुरी तरह गिरे, रीढ़ की हड्डी पर गहरी चोट आयी। भला हुआ कि बहुत नीचे तक लुढ़कते नहीं चले गये, नहीं तो हड्डी-हड्डी चूर हो जाती। उठे और सम्हल-सम्हलकर चलने लगे। एक घंटे का मार्ग डेढ़ घंटे में तै किया। कोतवाली बाज़ार में पहुँचकर सब दुकानदारों से पूछा, पर शतरंज न मिली, एक दुकानदार ने कहा, "शायद बिट्टू बाजार में मिल जाय।" डाक्टर साहब कुछ थकावट सी महसूस कर रहे थे और दूसरे कमर में दर्द भी कुछ ज़्यादा होने लगा था, लेकिन जब इतनी दूर आये तो एक मील और सही। बिट्टू बाजार की ओर चल पड़े। वहाँ भी निराशा ने पीछा न छोड़ा। हरेक दुकानदार से पूछा, पर किसी से भी शतरंज न मिली। बिट्टू बाजार के अन्त में एक दुकानदार ने कहा कि ज़रा ठहरिए, देखता हूँ, और वह दुकान के अन्दर चला गया।

आशा और निराशा के भँवर में डूबते-उतराते डाक्टर साहब खड़े रहे। कुछ देर बाद बिसाती अन्दर से एक पुरानी बिसात निकाल लाया। झाड़ा तो मालूम हुआ कि कई एक ख़ाने चूहों के तेज दाँतों की भेंट हो गये हैं। डाक्टर साहब जीर्ण-शीर्ण बिसात की ओर देखकर हँसे और निराश होकर तेजी से चले आये। लेकिन बिट्टू बाजार के ख़त्म होने तक उन की चाल धीमी पड़ गयी। अब तक वे आशा के जिन पंखों पर उड़े आ रहे थे, वे पंख ही टूट गये थे।

ऊपर आकाश में बादल घिर आये थे और पानी जोर से बरस रहा था। हवा वृक्षों को जैसे उड़ाये लिये जा रही थी। पहाड़ी नालों में पानी जैसे अपनी जवानी के जोश में उछल-उछलकर बह रहा था। सामने वृक्ष की घनी शाखा पर एक कौवा सिकुड़ा हुआ बैठा था। डाक्टर साहब ने एक थकी हुई निगाह दूर तक डाली और सिर झुकाये धीरे-धीरे चल पड़े।

उन की कमर में दर्द और भी ज़ोर से हो उठा, मोटरों के अड्डे पर आकर उन्होंने पूछा—कोई मोटर कैण्ट जाने वाली है या नहीं? मालूम हुआ अभी चार घंटे तक कोई मोटर न जायगी। डाक्टर साहब फिर धीरे-धीरे चल पड़े। डाकखाने के पास जाकर वे कुछ देर के लिए बरामदे में जा खड़े हुए। जब वर्षा कुछ थमी तो वे फिर चलने लगे। कोतवाली बाज़ार में उन्होंने एक डाक्टर से टिंचर लगवाया और बड़ी सड़क से छावनी को हो लिये। जिस मार्ग से आये थे, उस सीधे ऊँचे मार्ग पर चढ़ना अब उन्हें असम्भव मालूम होता था।

कोई ढाई घंटे में और कई जगह सुसताने के बाद वे लम्बे मार्ग ही से छावनी पहुँचे। सेठ रामसिंह की दूकान पर जाकर हताश से हो कुर्सी पर बैठ गये। वे अपने एक दो मित्रों के साथ शतरंज खेल रहे थे। खेलना छोड़कर पूछने लगे, "कहिए मिली?"

"ख़ाक मिली!" डाक्टर साहब ने कहा, "उल्टे कमर में चोट आ गयी।"

सहानुभूति के साथ रामसिंह ने कहा, "चोट आ गयी—कैसे
"जल्दी में पाँव फिसल गया।"

"ओ हो!" सभ्य तथा गम्भीर पहाड़ी दुकानदार ने हाथ मल
हुए कहा, "बहुत चोट तो नहीं आयी?"

डाक्टर साहब जमीन पर बिछी हुई शतरंज को देख रहे थे
बोले, "आप मुझे तीन-चार रोज के लिए यह शतरंज नहीं दे सकते?"

एक क्षण के लिए रामसिंह सोचने लगे।

"वे जरा बीमार हैं, कुछ दिन बाद आप को मिल जायगी!"

"नहीं नहीं," रामसिंह ने कहा, "कोई बात नहीं, आप शौक से ले जाइए! दो दिन रखिए दस दिन रखिए!" और यह कहते हुए उन्होंने शतरंज लपेटकर डाक्टर साहब को दे दी।

डाक्टर अमृतराय को कमर का दर्द भूल गया। वे उन्हें धन्यवाद देना भी भूल गये। केवल नमस्कार करके और कैरम और बैगाटिल भिजवाने के लिए कहकर जल्दी-जल्दी बँगले की ओर चढ़ाई चढ़ने लगे। उस वक्त जैसे उन के पाँवों में पंख लग गये थे। उड़ते हुए वे जा रहे थे।

लता कमरे में खड़ी उन की प्रतीक्षा कर रही थी। उन्हें आते देख-कर शिकायत के स्वर में बोली, "आप किधर चले गये थे, इस वर्षा और आँधी में मैं कितनी देर से इन्तजार कर रही हूँ।"

डाक्टर साहब ने शतरंज को मेज पर रखते हुए कहा, "सारा शहर घूम कर शतरंज लाया हूँ।" कोट उतारा और उसी तरह चारपाई पर लेट गये।

तभी उन की कमर में फिर असह्य पीड़ा हो उठी।

२४

रामनारायण ने अवरुद्ध कंठ से कहा, "मालिक इस तरह कैसे काम चलेगा?"

मलिक साहब ने उत्तर नहीं दिया, केवल चादर ओढ़कर लेट रहे। बूढ़ा नौकर कुछ समय तक चुपचाप खड़ा उस दूध के गिलास को देखता रहा, जिस में से मलिक साहब ने अभी दो घूँट पिये थे, जैसे वह दूध के इतनी अधिक मात्रा में बच रहने का इस श्वेत चादर के नीचे लेटे हुए व्यक्ति के हृदय से सम्बन्ध जोड़ रहा हो।

"मालिक एक दो घूँट तो पीजिए, सुबह भी आप ने कुछ नहीं लिया था।" और जैसे उत्तर की प्रतीक्षा में वह कुछ क्षण खड़ा रहा, किन्तु जब मलिक साहब नहीं बोले और करवट बदलकर चुप हो रहे तब एक लम्बी साँस छोड़कर रामनारायण ने बचे हुए दूध का गिलास उठाया और चल पड़ा।

"नारायण बाबा!"

वृद्ध नौकर मुड़कर वापस आ गया, लेकिन मलिक साहब कुछ न बोले। रामनारायण कुछ सुनने की प्रतीक्षा में खड़ा रहा, पर जब मलिक साहब ने कुछ न कहा तब वह बेचारा चिन्तित और उदास कमरे से बाहर निकल गया।

जब वह रसोई घर में पहुँचा तो बाहर दरवाजे के पास उस की पुस्सी बैठी 'मियाऊँ मियाऊँ' कर रही थी। कहीं एक दिन कुत्तों के चगुल में फँसकर, मृत प्रायः होने वाले एक बिल्ली के बच्चे को बूढ़ा रामनारायण उठा लाया था। उस की सेवा-शुश्रूषा करके उस ने उसे मौत के मुँह में जाने से तो बचा लिया था, खिला-पिलाकर हृष्ट-पुष्ट भी कर दिया था, किन्तु उस की देखने और सुनने की शक्तियाँ प्रायः जाती रही थीं। पशुओं के सहज-ज्ञान द्वारा जब भूख सताती, तो फर्श सूँघती-सूँघती वह रसोई-घर के दरवाजे तक आ

जाती और एक-दो बार 'मियाऊँ' कर देती। सन्तति-विहीन रामनारायण उसे बेटी की तरह गोद में ले लेता, प्याला लेकर दूध पिलाता, पुचकारता, प्यार करता और फिर छोड़ देता—'जा अब मुझे काम करने दे।' और एक-दो बार 'म्याऊँ-म्याऊँ' करके पुस्सी चली जाती।

आज गिलास का बचा हुआ दूध प्याले में डालकर रामनारायण ने उसे पुस्सी के आगे रख दिया। न गोद में उठाया, न पुचकारा, बल्कि चुपचाप रसोई में जाकर बर्तन साफ़ करने बैठ गया।

एक-दो घूँट पीकर पुस्सी ने सिर उठाकर शून्य में देखते हुए पुकारा भी—'म्याऊँ-म्याऊँ!' पर रामनारायण नहीं बोला। वह एक ही बर्तन को न जाने कब तक मलता रहा, जैसे उसी के मलने में उस के जीवन-मरण का प्रश्न निहित हो।

जब से लता गयी थी, मलिक साहब के जीवन में एक विचित्र प्रकार की अव्यवस्था आ गयी थी। एक बार पहले भी ठीक मार्ग पर चलते-चलते उन के जीवन की गाड़ी पथ से हटकर ऊँचे-नीचे, ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर हो चली थी, पर शीघ्र ही सम्हल कर वे उसे व्यवस्था और पाबन्दी की लीक पर ले आये थे। मन के अवसाद को उन्होंने बरबस दबा दिया था। शरीर पर अनायास ही छा जाने वाले आलस्य का उन्होंने दृढ़ता से मुकाबिला किया था।

यह तब हुआ था, जब उन की पत्नी सरल, भोली-भाली बालिका लता को छोड़कर परलोक सिधार गयी थी और लड़की के पालन-पोषण का भार उन पर आ पड़ा था।

अपने सब दुःखों को उन्होंने अपनी बच्ची की देख-भाल करने में भुला दिया था और फिर वे स्वयं ही, समय पर खाने, समय पर दफ्तर जाने, समय पर सैर करने और समय पर सोने के आदी हो गये थे। पहले ऐसा करने के लिए उन्हें जो प्रेम भरी दो-चार मीठी घुड़कियाँ, दो-चार उलाहने सुनने की जरूरत पड़ती थी, वह न रह गयी थी।

यदि वे ही समय की पाबन्दी का ख़याल न रखेंगे तो लता के जीवन में भी अव्यवस्था आ जायगी, इसी विचार से वक्त की पाबन्दी रख के उन्होंने लता में भी प्रत्येक काम समय पर करने की आदत डाली थी।

किन्तु लता के जाने के बाद इतने दिनों से दबी हुई उन की अव्यवस्था जैसे कहीं से फूट निकली, इतने दिनों से दबा हुआ उन का दुःख जैसे दुगने वेग से बाहर निकल आया और इस बड़े मकान में अपने चारों तरफ वे एक असीम सूनापन महसूस करने लगे। समय पर उठना-बैठना, खाना-पीना, सब छूट गया। बहुत रात तक वे कुछ-न-कुछ पढ़ते रहते और सुबह उठते तो प्रायः स्नान करने का भी समय न रहता और प्रायः कई-कई दिन हजामत भी वे-बनी ही रह जाती। खाने-पीने का भी कुछ ठीक न रहा था। स्वास्थ्य दिनों दिन गिरता जा रहा था। वेचारा रामनारायण लाख प्रयत्न करता, चाहता—सब कुछ पहले की तरह होने लगे। रात को जब वे कोई-न-कोई पुस्तक लेकर बैठ जाते और फिर सोने के समय की परवाह न करके बैठे ही रह जाते तब वह कई बार धीरे-धीरे कमरे में जाकर कहता 'मालिक, सो जाओ अब!' पर मलिक साहब न सुनते।

वास्तव में उन्हें बिस्तर पर जाते डर लगा करता था। अतीत के सुखद चित्र उन के मस्तिष्क में खिंच आते थे और उन की नींद न जाने कहाँ उड़ जाती थी—एक सुन्दर युवती अपने सुडौल शरीर, मांसल भुजाओं, मुसकराते ओठों, मद बरसाती आँखों को लेकर कहीं कविता के, गीतों के और जवानी के संसार से आ जाती थी और वे एक दीर्घ निःश्वास लेकर जैसे मस्तिष्क से उस चित्र को हटाकर करवट बदल लेते। आँखों को बन्द करके चित्त को एकाग्र करने के लिए मस्तक पर ध्यान लगाते। कुछ क्षण तक ऐसा लगता जैसे उन का मन एकाग्र हो जायगा, आँखें भारी हो जायँगी और उन्हें नींद आ जायगी, पर शनैः शनैः फिर वहाँ चित्र बनना शुरू हो जाता—अब की बार कोई

२७ या २८ वर्ष की एक स्त्री आती, रंग-रूप वही, आँखों में मुसकान भी वही, पर गम्भीरता अधिक, चाल में स्थिरता, अब वह चंचल लड़की स्वयं एक नन्हीं-सी बच्ची की माँ जो थी। और वे फिर इस चित्र को हटाकर लम्बी साँस खींचकर मन को एकाग्र करने का प्रयास करते। अतीत की कई घटनाएँ, सुखद उल्लासजनक, स्वर्ग से आने वाले स्वप्नों की भाँति मादक, उन के मस्तिष्क में घूम जातीं और टीस छोड़ जातीं। हार कर वे उठते, कोई पुस्तक ले बैठते, पढ़ते और तब तक पढ़ते रहते जब तक कि शरीर शिथिल न हो जाता और नींद बरबस अपनी मादक साँस की हवा से उन्हें न सुला देती।

इस तरह वे अब नियत समय पर न सोते थे और यदि दुर्भाग्यवश कभी उन की पत्नी की मृत्यु का चित्र उन की आँखों के सामने आ जाता, मरते समय की उन की अभिलाषा उन के कानों में गूँज जाती तो फिर वे सारी रात न सो पाते।

लता की उपस्थिति में कभी उन्होंने ऐसा सूनापन, ऐसी उद्विग्नता ऐसी बेचैनी महसूस ही न की थी। उस की देखभाल करने, उस से बातचीत करने, उस की शिक्षा, उस के स्वास्थ्य तथा उस की अन्य बातों का ध्यान रखने में उन्होंने अपने जीवन को कभी इतना नीरस अनुभव न किया था। अब उस के जाने के बाद न जाने क्यों उन की सोयी हुई स्मृतियाँ जाग उठी थीं। न जाने क्यों असीम सूनेपन की एक असह्य-वेदना ने उन्हें घेर लिया था। क्लब आदि वे कभी न गए थे, व्यसन उन्हें कोई था नहीं, घर के अतिरिक्त वे पहले भी कहीं नहीं जाते थे और अब तो जैसे घर उन का बन्दीगृह ही बन गया था। प्रायः किसी से बातें करने के लिए उन का दिल तड़प उठता था। कई बार उन्होंने लता को पत्र लिखना चाहा, पर उस का ध्यान आते ही, उस के व्यवहार से उन के हृदय को जो चोट पहुँची थी, वह जैसे समस्त पीड़ा के साथ जाग उठती और वे पत्र लिखने का विचार छोड़ देते तब वे चुपचाप अपने बिस्तर पर पड़ जाते, न होता तो अपने बूढ़े नौकर

को बुला लेते, उस से उस के अतीत की बातें पूछते और कभी जब प्रसंग छिड़ जाता तो अपने बीते दिनों की बातें कहकर दिल का बोझ हल्का करते। बातें वही पुरानी थीं, कितनी ही बार कही जा चुकी थीं, पर जी न भरता था। रामनारायण इन के उत्तर में आर्द्र कंठ से निकले हुए कुछ वाक्यों में कहता—"रानी माँ की बात करते हो बाबू जी, वे तो देवी थीं, दया, धर्म और दानशीलता की मूर्ति!" मलिक साहब का कंठ भी भर आता, पर जब कभी लता की बात छिड़ जाती और रामनारायण उसे वापस लाने के लिए लिखने को कहता तो मलिक साहब कठोर हो जाते।

उस बड़े सूने कमरे में, पंखे की घरघर के नीचे, गर्मियों की थका देने वाली दुपहरी में, मलिक साहब अपने बिस्तर पर लेटे चुपचाप छत की ओर अनिमेष दृगों से देख रहे थे। आज वे कई दिनों से बीमार थे, जीवन की सुखद बहारें, न जाने कब की कभी समाप्त न होने वाले पतझड़ में परिणत हो चुकी थीं। धरती सूनी थी, आकाश सूना था, हाँ, कभी स्मृतियों के बादल आते थे, पर वे उड़ जाते थे—कहीं मौत की गहरी ठंढी घाटियों में!

बाहर मध्याह्न के सूरज की प्रखर धूप थी। मुहल्ले के बरगद पर एक चील चिल्ला रही थी। मलिक साहब का दम जैसे घुटा जा रहा था। आज तीन दिन से उन्होंने दूध के सिवा कुछ न लिया था। उस एकान्त ने, जो इन दिनों उन की नस-नस में समाया जाता था, आज मानो उन पर पूर्ण अधिकार जमा लिया था!

रामनारायण दूध का गिलास लेकर चला गया। वे उस से कुछ कहना चाहते थे, पर वे कह न पाये थे। उन्होंने मुँह पर चादर ओढ़ ली, पर उन की श्रवण शक्ति जैसे रामनारायण के पीछे ही चली गयी थी। बहुत देर तक वे रसोई घर में बर्तनों की झंकार सुनते रहे और कल्पना भी करते रहे—अब रामनाराण गिलास साफ कर रहा है, अब कटोरियाँ, अब थालियाँ धो रहा है, अब चुन रहा है—और फिर आवाज़

बन्द हो गयी—शायद वह फर्श धो रहा था या खाना खा रहा था अथवा हुक्के के एक-दो कश लगाकर थके हुए शरीर को आराम पहुँचाने के लिए चला गया था।

एक लम्बी साँस लेकर मलिक साहब ने करवट बदल ली। इस बूढ़े नौकर तथा उन के सितारे न जाने किन अज्ञात दिशाओं से आकर इकट्ठे हो गये थे, आर्थिक स्थिति को छोड़कर दोनों का भाग्य एक जैसा ही था—पत्नी न उस के थी, न इन के; सगे-सम्बन्धी न उस के थे, न इन के; हाँ, इन के एक लड़की थी और बूढ़ा रामनारायण भी उसे अपनी ही लड़की समझता था। दोनों का जीवन उस के बिना एक विराट सूनापन था। अब, जब लता इतने दिनों से बाहर थी, वे जानते थे रामनारायण कितना बेचैन रहता है, कितनी बार वह कह चुका है—'लता रानी को लिखिए अब आ जायँ।'

लता—मूर्ख और उद्दंड लड़की! कितने प्यार से उन्होंने उसे पाला था। कितने यत्न से पढ़ाया था, क्या इसीलिए? इसी दिन के लिए? मलिक साहब का दम और भी अधिक घुटने लगा। उन के हृदय में बीसियों बवंडर उठने लगे। विवश होकर उन्होंने रामनारायण को पुकारा। बूढ़ा नौकर चुपचाप आकर सिरहाने की ओर फर्श पर बैठ गया, मलिक साहब कुछ क्षण तक चुप रहे, फिर रुद्ध कंठ से उन्होंने कहा, "बाबा, यदि लता की अनुपस्थिति में ही मेरी जीवन लीला समाप्त हो जाय......।"

"राम, राम, कैसी बातें करते हैं मालिक?"—सिहरकर रामनारायण उठ खड़ा हुआ, बोला, "मैं अभी डाक्टर को बुला लाता हूँ।"

व्यंग्यभरी एक मुसकान मलिक साहब के ओठों पर फैल गयी।

डाक्टर आया, औषधि पिलाकर सान्त्वना भरे स्वर में, 'शीघ्र ही स्वस्थ हो जायँगे', कहकर चला गया।

मलिक साहब चुप लेटे रहे, पर वृद्ध नौकर ने महसूस किया जैसे इस मौन में सहस्रों क्रन्दन छिपे हैं।

उस समय, जब दिन का थका सिपाही अस्ताचल की गोद में जा सोया था और अज्ञात गुफाओं में छिपा अँधेरा अपने दल-बल के साथ बढ़ा चढ़ा आ रहा था और गलियों तथा बाजारों की नन्हीं-नन्हीं रोशनियाँ उसे दूर रखने का भरसक प्रयत्न कर रही थीं, बूढ़ा रामनारायण राजरानी के होस्टल की ओर भागा जा रहा था, इस अंधकार में उसे इसी ओर से आशा की किरण दिखायी दे रही थी।

—o—

२५

लता सब कुछ भूल गयी। खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना यहाँ तक कि बंसीलाल की सेवा-शुश्रूषा—सब कुछ भूल गयी और दिन-रात डाक्टर अमृतराय की तीमारदारी में निमग्न रहने लगी।

डाक्टर अमृतराय एक बार बिस्तर पर जो पड़े तो शीघ्र न उठ सके। शतरंज लेने के लिए कोतवाली बाजार को जाते समय फिसल कर पत्थरों पर गिरने से उन की कमर का गोश्त फट गया था और सूजन हो जाने से असह्य पीड़ा हो रही थी। साथ ही सारा दिन वर्षा में घूमते रहने के कारण उन्हें ज्वर हो आया था, जिसने बाद में इनफ्लुएंजा का रूप धारण कर लिया था।

बाहर घने बादल छाये हुए थे। वर्षा कभी होने लगती थी और कभी बन्द हो जाती थी। कमरे में ख़ासा अँधेरा था। डाक्टर अमृतराय चारपाई पर पड़े थे। उस समय उन्हें बिलकुल होश न था। ज़ोर का बुखार चढ़ा हुआ था। सीने पर एण्टीफ्लोजिस्टीन की पट्टियाँ बँधी थीं, उन पर कमीज, फिर पुलओवर, फिर कम्बल। सिर में पीड़ा होने के कारण रूमाल बँधा हुआ था। चारपाई के साथ छोटी-सी मेज पर

दवाइयाँ रक्खी थीं और कमरा, जो कुछ दिन पहले धनी माँ-बाप के एक-मात्र पुत्र की भाँति साफ़ और सुथरा था, इस समय अनाथ बालक-सा बना हुआ था। मेज़ के नीचे किसी समाचार पत्र के कुछ पन्ने बिखरे हुए पड़े थे। चारपाई के पास फ़र्श पर पानी का एक गिलास और कांसे की एक-दो कटोरियाँ पड़ी थीं। सामने ट्रंक पर कुछ कपड़ों का ढेर लगा था। पास ही कोने में वही शतरंज की पुरानी बिसात उल्टी पड़ी थी, जिस के कारण यह उत्पात उठ खड़ा हुआ था। मुहरे इधर-उधर बिखर गये थे। एक हाथी ट्रंक के नीचे था और एक घोड़ा कुर्सी तक पहुँच गया था।

लता डाक्टर साहब के सिरहाने की ओर बैठी थी। अभी-अभी उस ने टेम्परेचर लिया था। १०४ दर्जे बुखार था। वह घबरा गयी थी। नौकर से डाक्टर को बुला लाने के लिए कहकर वह पुनः अपनी जगह पर आ बैठी थी। एक बार उस ने धीरे से डाक्टर साहब को पुकारा—"डाक्टर साहब, डाक्टर साहब!"

डाक्टर साहब को कुछ होश नहीं था, उन्होंने करवट लेने का प्रयत्न किया, पर पीड़ा के कारण हिल न सके। लता ने पुकारा, "डाक्टर साहब!"

डाक्टर अमृतराय ने आँखें खोलीं। उन में कुछ ऐसी बात थी कि कमरे के उस अँधेरे में उन्हें देखकर लता डर गयी। डाक्टर साहब ने आँखें फिर बन्द कर लीं। साहस बटोरकर लता ने पूछा, "जी कैसा है?" पर आवाज उस के गले से ठीक तरह न निकली।

अमृतराय ने उसी तरह आँखें बन्द किये हुए कुछ कहा। लत नहीं समझी। उस का दिल धड़कने लगा।

डाक्टर साहब बेहोशी में बड़बड़ाने लगे—"क्या कहा, शतरंज नहीं मिलती? मैक्लोडगंज से मिल सकेगी, बिट्टू बाजार से" और फिर चुप हो गये। फिर बोले—"वाह जाऊँगा क्यों नहीं, वर्षा है, हुआ करे? आँधी आये तो भी जाऊँगा, ओले पड़ें तो भी जाऊँगा!"

लता का दिल पिघलकर बह पड़ने को होने लगा। डाक्टर साहब फिर बोले, "ओह! मैं बहुत आभारी हूँ। इस शतरंज के लिए सब कुछ दे सकता हूँ। दर्द है, यहीं लेट रहूँ। नहीं मैं जाऊँगा, मुझे ज़रा भी दर्द नहीं है।"

लता की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने आगे झुककर कहा, "डाक्टर साहब, डाक्टर साहब, मुझे नहीं पहचानते!"

इस बार डाक्टर ने फिर आँखें खोलीं, लता की ओर देखा, उसे पहचानने की कोशिश की, बोले, "तुम राजरानी हो, तुम ही मुझ से सहानुभूति रखती हो, लता तो मेरी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती।"

इस के बाद उन्होंने आँखें बन्द कर लीं।

लता वहाँ न बैठ सकी, कोने में जाकर सिसकने लगी। डाक्टर साहब ज्वर की तीव्रता से बेसुध पड़े थे, नौकर डाक्टर को बुलाने गया था। दूसरे कमरे में बंसीलाल के कराहने की आवाज आयी और शायद उसने पुकारा भी, "लदा, लदा!"

लता ने आवाज सुनी, लेकिन गयी नहीं। रूमाल से आँसू पोंछकर धीरे-धीरे कमरे में घूमने लगी।

आज सात दिन से उस ने तनिक भी आराम न लिया था, दिन में तीन-चार बार सूजन को सेंकती, समय पर दवा पिलाती, साबूदाना इत्यादि तैयार करती और रात को कुर्सी पर बैठे-बैठे झपकी ले लेती। ये बातें वह नौकर पर न छोड़ती थी। बाज़ार से भी कई चीजें लता को स्वयं ही लानी पड़ती थीं। मकान बाजार से बहुत दूर था, दो-दो तीन-तीन फर्लाङ्ग इधर-उधर कोई मकान न था। सुबह इन कोठियों का चौकीदार आता। सब्जी अथवा और जरूरत की चीजें वह ला देता। यदि कोई आवश्यक चीज़ लानी होती तो नौकर को भेजा जाता, लेकिन कई ऐसी चीजें थीं जो नौकर भी न ला सकता था, उन्हें लेने के लिए लता स्वयं जाती।

इन दिनों मेक्लोडगंज और उस के इर्द-गिर्द दिन-रात वर्षा होती। नीचे की घाटियों से बादल उठते, वृक्षों, मकानों और पहाड़ों को ढँक लेते और दिल का भार धरती से हटाकर हल्के होकर ऊपर उड़ जाते। लता हवा न देखती, पानी न देखती, बाज़ार चली जाती।

कभी इसी तरह पड़े-पड़े उस की आँखें झपक जातीं, लेकिन जल्दी वह जाग उठती। निरन्तर परिश्रम से वह मात्र अस्थिपिंजर रह गयी थी। कालेज के ज़माने की लता और इस लता में कितना अंतर था! कहाँ वह यौवन के मद में चूर, सुन्दर भरे अंगों, मांसल भुजाओं वाली, सुषमा से लोहा लेने वाली तरुणी, कहाँ यह कृशकाय युवती! अब कोई उसे देखता तो पहचान भी न पाता।

कमरे में अँधेरा और गहरा हो चुका था। बादलों की सेना कमरे में घुसने लगी। लता ने किवाड़ बन्द कर दिये। लैम्प जलाया और खूँटी से टाँग दिया, फिर अमृतराय की चारपाई के पास आयी। वे अभी बेहोश पड़े थे। मस्तक को हाथ लगाया—उसी तरह जल रहा था। लता के हाथ के स्पर्श से डाक्टर साहब सिहर उठे। लता ने अपना हाथ हटा लिया। उसे महसूस हुआ, जैसे अब भी वह जल रहा हो।

लता का दम घुटने-सा लगा। नौकर अभी तक वापस न आया था। वह चारपाई से हटकर दरवाजे तक आयी। उसे ज़रा-सा खोला, बादल ऊपर उठ गये थे, वर्षा भी थम गयी थी, पर कभी-कभी शाखाओं के हिलने से नीचे धरती पर पड़े सूखे पत्तों पर बड़ी-बड़ी बूँदों के गिरने से टप-टप की आवाज आ जाती थी। लता ने दरवाजा खोला और बाहर बरामदे में टहलने लगी। कितनी ही देर तक वह अपने विचारों में मग्न चुपचाप टहलती रही। डाक्टर अभी न आया था। वह बरामदे से उतरकर उसी अन्यमनस्कता से फूलों की रविशों पर घूमने लगी। एक-दो बार उस ने नीचे से आने वाले मार्ग की ओर देखा भी, पर मनुष्य तो क्या, किसी पक्षी तक का चिन्ह न दिखायी देता था। उसे कुछ ठंढक सी महसूस होने लगी। वह कमरे में वापस चली

गयी और डाक्टर साहब की चारपाई के पास पड़ी हुई आराम कुर्सी पर लेट गयी, कम्बल उस ने कन्धे तक ओढ़ लिया। दूसरे ही क्षण उस की थकी हुई आँखें बन्द हो गयीं और उसे झपकी-सी आ गयी।

किसी के पाँवों की चाप से उस की आँख खुली। देखा, डाक्टर साहब कम्पाउंडर के साथ आ गये हैं और खूँटी पर अपना वाटरप्रूफ कोट टाँग रहे हैं और पानी के निचुड़ने से एक पतली-सी लकीर साँप की तरह बल खाती हुई लता की कुर्सी की ओर बढ़ आयी है। कमरे के अंधकार मिश्रित प्रकाश में डाक्टर की भारी-भरकम सूरत कम्पाउंडर की पतली-दुबली आकृति के मुकाबिले में एक विचित्र विरोधाभास उपस्थित कर रही थी। दूसरी ओर नौकर हाथ में बैग लिये खड़ा था। कम्पाउंडर ने पिचकारी, टिंचर और दूसरी औषधियों की शीशियाँ मेज पर रख दी थीं। इस कमरे में, जो कुछ क्षण पहले सर्वथा निस्तब्ध था, इस समय हल्का-सा शोर पैदा हो गया था।

लता कम्बल को फेंककर उठ खड़ी हुई। डाक्टर साहब ने बिना कुछ पूछे अमृतराय का निरीक्षण आरम्भ कर दिया। कोट के ऊपर की जेब से थरमामीटर निकालकर खोल, झटक और धो कर उन की जिह्वा के नीचे रखा। लता उन के पास आ कर खड़ी हो गयी। बालों की शुष्क लटें उस के चेहरे पर बिखर आयी थीं। आँखें कुछ लाल हो रही थीं। डाक्टर साहब ने एक बार उस की ओर देखा और फिर घड़ी की सूई देखने लगे। एक मिनट बाद उन्होंने थरमामीटर निकाला।

"कितना ?"—लता ने चिन्ताजनक स्वर में पूछा।

"१०५ !"

"मैंने देखा तो १०४ था।" लता ने आतुरता से कहा, "डाक्टर साहब ये आज सुबह ही से बेहोश हैं। मैं तो घबरा गयी थी, कुछ बोलते नहीं, पहचानते तक नहीं, यों ही आयँ-बायँ बड़बड़ाते हैं।"

डाक्टर साहब बोले, "घबराने की कोई बात नहीं। मैंने आप से निवेदन किया था कि इन्फ्लुएंज़ा है, यह ज्वर तीव्र भी हो जाता है और

इस में बेहोशी भी आ जाती है। चोट अधिक लगने के कारण कमर का माँस फट गया है। मैं तेल दिये जाता हूँ। आप इस की मालिश करके सेंक दें। कुछ दिन में परमात्मा ने चाहा तो आराम हो जायगा। अब मैं इंजेक्शन दिये जाता हूँ, इस से इन्हें काफी आराम मिलेगा।

लता कुछ कमज़ोरी-सी महसूस कर रही थी। वह कुर्सी पर बैठ गयी। डाक्टर साहब ने इंजेक्शन दिया, सीने पर पट्टियाँ बाँधीं, नुसख़ा लिखा, दवा की एक खुराक अमृतराय के मुँह में डाल दी और फिर कुर्सी में धँस गये। इसी समय उनकी दृष्टि लता के चेहरे पर जम गयी।

"आप मालूम होता है, अपने स्वास्थ्य की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देतीं।"

लता के ओठों पर एक शुष्क मुसकान फैल गयी।

"लेकिन यह ठीक नहीं," डाक्टर साहब ने कहना शुरू किया, "आप एक नर्स रख लें, अकेली आप दो रोगियों की देखभाल नहीं कर सकतीं। इस तरह तो आप स्वयं बीमार पड़ जायँगी। जरा शीशा लेकर देखिए तो। परदेश का मामला है, यदि आप स्वयं अस्वस्थ हो गयीं तो क्या होगा। जान से बहुमूल्य और कोई वस्तु नहीं है। उचित तो यह है कि आप एक छोटा-सा नौकर और रख लें। इस नौकर से काम न चलेगा। और फिर आप किसी टॉनिक का भी प्रयोग करें, काडलिवर आइल या कोई और·······।"

और वे जाने को तैयार हो गये।

"चाय तो पीजिएगा?"

"नहीं......"

लेकिन लता ने तो पहले ही नौकर को चाय लाने का आदेश दे दिया था। वह भागकर बाहर गयी। आवाज़ देने ही लगी थी कि नौकर टी-सैट लेकर आता दिखायी दिया।

डाक्टर ने खड़े-खड़े चाय का प्याला खाली किया और वाटरप्रूफ कोट पहनकर चलने को तैयार होते हुए लता से बोले, "दवाइयाँ

भी मैं नर्स के ही हाथ भेज दूँगा और उसे आदेश भी कर दूँगा। एक छोटा-सा नौकर शाम तक भेजने का प्रयास करूँगा। यह खाना पकायेगा, सफ़ाई करेगा अथवा दवाइयाँ लायेगा।"

"धन्यवाद !"

लता उन्हें दरवाजे तक छोड़ने आयी। डाक्टर साहब चले गये और लता अपने विचारों में मग्न बरामदे में घूमने लगी और फिर बंसीलाल के कमरे में चली गयी, देखा बंसीलाल की रजाई एक ओर फर्श पर गिरी पड़ी है और वह औंधे मुँह उस पर लुढ़क गया है। लता वहीं खड़े-खड़े उसे देखती रही, पहले की तरह उत्साह से आगे नहीं बढ़ी, उस ने नौकर को आवाज दी कि उसे उठाकर बिस्तर पर डाल दे और उस पर लिहाफ़ दे दे।

—०—

२६

रानी ने कहा, "लीला कुछ देर तो और बैठो, फिर जाने एक दूसरे की सूरत भी देखनी नसीब होगी या नहीं ? कौन जाने जीवन-सागर की लहरें हमें कहाँ-से कहाँ, एक दूसरे से कितनी दूर, बहाकर ले जायँ ?"

परीक्षाएँ समाप्त हो चुकी थीं। होस्टल, जो लड़कियों के क़हक़हों, हारमोनियम, बेला अथवा सितार के मादक संगीत, खेलों के शोर-गुल से मुखरित रहा करता था, अब धीरे-धीरे मौन हो रहा था। बरामदे में वह पहली सफ़ाई कहाँ ! इधर-उधर कागज और कूड़ा-करकट बिखरा पड़ा था और कमरे खाली हो चुके थे या खाली हो रहे थे। पुरानी कापियों के फटे हुए पृष्ठों, पुराने समाचार पत्रों, कपड़ों के जीर्ण-शीर्ण टुकड़ों और इसी प्रकार की दूसरी वस्तुओं के सिवा अधिकांश

कमरों में कुछ नज़र न आ रहा था । लड़कियाँ पृथक होने से पहले एक दूसरी से गले मिल रही थीं । पत्र लिखते रहने के और कभी न भूलने के लम्बे-चौड़े वादे ले-दे रही थीं । जीवन एक सराय है, कुछ घड़ी के लिए किसी अदृश्य स्थान से आकर पथिक यहाँ इकट्ठे होते हैं, कुछ देर इकट्ठे रहते हैं, एक दूसरे से प्रेम और प्यार भी करते हैं और फिर जुदा हो जाते हैं । कालेज के होस्टल, स्टेशन के मुसाफ़िरखाने, रेलगाड़ी के डिब्बे, तीर्थ-स्थान और हिल-स्टेशन, ये सब इस बड़ी सराय के कमरे हैं । वहाँ उपजा हुआ प्रेम वहाँ के लिए ही पर्याप्त होता है । वहाँ से चले जाने के बाद मिलने वालों की याद तो दूर, सूरतें तक भूल जाती हैं ।

लीला भी जा रही थी । कुछ लड़कियों को तो फिर अगली श्रेणी में पढ़ने के लिए आने की आशा भी थी, पर लीला का तो शीघ्र ही विवाह होने वाला था । वह तो होस्टल से सदैव के लिए विदा हो रही थी । कालेज में उसे रानी से जितनी मुहब्बत थी और किसी से न थी, और इसीलिए देर से वह उस के पास बैठी थी । दोनों में बहुत समय से बातें हो रही थीं । लीला को जाना था, शाम बढ़ती चली आ रही थी, इसलिए लीला लम्बी साँस लेकर उठी थी और वह कहना चाहती थी—"रानी बहन अब आज्ञा दो, प्रार्थना करो फिर शीघ्र ही मिलें !" लेकिन रानी की बात सुनकर वह फिर बैठ गयी ।

रानी ने कहा, "लीला, आज तो तुम्हें छोड़ने को जी नहीं चाहता । इच्छा होती है कि इसी तरह कमरे में बैठे, आयु-पर्यन्त तुम से बातें ही करती रहूँ, लेकिन ऐसी पागलों जैसी इच्छा भी कभी पूरी हुई है किसी की ?"

लीला केवल हँसी, उस से उत्तर न बन आया । अब तक दोनों इधर-उधर की हँसी-मज़ाक की बातें कर रही थीं । लीला भविष्य का अपना प्रोग्राम, विवाह के सम्बन्ध में अपने स्वप्न सुना रही थी और रानी अपनी टीका-टिप्पणी करती हुई उसे हँसाती रही थी । लेकिन अब रानी ने बातों का रुख पलट दिया था और लीला महसूस कर रही थी जैसे

इतनी देर से बरबस रोके हुए भावों के तूफ़ान को रानी दिल से निकाल कर हल्की हो जाना चाहती है ।

रानी ने फिर कहा, "वास्तव में लीला, बात यह है कि मैं अपने आप को सर्वथा असहाय पा रही हूँ । अब तक मुझे तुम्हारा सहारा था, मैं अपने एकाकीपन को महसूस न करती थी । लेकिन सोचती हूँ, अब क्या होगा ? इस महान् सागर में कर्णधार के बिना मेरी नौका कहीं किनारे लगेगी अथवा लहरों के भयानक थपेड़े खाती हुई अनन्त जलराशि में समा जायगी ।"

लीला ने कहा, "रानी तुम यों ही अधीर होती हो । हम सब की नौकाओं का अदृश्य खेवट तो एक ही है, वह जिधर चाहता है, ले जाता है । वह चाहता है तो किनारे लगा देता है और नहीं चाहता तो मँझधार के हवाले कर देता है ।"

रानी विषाद से हँसी और बोली, "उस कर्णधार की सत्ता में तो लीला, मेरा विश्वास तभी उठ गया था जब भाई ने लता के मकान से छलाँग लगायी थी, जब उस के वियोग में, उस की दयनीय दशा को देख-कर माँ पागल होकर मर गयी थी और जब मुझे सर्वथा असहाय होकर भयावह लहरों के थपेड़ों का सामना करना पड़ा था । तुम कहोगी शायद परमात्मा को इसी में कोई भलाई मंजूर हो, पर मैं ऐसा नहीं मानती । माली बसी हुई फुलवारी को उजाड़ दे, खिले हुए सुन्दर फूलों को तोड़-कर उन की पत्तियों को छिन्न-भिन्न करके भूमि पर बिखेर दे तो इस में उन प्रताड़ित फूलों की, उन मसले हुए नन्हें पौधों की क्या भलाई हो सकती है । शायद तुम कहो माली दूसरा बाग लगायेगा, पहले से सुन्दर-सुरम्य फुलवारी खिलायेगा, किन्तु वे फूल तो फिर बाग़ की बहार न देखेंगे, वे पौधे तो फिर सूरज की जीवनदायिनी धूप का स्पर्श न महसूस करेंगे, बसन्त के मादक बयार से मस्त होकर न लहरायेंगे । वे तो अपनी प्यास, अपनी तृष्णा साथ ही ले जायेंगे ।"

"तृष्णा भी कभी किसी की मिटी है," लीला ने कहा, "मनुष्य

के सहस्रों अरमान पूरे हो जायँ फिर भी बहुत से अरमान रह ही जायेंगे।"

"यह तो ठीक है," रानी ने दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए कहा, "पर जो अंतर भुक्त-भोगी होकर मरने और जवानी में ही मर जाने में है, वही अपने अरमान पूरे करके और अपना एक भी अरमान पूरा किये बिना मर जाने में है। लीला, मैं दर्शन शास्त्र की वेत्ता नहीं। संसार के सुख-दुख का रहस्य समझने की भी चेष्टा नहीं करती। मैं तो अपने उजड़े अतीत को देखती हूँ, अपने शून्य भविष्य को देखती हूँ और सोचती हूँ कि यदि यह सब बर्बादी परमात्मा ने की है तो वह परमात्मा अपने होश में नहीं, वह सतर्क नहीं, वह या तो मदमत्त है या किसी कवि की भाँति अपने ध्यान में मग्न !"

रानी का कंठ भर आया। उस के नयन आर्द्र हो गये। कुछ क्षण ठहरकर उस ने फिर कहना शुरू किया, "लेकिन नहीं लीला, मैं जानती हूँ, यह सब कुछ परमात्मा ने नहीं किया, यह तो परिस्थितियों का उलट-फेर है। संसृति की नाट्यशाला पर कोई भी अकेला नहीं कि जो चाहे कर ले, एक के कृत्यों का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है, दूसरे के कर्म तीसरे का जीवन बदल देते हैं। पिता के अपराध का फल पुत्र को भोगना पड़ता है, पुत्र के पाप पिता का जीवन कठिन बना देते हैं—क्रिया-प्रतिक्रिया, संघर्ष और द्वन्द्व—इन की चक्की चलती रहती है और पिसने वाले तड़पते रहते हैं, लेकिन मुक्त नहीं हो पाते।"

विह्वल-सी होकर रानी कमरे में घूमने लगी। लीला चुप स्तब्ध उस की बातें सुनती रही। वह क्या सान्त्वना दे, क्या तसल्ली दे, यह उस की समझ में न आया।

कुछ क्षण बाद रानी फिर कुर्सी पर बैठ गयी और धीरे-धीरे कहने लगी, "लीला, मुझे उस महान शक्ति पर अन्ध विश्वास नहीं है। मैं सोचा करती हूँ कि यदि कोई परमात्मा है भी तो यह सब विषमता उस की पैदा की हुई नहीं। विपत्ति में हम उस का नाम लेकर सन्तोष कर लेते हैं— बस ! जब हमारी सीमित-बुद्धि हमारी विषम परिस्थितियों का

हल नहीं सोच सकती तो—यह सब उस के हाथ में है, वह जैसा करता है, अच्छा करता है—ऐसा सोचकर हम सन्तोष कर लेते हैं। मैं ऐसा नहीं कर पाती। यही कारण है कि मैं असन्तुष्ट हूँ, आकुल हूँ।"

लीला को अब मानो बात करने के लिए शब्द मिल पाये। उस ने कहा, "यदि यह बात ठीक हो भी तो निराशा कैसी? परिस्थितियाँ मनुष्य के लिए बनी हैं, मनुष्य परिस्थितियों के लिए नहीं। दृढ़-प्रतिज्ञ व्यक्तियों ने सदैव परिस्थितियों की अवहेलना की है। उन्होंने अपना भविष्य स्वयं ढाला है। संसार के महान् व्यक्ति कठिन परिस्थितियों से जूझकर ही उन्नति के शिखर पर पहुँचे हैं।"

"तुम ऐसा कह सकती हो लीला," रानी ने कहा, "असंख्य मनुष्यों में से इने-गिने सफल व्यक्तियों को देखकर तुम कह देती हो कि हम परिस्थितियों पर विजय पा सकते हैं। पर कभी तुम ने उन असंख्य लोगों की बाबत भी सोचा है जो परिस्थितियों की चक्की में पिस गये, अपने समस्त परिश्रम, अपनी समस्त शक्तियों, अपने बुद्धि-बल, अपनी दृढ़ता और संयम के होते हुए भी पिस गये और उन का पता भी नहीं चला। संयोग ने जिन का साथ दिया, संसार ने उन्हें सफल समझा। संसार ने कहा, 'ये कठिन परिस्थितियों को वश में करके आये हैं, ये वीर हैं, ये बहादुर हैं!' पर क्या संसार ने कभी उन उँगली पर गिने जाने वाले सफल लोगों के दिलों में पैठकर उन के आन्तरिक दुःख को, उनकी अतृप्त इच्छाओं को देखा है? जूझने को क्या मैं न जूझूँगी, क्या मैं परिस्थितियों से न लड़ूँगी, पर अंजाम जो होगा वह दिखायी देता है! निबिड़ अंधकार है, कंटकाकीर्ण मार्ग है, मैं अकेली हूँ, संयोग ने साथ दिया तो कहीं पार जा लगूँगी, नहीं मरना तो है ही। परीक्षा हो चुकी है, होस्टल खाली हो रहा है, सब लड़कियाँ अपने घरों को जा रही हैं, पर मेरा कोई ठिकाना नहीं—कहाँ जाऊँ? कुछ सूझ नहीं पाता। घर है—टूटा-फूटा, पर उस में अकेली कैसे रहूँ और अब तो उस में मुझ से

रहा भी न जायगा। जो मुझे यहाँ कॉलेज में दाखिल करा गये, उन्होंने भी सुध न ली और स्वयं कुछ लिखने को मेरा जी नहीं चाहता। कहो लीला, मैं निराश न होऊँ तो क्या करूँ ?"

रान को रुलाई आ गयी और धोती के आँचल से अपना मुँह छिपाकर वह सिसकने लगी।

लीला कहना चाहती थी, "रानी तुम मेरे साथ चलो बहन, तुम्हें कुछ कष्ट न होगा," लेकिन उसी क्षण दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी, लीला ने उसे खोला, देखा एक वृद्ध खड़ा है।

"राज बीबी हैं ?"

राजरानी ने आवाज़ पहचान ली। आँसू पोंछकर उस ने देखा, रामनारायण खड़ा है। वह रामनारायण से भली-भाँति परिचित थी। पहले अस्पताल में जब वह लता के पास खाना आदि लेकर आता था, उस ने उसे देखा था। फिर जब लता बंसीलाल को अस्पताल से अपने घर ले गयी थी और वह बंसीलाल को देखने गयी थी तब भी रामनारायण को देखने का अवसर उसे मिला था और उस थोड़े से परिचय से ही उस ने यह अनुभव कर लिया था कि वृद्ध नौकर एक दर्द भरा दिल रखता है। आज अचानक उसे अपने दरवाज़े पर खड़ा हुआ देखकर रानी को आश्चर्य हुआ।

इस से पहले कि रानी कुछ पूछती, रामनारायण ने कहा, "राज बीबी मलिक साहब का स्वास्थ्य खराब हो गया है। लता घर में नहीं है और उसे वे पत्र भी नहीं लिखते, दिनों-दिन उनकी हालत गिरती जाती है। कई दिनों से दफ़्तर नहीं गये, बुखार है और खाँसी भी है, मैं ठहरा वृद्ध—घर का काम करूँ या उन की सेवा-शुश्रूषा करूँ। यह सब सोच कर तुम्हारे पास आया हूँ—और कहाँ जाऊँ ?"

रानी ने कहा, "मैं अभी चलती हूँ।"

"जल्दी चलो," रामनारायण ने अवरुद्ध कंठ से कहा, "मेरा तो दिल डरता है, न जाने परमात्मा को क्या मंजूर है ? जिस सामान की

जरूरत होगी, मैं यहाँ [illegible]।

रानी तुरन्त ही लीला के गले मिलकर, कमरे में ताला लगाकर रामनारायण के साथ चल पड़ी।

—०—

२७

डाक्टर साहब के कमरे में, उन की चारपाई के पास कुर्सी पर लता बैठी थी। चारपाई और कुर्सी के मध्य छोटा-सा मेज़ रखा था, उस पर वही बिसात बिछी थी जो कुछ दिन पहले कोने में पड़ी हुई थी। उस पर रखे हुए थे मुहरे—कल तक जो बेबसी की हालत में पड़े थे, आज काम में लाये जा रहे हैं।

डाक्टर साहब कई दिन के बाद उठे थे। आज उन्होंने हजामत बनवायी थी, स्नान भी किया था और जी बहालने के लिए शतरंज बिछा ली थी। यह तीसरी बाजी चल रही थी। दो पहले हो चुकी थीं और दोनों लता हार गयी थी। बाज़ियाँ वह हार भी क्यों न जाती? प्रकट वह शतरंज खेल रही थी, पर उस का मन शतंरज में कहाँ था? वह डाक्टर साहब के कमज़ोर, पीले चेहरे को देखती रही थी और बहुत कुछ सोच भी रही थी।

वह सोच रही थी कि बंसीलाल का प्यार भी क्या प्यार था?—क्या वह उन्माद नहीं था? उन्माद ही तो था! उस में मुहब्बत की सहिष्णुता कहाँ? वह तो बाँध रखना चाहता था, वह तो मिटना चाहता था या मिटा देना चाहता था। यदि जगत की मुहब्बत मुहब्बत न थी तो बंसीलाल का प्यार भी प्यार न था। एक वासना थी दूसरा उन्माद। दोनों अपूर्ण, दोनों अभावमय। पूर्ण मुहब्बत तो डाक्टर अमृतराय की है। उस में समुद्र की-सी गहराई है, नदी का-सा ओछापन नहीं, मोम की —

ांति वह गल जाने वाली नहीं, वह पत्थर की भाँति दृढ़ है। अमृतराय की मुहब्बत अपने प्रियतम के लिए तिल-तिल जलना जानती है, उसे दूसरे से मुहब्बत करते देखकर भी अनुराग का दम भरना जानती है, अपने प्रियतम को बाँधकर केवल अपने ही लिए रखना उसे नहीं आता—उस में ईर्ष्या नहीं, द्वेष नहीं।

अब वह समझ रही थी, सब कुछ अच्छी तरह समझ रही थी—किस तरह वे उस का दिल रखने के लिए इच्छा के विरुद्ध बंसीलाल की सेवा करते रहे; किस तरह उसे मृत्यु की अँधेरी खोह से निकाल लाये; किस तरह उस के साथ जगह-जगह भटकते रहे। जगत की तरह उन्होंने उसकी सुन्दरता की प्रशंसा के पुल नहीं बाँधे, उस की झूठी प्रशंसा नहीं की। बंसीलाल की भाँति वे उत्तेजित भी नहीं हुए, मरने-मारने पर तैयार भी नहीं हो गए। शांति से, खामोशी से मुहब्बत करते रहे और उस की तनिक-सी इच्छा के लिए जान तक निछावर करने को तैयार रहे।

एक साधारण-सी इच्छा ही तो उस ने की थी और वे उस आँधी-पानी में शतरंज लेने दौड़ पड़े। उन की मुहब्बत धीरे-धीरे सुलगने वाली आग थी और लता महसूस कर रही थी जैसे शनैः-शनैः यह आग उस की ओर भी बढ़ती आ रही है और उस के अन्तर में भी जैसे कुछ सुलगने लगा है—ऐसे, जैसे पहले कभी न सुलगा था, जैसे पहले कभी न जला था।

अचानक डाक्टर साहब ने ज़रा-सा उठकर कहा, "आप क्या सोच रही हैं, मैं देखता हूँ आप का मन शतरंज में नहीं है।"

"नहीं कुछ नहीं, कुछ नहीं!" लता ने अनायास बिसात के कोने को पकड़ते हुए कहा।

"कुछ तो है?"—डाक्टर साहब शतरंज को लपेटकर कोने में फेंकते हुए बोले।

"नहीं कुछ नहीं!" उसी तरह मेज़ में निगाहें गड़ाये लता बोली।

डाक्टर साहब ने उस के चेहरे की ओर देखा और फिर आहिस्ता से उठकर बैठ गये और लता के हाथ को प्यार से अपने हाथ में लेकर उन्हों ने पुकारा, "लता रानी !"

लता ने हाथ नहीं खींचा। हाँ, उस की निगाहें डाक्टर साहब की ओर उठीं। उन आँखों में न जाने क्या था। डाक्टर साहब का दिल धड़कने लगा ! उन के रोएँ खड़े हो गये। शायद उस समय लता का हृदय भी धड़क रहा था। डाक्टर साहब ने उस के हाथ में भी तनिक कम्पन महसूस किया। उन्होंने उस के काँपते हुए हाथ पर अपना हाथ फेरते हुए कहा, "लता रानी, मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ, तुम अपने आपे में नहीं हो। मैं कहता हूँ तुम क्यों अपने स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखतीं, क्यों मेरे लिए अपनी जान को ख़तरे में डाल रही हो ? ज़रा शीशे में देखो, कितनी कमज़ोर हो गयी हो। कई दिनों से तुम ने बंसीलाल का ख़याल नहीं किया ! मैं तो अब बिलकुल स्वस्थ हूँ, मेरी चिन्ता अब बहुत हो चुकी, अब ज़रा अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखो।"

"बंसीलाल !" लता ने धीरे से कहा और उस ने अपना हाथ खींच लिया और कुर्सी पर पीछे की ओर को लेट गयी। उस के मस्तिष्क में एक तूफ़ान-सा उठ खड़ा हुआ। वह कहाँ-से-कहाँ आ पहुँची। क्या वह पथ-भ्रष्ट तो नहीं हो गयी ? वह बंसीलाल को प्रायः भूल सी गयी थी। अभी उस का ज़िक्र उसे अच्छा भी नहीं लगा। भावुकता को छोड़कर वास्तविकता की रोशनी में उस ने वर्तमान स्थिति को परखा—बंसीलाल के लिए उस के हृदय के किसी कोने में पुरानी उपेक्षा जाग उठी थी। इस मांस-पिंड को वह कहाँ-कहाँ लिये फिरेगी ? कहाँ ले जायगी ? कब तक इस मौत-ऐसे जीवन में रख छोड़ेगी ? डाक्टर अमृतराय ने पहले ही कहा था—'इसका मर जाना अच्छा है, जीकर, मौत से बुरा जीवन बिताने से लाभ ?'

लेकिन दूसरे क्षण लता ने ये विचार बरबस अपने मन से निका

दिये और उठकर कमरे में घूमने लगी।

डाक्टर साहब बिस्तर पर करवट के बल लेटे हुए उस की शांत और गम्भीर मुद्रा को देख रहे थे। इस शांति के नीचे जो हलचल मची हुई थी. उस का अनुमान भी कर रहे थे। डाक्टर साहब के जी में आया कि वे उठें, लता को यहाँ—अपने पास, अपने बिस्तर पर ला बिठायें, उस से कुछ बातें करें, उस के हृदय में पैठने की कोशिश करें! पर आज इतने दिनों के बाद वे उठे थे। नहाने, बाल बनाने से ही वे कुछ थकावट-सी महसूस कर रहे थे। सीधे वे चारपाई पर लेट गये। कुछ क्षण उसी तरह लेटे रहे, फिर उठे। लता उस वक्त दरवाजे के पास खड़ी बाहर की ओर देख रही थी। वह चुपचाप धीरे-धीरे चलते हुए उस के पास आकर खड़े हुए।

लता सोच रही थी। अमृतराय ने बंसीलाल का नाम क्यों लिया? क्या वे नहीं चाहते मैं उन के पास बैठूँ। लेकिन दूसरे क्षण इस बात पर वह दिल-ही-दिल में हँसी। अमृतराय की मुहब्बत तो सच्ची मुहब्बत है। वे नहीं चाहते लता को कर्तव्य के पथ से हटा दें। लेकिन क्या बंसीलाल की सेवा अब वह उसी निष्ठा, उसी मुहब्बत, उसी प्रेम से कर सकेगी? प्रेम तो वास्तव में उस ने बंसीलाल से कभी किया ही नहीं। बंसीलाल ने परिस्थितियों को सोचे-समझे बिना, अपनी और उस की स्थिति की तुलना किये-बिना, उन्माद में जो कुछ किया, उस ने उसे कुछ देर के लिए अपने आप को भुला दिया था, उस की भावुकता ने उस के मस्तिष्क पर अधिकार जमा लिया था, किन्तु अब, जब भावुकता से दूर, तटस्थ होकर वह सोचती है, तो अपने आप को निर्दोष पाती है, बंसीलाल के अनुराग से अपने दिल को सर्वथा शून्य पाती है।

डाक्टर साहब के हाथ के स्पर्श से लता चौंक पड़ी। उस ने डाक्टर साहब की ओर देखा—बाहर कुछ देर के लिए धूप निकल आयी थी। उस की रोशनी में डाक्टर साहब के पीले चेहरे में उसे कुछ विचित्र

प्रकार की सुन्दरता दिखायी दी। क्षणिक आवेग में डाक्टर साहब के कंधे पर हाथ रखते हुए उस ने कहा, "आप अभी कमज़ोर हैं, इस तरह कष्ट न किया कीजिए। चलिए, बिस्तर पर आराम कीजिए! आप में अभी चलने-फिरने की शक्ति आने में काफ़ी समय लगेगा।"

और यह कहकर बिना उन का उत्तर सुने वह हाथ थाम उन्हें बिस्तर पर ले आयी और वहाँ लिटाकर स्वयं उन के पास बैठ गयी।

डाक्टर साहब चुपचाप लेट गये और मुसकराकर बोले, "तुम्हें मेरा इतना ख़याल है, अपनी तरफ़ तो देखो!"

लता केवल मुसकरा दी।

डाक्टर साहब ने फिर कुहनी के बल उठकर लता का हाथ थाम लिया और उसे दूसरे हाथ के पास ले जाकर दोनों हाथों से उसे दबाया और कृतज्ञता भरे स्वर में बोले, "तुम ने मेरे लिए जो कुछ किया है, लता, उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ!"

लता फिर भी नहीं बोली, केवल मुसकरायी। डाक्टर साहब अपने बीमार हाथ से उस के हाथ को सहलाते रहे। लता ने अपना हाथ नहीं खींचा। बैठी रही, लेकिन उत्तर वह नहीं दे पायी।

डाक्टर साहब ने फिर कहा, "सचमुच अगर तुम न होतीं तो मैं न बच सकता।"

अब लता को जैसे जिह्वा मिल गयी। हँसकर बोली, "वाह! यदि मैं न होती तो आप यहाँ आते ही क्यों? बीमार ही क्यों पड़ते?"

डाक्टर साहब ने अनायास ही लता का कोमल हाथ अपने गाल पर रख लिया और कहने लगे, "फिर भी जिस निष्ठा से तुम ने मेरी तीमारदारी की, कोई न करता।"

लता के समस्त शरीर में सनसनी दौड़ रही थी। वह चाहती थी उठकर भाग जाय! लेकिन वह जा न सकी।

डाक्टर साहब धीरे-धीरे उस का हाथ अपने ओठों तक ले आये और फिर एक दम उन्होंने उसे चूम लिया—ज़ोर से चूम लिया और

बोले, "लता तुम कितनी अच्छी हो!"

उसी वक्त नौकर ने आकर बताया कि बंसीलाल चारपाई से गिर पड़ा है और उस के शरीर से रक्त बहने लगा है।

लता झट बिस्तर से उठकर भाग गयी। डाक्टर अमृतराय का चेहरा श्वेत हो गया और उस पर स्याही-सी पुत गयी।

—०—

२८

इन चन्द दिनों में पिता ने जैसे पुत्री को और पुत्री ने जैसे पिता को पा लिया।

रानी पितृ-प्रेम से वंचित थी। वह छोटी ही थी जब पिता का हाथ सिर से हट गया था और पिता की मृत्यु के पश्चात् वह सदैव कुछ अभाव-सा अनुभव करती आ रही थी। वैसे तो माँ भी उस से प्रेम करती थी, भाई भी प्रेम करता था, पर माँ के प्रेम का मार्ग परिस्थितियों की रुकावटों से भरपूर था। हिन्दुस्तान में लड़की का जन्म किसी विपत्ति से कम नहीं समझा जाता और फिर पंजाब के एक विपन्न घराने में। रानी की माँ को सदैव उस के भविष्य की चिन्ता लगी रहती थी और वह जब भी किसी बात से क्रुद्ध होती, सदैव उसे ताने देती। बंसीलाल की माँ होने पर उसे गर्व था, रानी की माँ होने पर दुःख। केवल नैसर्गिक और अबाध प्रेम उसे पिता ही से मिला था और एक बार उस प्रेम के छिन जाने पर वह उस की पूर्ति न कर सकी थी। आज लता के पिता में उस ने वही अपना खोया प्रेम पा लिया, उसी तरह नैसर्गिक, उसी तरह सरल, उसी तरह स्वार्थ-रहित। और लता के पिता ने जाना कि लड़की भी पिता से कैसा प्रेम कर सकती है। उन की आत्मा जिस अभाव से तड़प रही थी, वह पूरा हो गया। लता ने

सदैव उन से प्रेम लिया था, दिया कम था—और यह असहाय दीन लड़की—यह तो जैसे उन की अपनी खोयी हुई पुत्री थी और चाहे उन का स्वास्थ्य न सुधरा था, पर वह उस की उपस्थिति में एक तरह का आराम, एक तरह का सुख महसूस करने लगे थे।

सन्ध्या का समय था। दिन भर धरती पर आग की वर्षा करके सूरज दूर पश्चिम में डूब रहा था और वहाँ आकाश पर फैले हुए बादलों की लाल धारियाँ धीरे-धीरे नीली और फिर श्याम हो रही थीं, और इस के साथ ही कहीं दक्षिण से हल्की-हल्की, शीतल बयार चलने लगी थी मानो ज्वर से जलती हुई धरती के मस्तक पर कोई अदृश्य शक्ति चन्दन का लेप कर रही थी।

रामनारायण ने छत पर खूब छिड़काव कर दिया था और मलिक साहब की चारपाई वहाँ बिछा दी थी। सिरहाने की ओर पंखा हल्की रफ़्तार से घर-घर कर रहा था, एक सुराही पानी से ठंढी करके उस ने रख दी थी और उस के पास एक शीशे का गिलास। दिन भर का थका हुआ वह स्वयं भी एक ओर गुड़गुड़ी लेकर बैठ गया था। चारपाई पर बीमार मलिक साहब पड़े थे, दायीं ओर सिरहाने रानी बैठी उन के सिर को दबा रही थी और सीढ़ियों के दरवाज़े के पास पानी से ठंढे किये हुए फ़र्श पर पुस्सी ने आकर अपनी बैठक जमा ली थी।

इन बीमारी के दिनों में जब उन के पास लता न थी और राजरानी भी न आयी थी, तब मलिक साहब अपने एकाकीपन से ऊब जाते थे। उन का जी अपने आप से, अपने कमरे के फर्नीचर से, कमरे की दीवारों से बातें करने को बेचैन हो उठता था। जब रामनारायण घर के दूसरे काम में लगा रहता था तो मलिक साहब कभी-कभी इस बिल्ली को धीरे-धीरे पूँछ सिकोड़े, सिर नीचा किये और शरीर सिकुड़ाये, इधर-उधर जाते देख कर बुला लेते थे, पहले तो पुस्सी उन से डरती थी, पर फिर वह उन से हिल गयी और उन के बुलाने पर इस तरह उन की गोद में बैठ जाती जैसे उन की नन्हीं-मुन्नी लड़की वही हो।

जरानी के आने पर उसे गुदगुदे बिस्तर पर मलिक साहब की गोद में उने का सौभाग्य तो प्राप्त न होता था, पर फिर भी वह उन की चारपाई पास आकर बैठ जाती थी और उन के क्षीण स्वर से एक-दो बार म से पुकारा हुआ अपना नाम सुनकर संतुष्ट हो जाती थी।

रानी ने धीरे-धीरे मलिक साहब का सिर दबाते हुए कहा, "पिता ी, आप लता बहन को आने के लिए क्यों नहीं लिख देते?"

मलिक साहब चुप लेटे रहे। रानी एक सप्ताह ही में इस घर का क अंग हो गयी थी, प्रत्येक चीज़ में उस का व्यक्तित्व झलका पड़ता ा। लता के जाने के बाद मलिक साहब ऐसे उदासीन हुए थे कि न्हें खाने-कपड़े और घर-बार की कुछ सुध-बुध न रह गयी थी। मेज ौर कुर्सियों पर मिट्टी की कई तहें जम गयी थीं, किताबों को चूहे तर रहे थे, छतों पर जाले लटक रहे थे, कमरों की दरियाँ धूल से टी पड़ी थीं, इधर-उधर मैले कपड़ों के ढेर लगे रहते थे, और लता ा कमरा खोलकर भी न देखा गया था। रानी ने आते ही दो दिन गा कर सब कमरे साफ किये, फर्श धुलवाये, छतों के जाले उतरवाये, ुस्तकों को झाड़कर अलमारियों में करीने से रखा, जो चीज़ जहाँ ी थी, वहाँ रखवायी, मैले कपड़ों को धोबी के यहाँ दिया। और वही र जो अव्यवस्था का नमूना बना हुआ था, व्यवस्था की सुन्दर तस्वीर न गया।

इस ओर से निश्चिन्त होकर उस ने अपना ध्यान मलिक साहब की ओर फेरा। उन के खाने और सोने का उचित प्रबन्ध किया। डाक्टर के आदेशानुसार दवाई का, दूध का, फलों का समय नियत किया, उन के बिस्तर की चादरें बदलवायी, एक ठंडे कमरे में फ़र्श धुलवा, दरवाजों पर पानी से भीगी हुई खस की टट्टियाँ लगवा, दिन में उन के आराम करने का प्रबन्ध किया, सन्ध्या को छत पर छिड़काव करके उन की चारपाई लगा दी और फिर उस ने इस लगन और इस निष्ठा से उन की सेवा की, उन की जरा-जरा सी आवश्यकता का

खयाल रखा कि मलिक साहब उसे अपनी लड़की की तरह मानने लगे। वह जब भी उसे पुकारते, 'बेटी' कहकर पुकारते और इस शब्द में वह समस्त प्रेम, वह सारी कोमलता होती जो अपनी प्रिय पुत्री को पुकारते हुए पिता के स्वर में होती है और रानी भी जब उन्हें पुकारती, 'पिता जी' कहकर पुकारती और इस में वह समस्त श्रद्धा, वह सारा प्रेम होता जो सन्तान को पिता से होता है।

मलिक साहब को चुप देखकर रानी ने फिर धीरे से वही बात दोहरायी—मलिक साहब तब भी न बोले। हाँ, उन का मस्तिष्क एक बार फिर उद्वेलित हो उठा और मन में उन्होंने लता का और रानी का मुकाबिला किया।

रानी ने फिर धीरे से कहा, "मैं लता बहन को एक पत्र लिखे देती हूँ। उसे आप की बीमारी का पता नहीं, सुनते ही तत्काल वापस आ जायगी, नहीं तो उसे दुख होगा कि उसे पता क्यों न दिया गया।"

मलिक साहब दिल में हँसे—यदि उसे उन के दुख का इतना ही खयाल होता तो वह उन की हार्दिक इच्छा के विरुद्ध यों न चली जाती और चली भी गयी थी तो इतने दिन बाहर न रहती। उन्होंने बड़ी धीमी आवाज से कहा, "तुम तो यहाँ हो बेटी, फिर मुझे किस बात का कष्ट है? लता को क्यों तकलीफ़ दी जाय, उस का शायद स्वास्थ्य ठीक नहीं, वह पहाड़ पर आराम कर रही होगी, हाँ तुम्हें कष्ट होता हो तो......।"

उन की बात बीच ही में काटकर रानी ने कहा, "मुझे कष्ट कैसा पिता जी, मैं असहाय, अनाथ लड़की यदि किसी के काम आ सकूँ तो इस से बढ़कर सुख की बात क्या हो सकती है।"

मलिक साहब ने फिर उसी धीमी आवाज से कहा, "बेटी यदि मुझे मरना ही है तो मैं इस से अच्छी मृत्यु नहीं चाहता, तुम्हारे होते हुए मैं चैन और शांति से मर सकूँगा, मुझे कोई दुख, कोई क्लेश न रहेगा और लता......" मलिक साहब को खाँसी हो आयी और कुछ

भी आया। रानी को रुलाई आ रही थी, बरबस उसे रोककर उस ने सुराही से पानी का गिलास भरा और मलिक साहबको कुल्ला कराया और फिर रूमाल से उन का मुँह पोंछकर उन्हें आराम से लिटाकर रुद्ध कंठ से रामनारायण को ज़रा उन के सिरहाने बैठने के लिए कहकर वह लता के कमरे में जाकर धम से दरी पर बैठ गयी और अपनी भरी हुई आँखों को उस ने दुपट्टे से छिपा लिया—जाने किस बुरे नक्षत्र में उस का जन्म हुआ था कि कहीं भी कुछ दिन उसे सुख से बैठना नसीब न हुआ।

तब अपने सिरहाने बैठे हुए रामनारायण से मलिक साहब ने कहा—देखो बाबा, तुम ज़रा वकील साहब को बुला लाना, वसीयत के बारे में उन से मुझे कुछ ज़रूरी बात कहनी है।

—०—

२९

उस रात लता सो न सकी। अभी तक भी वह अपने हाथ पर अमृतराय के ओठों की गर्मी महसूस कर रही थी। वह जगह अब भी उसे जलती हुई, उभरी हुई प्रतीत हो रही थी। डाक्टर साहब के इस दुःसाहस पर उसे खेद नहीं हुआ। हाँ, बंसीलाल के सम्बन्ध में उसे अवश्य चिंता पैदा हो गयी। ज्यों-ज्यों वह सोचती थी, वह महसूस करती थी कि बंसीलाल से उसे प्रेम नहीं था। क्षणिक आवेग के कारण उस की समझने और विचारने की शक्तियाँ बेकार हो गयी थीं और तब बंसीलाल के प्रति अपनी अवहेलना पर उसे पश्चाताप हुआ और बस! अब तक वह उसी लहर में बहती चली आ रही थी। एक खुमारी थी जो उस के समस्त शरीर पर छायी हुई थी, पर अब उसे अनुभव हो रहा था जैसे वह नशा उतर गया है। उस ने व्यर्थ ही अपने पिता को कष्ट

दिया। उस की आँखों में उस के पिता की उदास सूरत घूम गयी और अपनी उद्दंडता पर पश्चाताप और ग्लानि से उस का दिल भर आया। इतने दिन तक उस ने पिता के सम्बन्ध में सोचा भी न था। वह महसूस करती थी कि उस रात जब उस ने पिता के सामने तीर्थयात्रा के सम्बन्ध में अपना इरादा प्रकट किया था तो उन की आँखें सजल हो गयी थीं। अब उन का स्वास्थ्य कैसा है? लता की अनुपस्थिति को उन्होंने किस तरह महसूस किया? उस ने कभी यह जानने का प्रयास नहीं किया। उसे याद आया कि जब भी कभी वह देर से घर आती थी तो उस के पिता उद्विग्न हो उठते और अब, जब कि इतने समय से वह उन के सामने न थी, उन की हालत कैसी होगी?—आशंका ने कल्पना के साथ मिलकर लता के सामने ठीक बीमार पिता को ला खड़ा किया। फटी-फटी आँखें, खड़े बाल और क्षीण देह! लता सिहर उठी!

आँखों को मलकर उस ने करवट बदल ली। रात के ग्यारह बजे होंगे, लैम्प शायद अधिक धीमा हो जाने के कारण बुझ गया था और कमरे में अँधेरा और भी घनीभूत हो गया था। लता को सामने की दीवार पर फिर वही अपने पिता की क्षीण मूर्ति दिखायी दी। भय से अकुलाकर वह उठ खड़ी हुई।

उठ कर उसने लैम्प जलाया। प्रकाश की एक हल्की-सी चादर चारों ओर फैल गयी।

इतने दिनों से लता ने पिता को अपने सम्बन्ध में कुछ न लिखा था। अब तक जैसे वह सब कुछ भूली रही थी, आज उस ने चाहा—अपने पिता को पत्र लिखे। अपनी ग़लती पर खेद प्रकट करे और उन से पूछे, उन से परामर्श ले कि वह अब क्या करे, अब किधर जाय? अपनी बुद्धि और समझ पर से तो मानो उस का विश्वास ही उठता जाता था। लेकिन दूसरे क्षण उस ने सोचा—नहीं वह यह न करेगी, इस तरह उन के मन को चोट लगेगी, उस की भी हेठी होगी। नहीं वह पत्र न लिखेगी। यह सोचकर उस ने लैम्प को फिर धीमा कर दि

कमरे में फैल चुका था। रात की बातों का उसे एक हल्का-सा ज्ञान था। बिस्तर पर बैठे-बैठे उस ने अंगीठी की ओर देखा—फाउंनटेनपेन के पास लेटर पैड पर वही लिफ़ाफ़ा पड़ा था जो रात उस ने अपने पिता को लिखा था। वहीं बैठे-बैठे हाथ बढ़ाकर उस ने लिफ़ाफ़ा उठा लिया। खोलकर उसे फिर पढ़ा और फिर फाड़ कर नीचे फेंक दिया।

यह खत क्या उस के मान को धक्का न पहुँचायेगा ? क्या उसे कहना पड़ेगा कि उस ने ग़लती की, क्या वह इस गलती को ठीक न कर सकेगी ? किस गर्व से वह लाहौर से आयी थी—फिर अब इस तरह दीनता दिखाना क्या उसे शोभा देता है ? सिर को दोनों हाथों से थामकर वह वहीं बैठे-बैठे बहुत देर तक सोचती रही। आखिर वह निश्चय पर पहुँच गयी। उसने फिर लेटर पैड और पेन उठाया और लिखने लगी :

राज प्यारी

प्यार। मैं जब से यहाँ आयी हूँ, तुम्हें खत लिखना चाहती रही हूँ, पर लिख आज तक न सकी। हम आजकल छावनी के ऊपर एक बँगले में रहते हैं। कई महीने तीर्थों पर भटकने पर भी हम सफल-मनोरथ नहीं हो सके, उलटा हम ने स्वास्थ्य खराब कर लिया। सोचा था कि यहाँ कुछ दिन गुजारने से बंसीलाल को सेहत हो जायगी और हमें भी आराम मिलेगा, पर इधर डाक्टर साहब के चोट आ गयी, फिर ज्वर आने लगा जो इनफ़्लूएंज़ा बन गया और उधर बंसीलाल की हालत खराब हो गयी। एक नर्स और नौकर रख लिया था। डाक्टर साहब को तो कुछ आराम आ गया है, लेकिन बंसीलाल को सेहत नहीं हुई। मैं अकेली हूँ, नर्स चली गयी है, नौकर है, पर नौकरों से जैसे काम हुआ करता है, उसे तुम समझ सकती हो। क्या ही अच्छा होता यदि तुम आ जातीं। मैं स्वयं अपने को अस्वस्थ महसूस कर रही हूँ। सच पूछो तो इतने दिनों की परेशानी ने मुझ में कुछ बाकी नहीं छोड़ा। छावनी में रामसिंह जनरल मरचेंट की दुकान है, वहीं से हमारा पता लग सकता है। आशा है कि

तुम कुशल से हो। यदि अकेले आने में संकोच हो तो पिता जी से कहकर दो दिन के लिए रामनारायण को साथ ले आना।

तुम्हारी,
लता।

एक नया लिफाफ़ा निकालकर लता ने यह खत बन्द किया, उस पर पता लिखा और नौकर को बुलाकर उसे डाकखाने में डाल आने को कहा।

—०—

३०

मलिक साहब ने क्षीण स्वर में कहा, "देखो बेटी, जीवन का कुछ भरोसा नहीं, कौन जानता है कि कब यह झिलमिलाता हुआ दीपक बुझ जाय ! इसलिए आज मैं तुम से कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

कुछ देर के लिए मलिक साहब रुके, फिर धीरे-धीरे कहने लगे, "तुम्हें सचमुच मैंने अपनी बेटी की तरह समझा है। तुम्हें यहाँ आये बहुत दिन नहीं हुए, फिर भी मैं ऐसा महसूस करने लगा हूँ; जैसे अतीत काल से मैं तुम्हें जानता हूँ, जैसे तुम से चिर-परिचित हूँ। तुम जानती हो मेरे कोई लड़का नहीं था, उस का अभाव मैंने लता से पूरा करना चाहा, और सच ही वह लड़का बन गयी। लड़कों की भाँति वह स्वच्छन्द और उद्दंड हो गयी। युवकों में अपने माता-पिता के प्रति जो एक प्रकार का असन्तोष होता है, वही शायद उस के दिल में भी है। लड़कियों को अपने माँ-बाप से जो असीम स्नेह होता है, वह उस में शायद नहीं और तुम्हें सच बताऊँ राजो, मैं आज बहुत दिनों से 'लड़की' के अभाव को बुरी तरह अनुभव करता आ रहा हूँ, अपनी बीमारी के आरम्भ ही से मैंने सोचा है कि यदि अन्य व्यक्तियों की लड़कियों की

भाँति उसे भी अपने पिता के लिए स्नेह होता तो क्या मैं अपनी इस बीमारी में इस तरह तड़पता ?"

कुछ देर के लिए मलिक-साहब रुके, फिर बोले, "लेकिन मालूम होता है परमात्मा ने मेरी प्रार्थना सुन ली और मेरी धधकती हुई आत्मा की शांति के लिए उस ने तुम्हें भेज दिया। तुमने मुझे पुत्री का स्नेह दिया है, मैं जिस अभाव से दुखी था, तुम ने उस की पूर्ति की है मैं भी चाहता था, पुत्री के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करना। धूमधाम से तुम्हारा विवाह करना......"

रानी का मुख लाल हो गया और वह जल्दी से उठकर दूसरे कमरे में चली गयी।

मलिक साहब ने उसे फिर आवाज दी। सकुचायी हुई-सी वह आकर निगाहें धरती में गाड़े चुपचाप खड़ी हो गयी।

मलिक साहब ने कहा, "राजो बेटी, जीवन की सचाइयों से आँखें फेर लेने से तो काम नहीं चलता और न संकोच अथवा शर्म से कुछ काम बनता है, बैठ जाओ जरा।"

और रानी वहीं फर्श पर उन के पास बैठ गयी। तब मलिक साहब ने फिर धीरे-धीरे कहना शुरू किया, "मैं चाहता था कि अपने घर तुम्हें प्रसन्न देखूँ, पर अब इस बात का भरोसा नहीं। तुम देख ही रही हो दिन-प्रतिदिन शरीर गिरता जा रहा है, पर मैं अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए सब व्यवस्था कर जाना चाहता हूँ। लता को मैं अपना लड़का ही समझता हूँ। लड़के की हैसियत से मेरी सब जायदाद पर उस का हक है, पर मैं अपनी लड़की को भी असहाय नहीं छोड़ना चाहता। इसीलिए मैंने अपनी वसीयत में अपनी एक चौथाई जायदाद तुम्हारे नाम लिख दी है, तुम्हारी गली के लाला किशोरीलाल मेरे मित्र हैं। उन से मैंने सब बात कह दी है। मेरी इच्छा है, जैसे मैं तुम्हारा विवाह करता, इस तरह मेरे बाद वे......"

रानी ने बीच ही में अवरुद्ध कंठ से कहा, "पिता जी आप कैसे

बातें कर रहे हैं ? आप स्वस्थ हो जायँगे और मैं आप ही की छत्र छाया में सुख पूर्वक रहूँगी....।"

इस से आगे रानी न कह सकी, बिस्तर से सिर लगाकर रोने लगी।

मलिक साहब ने भरे हुए गले से कहा, "बेटा मैं तो चाहता हूँ कि मैं और जीवित रहूँ। तुम से और स्नेह तथा सेवा पाऊँ—पर बेटी, यात्रा तो यह सब को ही करनी है, जो यात्रा के लिए तैयारी न करेगा, उसे जाते समय दुख होगा। मैं पहले से सतर्क रहना चाहता हूँ। कई दिन से मैं यह सब बातें तुम से कहना चाहता था, पर इस तकलीफ ने मुझे कुछ करने ही नहीं दिया। आज ज़रा आराम है। आज ही मैं सब कुछ तुम्हें कह देना चाहता हूँ। इस के बाद कौन जाने शक्ति रहे भी या न रहे।"

यह कहकर मलिक साहब कुछ देर चुप लेटे हुए छत की ओर देखते रहे। फिर करवट लेकर और जरा-सा खाँसकर उन्होंने कहना शुरू किया, "एक बात और है जिसके सम्बन्ध में दो शब्द कहना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। मुझे लता के विषय में भी इन बातों पर विचार करना चाहिए था, पर मैंने किया नहीं। इसी ग़लती ने मेरे और लता के जीवन को बर्बाद कर दिया। वह जाने किस हालत में परदेश में भटक रही है और मैं यहाँ विवश पड़ा तड़प रहा हूँ। अब मैं संकोच से काम न लूँगा और जो कुछ मैं कहना चाहता हूँ, निःसंकोच तुम से कह दूँगा। मेरा यह अनुभव है बेटी कि सब कामों के लिए प्रकृति ने एक समय निश्चित कर दिया है, और किसी काम को समय पर न करने से हम प्राकृतिक नियमों की अवहेलना तो करते ही हैं, साथ ही अपनी शक्तियों का भी ह्रास करते हैं। शादी-विवाह के लिए भी प्रकृति ने समय निश्चित कर दिया है और वह समय वही है जब प्राकृतिक रूप से मानव में इस की प्रेरणा होती है। इस समय की अवहेलना करके प्राकृतिक प्रेरणाओं को शिक्षा, अध्ययन, खेल-व्यायाम और राज-

नीतिक या सामाजिक सरगर्मियों से दबाकर हम बड़े साहित्यिक हो सकते हैं, राजनीतिज्ञ, चित्रकार, संगीतज्ञ, दार्शनिक आदि बन सकते हैं, पर हम अपने शरीर के साथ न्याय करेंगे, ऐसी बात नहीं। अपवाद हर सिद्धान्त के साथ होते हैं, उन की मैं बात नहीं करता, पर साधारणतया हमारी प्रवृत्तियों का रुख पलट जाता है। हमारी दबी भावनाएँ बहती तो हैं, पर उन की धारा प्राकृतिक न होकर अप्राकृतिक हो जाती है और हम वे बातें करते हैं जो साधारणतया मनुष्य नहीं करता। इसीलिए मैं तुम से कहूँगा कि तुम उत्तरदायित्व से बचने की कोशिश न करना; अपना घर बसाना; प्रकृति ने जो-जो उत्तरदायित्व हम पर लाद दिये हैं, उन्हें पूरा करना; स्वप्नों की दुनिया के बदले सत्य की दुनिया में बसना—मेरी बेटी।"

"इस के साथ ही," मलिक साहब ने कुछ साँस लेकर कहा, "एक और प्रश्न पैदा हो जाता है, जिस के उठने का कारण नवीन युग की परिस्थितियाँ हैं। और वह है जीवन-साथी के निर्वाचन का प्रश्न। मैंने ऐसा महसूस किया है कि अपनी रुचि के अनुसार या अपनी इच्छा के अनुसार जीवन-साथी निर्वाचन करने के आधुनिक विचारों ने ही हमारे गृह-जीवन की जड़ों को खोखला कर दिया है। इतने लोग, युवक और युवतियाँ जो बाहर से स्वस्थ और प्रसन्न नज़र आते हैं, भीतर से कितने जर्जर, कितने उदास और व्यथित हैं, यह मैं तुम से क्या कहूँ ! वर्षों तक पास रहकर भी युवक और युवती एक दूसरे को नहीं जान सकते, लेकिन विवाह की भट्ठी जब उन्हें अपनी तेज़ आँच से तपा देती है तो उन के गुण-दोषों का पता चलता है—तभी जो इस आँच को सहने की शक्ति पैदा कर लेते हैं, कुन्दन बनकर चमक उठते हैं और जो नहीं सह सकते, वे जलकर भस्म हो जाते हैं—बेटी, मुझ में अधिक शक्ति नहीं, मैं थक गया हूँ, इस लिए मैं नहीं चाहता कि पुरानी और नयी रीतियों की तुलना करूँ। मैं तुम से केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि दोनों में दोष हैं। मनुष्य को परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को ढाल

लेना चाहिए। जीवन समझौते का नाम है। दुनिया में पग-पग पर परिस्थितियों से समझौता करना पड़ता है और गृहस्थ-जीवन की सफलता इसी पर निर्भर है कि दोनों साथी किस हद तक समझौते से काम करने की प्रवृत्ति रखते हैं। यह भी मैं तुम से कह दूँ कि अपने जीवन को स्वर्ग या नरक बनाना अपने बस की बात है।"

कुछ क्षण के लिए मलिक साहब चुपचाप लेट गये, फिर करवट लेकर बोले, "मैं यह भी नहीं कह सकता कि माँ-बाप अपनी लड़की अथवा लड़के को कुएँ में ढकेल दें। नहीं, उन्हें अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए, अपनी ओर से योग्य साथी ढूँढ़ना चाहिए, अपनी ओर से अपनी सन्तान की रुचियों का खयाल रखना चाहिए। सन्तान से परामर्श भी कर लेना चाहिए और इस के बाद गृहस्थी को सफल बनाना पति-पत्नी का काम है। मैंने लाला किशोरी लाल को समझा दिया है। वह मेरी तरह सब बातों का खयाल रखेंगे, तुम से सलाह भी ले लेंगे। तब बेटी, यदि तुम अपने घर को सुखी बना सकोगी तो मेरी आत्मा को पूर्ण शांति मिलेगी और मेरी बड़ी कामना, जो लता पूरी न कर सकी, तुम पूरी कर दोगी।"

और यह कह कर प्रायः निर्जीव से होकर मलिक साहब चित्त लेट गये। उसी समय रामनारायण ने आकर कहा—"बीबी डाक्टर आये हैं।"

—o—

३१

"तो मैं भी 'आप' कहने के लिए विवश हूँ।"

"न!"

"तुम क्यों ऐसे बुलाती हो?"

"आखिर मैं क्या कहकर पुकारूँ ?"

"अमृतराय या सिर्फ अमृत या सिर्फ राय !"

"अमृत"—लता ने कनखियों से डाक्टर साहब को देखते हुए कहा और उस के स्वर में न जाने कहाँ से इतनी मिठास आ गयी।

डाक्टर साहब हँस दिये, बोले, "मैं भी तुम्हें लता के बदले 'सुधा' कहा करूँगा।"

"सुधा !" लता खिलखिलाकर हँस पड़ी।

उस क्षण डाक्टर साहब के समस्त शरीर में एक विचित्र प्रकार का नशा छाया हुआ था। उन्होंने लता के दोनों हाथ अपनी आँखों पर रख लिये और अपने हाथों से उन्हें दबाते हुए बोले—"क्या कहूँ रानी, सारे शरीर में ठंढक दौड़ गयी है।"

लता सिहर उठी और फिर अचानक उठ खड़ी हुई। बोली, "बैठे-बैठे थक गयी हूँ, चलो ज़रा घूम आयँ।"

डाक्टर साहब अनिच्छापूर्वक उठे। दोनों फूलों की रविशों पर घूमने लगे।

कुछ रूखी-सी होकर लता ने कहा, "तो फिर कब तक आप चलने की सलाह देंगे ?"

डाक्टर साहब लता के चेहरे को निर्निमेष देखते चले जा रहे थे और उन्हें अपने-आप की सुध न थी! एक ही बात वे आज कल सोचा करते थे और वह यह कि किस तरह स्पष्ट शब्दों में लता से कह दें कि लता तुम्हारे बिना मैं जी न सकूँगा। वह उन की ओर झुक चुकी है, यह बात भी वे जानते थे; लेकिन जब तक मार्ग में बंसीलाल की अड़चन मौजूद है, तब तक उन्हें साहस न होता था। वे सफल रहेंगे, इस बात का अभी तक भी उन्हें पूरा विश्वास न हुआ था। लता ठहरी भावुक, भावनाओं की धारा में बह जाने वाली! इस एकान्त में उस का जो उन्माद जाता रहा है, वह नगर में अपने मकान को, कमरे को और वहाँ के वातावरण को देख कर फिर न भड़क

उठेगा, इस का क्या ठिकाना ? और इसीलिए वे चाहते थे कि धर्मशाला ही में अपने भाग्य का निर्णय कर जायँ। उस से पूछ लें कि वे भी कुछ आशा रक्खें या दुराशा के झूले पर ही झूलते रहें।

"आप मेरी ओर इस तरह क्या देख रहे हैं।" लता ने रूखी मुसकराहट से कहा, "मैं पूछ रही हूँ, मैंने जो हल सोचा, आप उस से सहमत हैं या नहीं !"

डाक्टर साहब ने प्रशंसा और आसक्ति की आँखों से देखते हुए कहा, "मैं देख रहा था कि तुम कितनी सुन्दर हो !"

लता मुसकरायी और उन्हें तनिक धकेलते हुए उस ने कहा, "मैं पूछ क्या रही हूँ और आप जवाब क्या देते हैं।"

"क्या पूछ रही हो ?"

"यहाँ से कब तक चलने का विचार है ?"

"मेरे खयाल में तो सितम्बर तक यहीं ठहरना चाहिए।"

"एक महीना और ?"

"अभी ही तो यहाँ की सैर का कुछ आनन्द आयगा—अगस्त में तो वर्षा के मारे नाक में दम रहता है।"

"लेकिन मैं पहले जाना चाहती हूँ।"

"तो मेरी तरफ से कल ही चलो।"

"आप तो नाराज़ होते हैं।"

"नहीं, मुझे तो तुम्हरी प्रसन्नता अभीष्ट है। जैसे कहो वैसे ही करूँगा, लेकिन मैं चाहता हूँ, हम एक महीना अभी यहाँ रहें।"

"रहना तो मैं भी चाहती हूँ और मैंने राजरानी को भी यहाँ आने के लिए लिखा है......"

"राज को ? डाक्टर साहब ने चौंककर पूछा ;

"हाँ।"

"क्यों ?"

"वैसे ही।"

डाक्टर साहब नहीं चाहते थे कि इस एकान्त में कोई बाधा डाले। बड़ी साधना से उन की देवी पसीजी थीं कौन जाने फिर रूठ जायँ। बोले, "राज को पत्र लिख दिया और हम से पूछा तक नहीं।"

"मैं कुछ उदास महसूस कर रही थी, इसलिए बुला लिया।"

"उस की पढ़ाई में हानि होगी।"

"लेकिन अब तो उसे छुट्टियाँ होंगी।"

"यहाँ आकर वह क्या करेगी, वहाँ छुट्टियों में अधिक एकाग्र होकर पढ़ सकती।"

"अब तो मैं लिख चुकी हूँ।"

डाक्टर साहब चुप हो गये। और फिर दोनों कुछ देर मौन घूमते रहे। दोनों एक ही बात के सम्बन्ध में सोच रहे थे, दोनों के दिल में एक ही तरह की धड़कन थी, और यद्यपि भावों का तूफ़ान बातों के रुख से पलट गया था, रुक गया था, पर लता जानती थी कि अब यह और न रुक सकेगा। उसे अपनी दुर्बलता भली-भाँति ज्ञात हो चुकी थी। यह सूनापन, यह एकान्त और लहरों में बह जाने वाले दो युवक हृदय! चलते समय उस के पिता ने उसे जो चेतावनी दी थी, वह उसे याद आ रही थी। न, वह यह सब कुछ न होने देगी। वह वापस चली जायगी और अमृतराय के सम्बन्ध में अपने पिता को सब कुछ बता देगी। वह कह देगी, वह हार गयी है। और बंसीलाल की लम्बी बीमारी का बोझ उठाने के योग्य वह नहीं है। और फिर यदि उस के पिता मानेंगे तो—। उस दिन डाक्टर साहब ने उस का हाथ चूम लिया था और आज—आज तो वे और भी आगे बढ़ गये थे। उसे अपने आप पर ही संयम नहीं है। यदि वह उठ खड़ी न होती तो न जाने आज क्या हो जाता।

और डाक्टर साहब—वे भी अपने दिल की इसी धड़कन के सम्बन्ध में सोचते थे। लेकिन लता की भाँति वे रुक नहीं जाना चाहते थे। वे तो बह जाना चाहते थे, प्रेम के अथाह सागर में डूब जाना

चाहते थे, तह तक पहुँच जाना चाहते थे। पर वे जानते थे कि लता रुक गयी है। वे तो आज उस से प्रतिज्ञा ले लेना चाहते थे। वापस—वापस वह लता को न जाने देंगे—न जाने देंगे—तब तक—जब तक उन की तपस्या का वरदान उन्हें नहीं मिल जाता।

दोनों चुपचाप आकर कुर्सियों पर बैठ गये। नौकाएँ डूबते-डूबते किनारे पर आ लगी थीं। पक्षी जाल में फँसते-फँसते उड़कर डाली पर जा बैठे थे।

—०—

३२

काफ़ी देर तक डाक्टर से बातें करने के बाद उस दिन जब रानी उन्हें विदा करके लौटी थी तो उसी वक्त उस ने निश्चय कर लिया था कि जो भी हो, वह लता को ले आयगी।

इन चन्द दिनों में वह इस बात की बाट देखती थी कि मलिक साहब की तबीयत जरा सम्हले तो वह रामनारायण से सलाह करके दो-तीन दिन के लिए स्वयं धर्मशाला जाय। और आज इतने दिन प्रतीक्षा करने के बाद उस ने महसूस किया था कि वास्तव में लता के आये बिना उन का स्वास्थ्य सुधरना यदि असंभव नहीं, तो कठिन अवश्य है। कमरे के फ़र्श पर बैठी वह यही सोच रही थी।

ज्यों-ज्यों दिन बीत रहे थे, मलिक साहब का स्नेह उस के प्रति बढ़ता जा रहा था, लेकिन उसे प्रतीत होता था जैसे वे उस से स्नेह करके अपने हृदय को शांति देना चाहते हैं, पर दे नहीं पाते। लता का नाम सुनते ही वे मुँह फेर लेते या बात का रुख बदल देते या एक लम्बी साँस छोड़ देते, पर इस के साथ रानी महसूस करती कि उस का ज़िक्र आने से जैसे उन्हें कुछ सान्त्वना मिलती है।

वह जानती थी कि जब वह लता की कठिनाइयों का वर्णन करती है तो वे छत की ओर अनिमेष दृगों से देखते हुए चुपचाप सुनते रहते हैं। और आज वह जान गयी थी कि यदि उन की बातों पर न जाकर वह पहले ही लता को लिख देती अथवा जाकर बुला लाती तो अब तक मलिक साहब अच्छे हो गये होते।

जैसे रूठकर बच्चा खाना-पानी छोड़ देता है और बीमार पड़ जाता है उसी तरह वृद्ध पिता लड़की के व्यवहार से दुखी होकर बीमार पड़ गया था। दवा की उसे परवाह न थी। खाने की उसे चिन्ता न थी और जैसे बीमारी को उस ने आप बुलाया था। डाक्टर ने कह दिया था कि यदि यही हालत रही तो वे बच न सकेंगे। जो रोगी दिन-रात मौत के नाम की माला रटता हो, उस पर औषधियाँ भी क्या असर करेंगी।

इन दिनों रानी ने भली भाँति उन का, उन के दिल में उठने वाले उद्वेगों का अध्ययन किया था, उन के हृदय की गहराइयों को टटोला था और वह समझ गयी थी कि लता के चले जाने के बाद जीवन में मलिक साहब के लिए कोई दिलचस्पी न रह गयी थी—वह रहे तो उन्हें सुख नहीं, जाय तो दुख नहीं! किन्तु यह लता के नाम पर क्रोधित हो जाना, यह उस का नाम आते ही चिढ़ जाना क्या है? रानी मन-ही-मन हँसी—जहाँ स्नेह गहरा होता है, वहाँ ऐसा ही होता है। मनुष्य उस से ही लड़ता है, जिसे वह अधिक प्यार करता है, उसे ही गालियाँ देता है जिस के लिए वह जान भी दे सकता है।

दरवाजा खुला और रामनारायण ने एक पत्र लाकर रानी के हाथ में रख दिया "अभी डाकिया लाया है।" कहकर वह चला गया।

पत्र उस के नाम का ही था। छात्रावास से होकर आया था, शायद घर भी गया था। कई मोहरें लगी थीं। रानी ने हैरानी से पता देखा, उस का ही था, लिखने वाले के खत से वह अपरिचित थी। लीला का तो यह नहीं है, फिर किस का हो सकता है? उत्सुकता के साथ

उस ने लिफ़ाफ़ा फाड़ डाला। खत पढ़ा और उस की आँखें चमक उठीं। उसी तरह ख़त लिये वह रसोई-घर की ओर चल दी। रामनारायण वहाँ नहीं था, शायद पानी लेने नीचे गया था। जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर कर वह नीचे गयी। रामनारायण पानी भर चुका था। घड़ा उठाना ही चाहता था कि रानी ने कहा, "लता बहन की चिट्ठी आयी है।"

"रानी बिटिया की?"—रामनारायण घड़ा वहीं छोड़ आँगन में आ गया—"कुशल से तो है, अच्छी तो है वह?" और बूढ़े नौकर के चेहरे पर उल्लास तथा उत्सुकता की कई रेखाएँ दौड़ गयीं।

रानी ने कहा, "जो डाक्टर साहब उन के साथ गये थे, वे कुछ बीमार हैं। मेरे भाई की हालत तो तुम जानते ही हो कैसी है। दो रोगियों के साथ अकेली हैं वे, मुझे बुलाया है।"

"तो फिर चली जाओ न बीबी, मैंने तो पहले ही कहा था। दो-दो बार तो शरीर का रक्त दिया बिटिया ने, फिर—न जाने कहाँ-कहाँ भटकी होगी, स्वास्थ्य तो ठीक है उसका?"

"वैसे तो कुछ नहीं लिखा लेकिन तुम जानते हो बीमारों के साथ देख-भाल करने वाले भी बीमार हो जाते हैं। मैं तो स्वयं चाहती हूँ चली जाऊँ, पर पिता जी......."

"उन की बीमारी बिटिया रानी का न होना ही है, बीबी! वह न आयगी तो यह स्वस्थ न होंगे।"

"मैंने स्वयं यही महसूस किया है बाबा और मैं कई दिन से सोचती हूँ कि जाकर बहन को ले आऊँ, पर......"

"तुम सोच न करो बीबी, मैं सब सम्हाल लूँगा, तुम अधिक दिन न लगाना। देख लेना उस के आते ही इन की बीमारी ठीक हो जायगी।"

"मैं आज ही चल दूँगी।"

और यह कहकर, राजरानी जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

तभी रामनारायण ने कहा, "तुम रुकना नहीं बीबी, प्रबन्ध सब हो जायगा।"

—०—

३३

अपने बिस्तर पर लेटे-लेटे लता पुस्तक पढ़ रही थी—देखने से तो ऐसा ही प्रतीत होता था। लेकिन उस की आँखें ही पुस्तक पर थीं, मस्तिष्क तो किसी दूसरी ओर लगा हुआ था। जब से उस ने पढ़ना शुरू किया था, एक ही पृष्ठ खुला था। जितनी एकाग्रता से वह पुस्तक पढ़ती हुई मालूम होती थी, उस से कहीं अधिक एकाग्रता से वह दूसरी समस्या पर विचार कर रही थी। एक बार एक हल्की-सी मुसकान उस के ओठों पर फैली, जैसे पुस्तक में लिखी किसी बात पर वह मुसकरायी हो, पर वास्तव में यह मुसकान तो गर्व की मुसकान थी!

डाक्टर अमृतराय ने लता के प्रति अपने अनुराग के सम्बन्ध में उस से जो कुछ कहा था, उस पर उस को इतना गर्व न था। कभी जगत ने भी ऐसे ही, बल्कि इस से भी अधिक प्रेम भरे शब्दों में अपनी मुहब्बत का विश्वास दिलाया था, फिर बंसीलाल ने भी जोरों से अपनी मुहब्बत की वकालत की थी, उसे गर्व तो इस बात का था कि पहले दो अवसरों की भाँति इस बार वह भावुकता की धारा में वह नहीं गयी, बल्कि इस तूफानी नदी के किनारे खड़ी ही होकर सोच सकी है कि वह अपनी नौका उस में छोड़ दे या नहीं। उस ने संयम से काम लिया है। वह कई बार डाक्टर साहब के कमरे में गयी। उस ने इकट्ठे उन के साथ एक मेज पर बैठकर खाना खाया, शतरंज और कैरम भी खेला, पर क्या मजाल जो जरा सी भी दुर्बलता उस ने अपने मन में आने दी हो? वह मस्तक पर तेवर चढ़ाये रही हो, यह बात नहीं। वह

मुसकराती भी रही, इस मुसकान में भी एक शान थी, एक बेपरवाही थी, हारना या हथियार डालना वहाँ नहीं था और यही कारण था कि डाक्टर साहब को उसे छूने तक का भी साहस न हुआ था और इसी बात पर वह मुसकरा दी थी।

उस ने निश्चय कर लिया था कि वह अपनी दृढ़ता को बनाये रक्खेगी। कई दिनों से वह अनुभव कर रही थी कि वह गिर रही है और यदि न रुकेगी तो गिर जायगी और इसी लिए संयम की अपनी समस्त शक्तियों से काम लेकर वह रुक गयी थी। राजरानी आ जाय फिर डर न रहेगा। राज की उपस्थिति में इस जगह का एकान्त दूर हो जायगा और तब किसी अनुचित बात के हो जाने का उसे भय न रहेगा। तब तक वह चाहती थी, दृढ़ बनी रहे।

तभी डाक्टर अमृतराय चुपचाप आकर बरामदे में दरवाजे के पास खड़े हो गये।

लता उसी तरह किताब पर दृष्टि जमाये बैठी रही। डाक्टर साहब ने फैल्ट को उतारकर हाथ में ले लिया और जरा-सा खाँसे।

लता ने वहीं पुस्तक पर सिर झुकाये उन की ओर देखा। उस का दिल धँस-सा गया। वह जल्दी से उठ बैठी। डाक्टर साहब का चेहरा उतरा हुआ था और आँखें सुर्ख थीं; ऐसा मालूम होता था जैसे सारी रात वे सोये न हों या कुछ देर पहले खूब रोते रहे हों।

अवरुद्ध कंठ से डाक्टर साहब ने कहा, "रानी, मुझे आज्ञा दो, मैं वापस लाहौर जाऊँगा।"

लता बोली नहीं, निर्निमेष उन के चेहरे की ओर देखती रही।

"मैं आज जा रहा हूँ और तुम से आज्ञा लेने आया हूँ।"

लता फिर भी कुछ न कह सकी। उस की आँखों के सामने पिछले चन्द महीनों के सारे दृश्य घूम गये—किस प्रकार उन्होंने उस के लिए अपने ऐस-आराम को तिलांजलि दी, किस तरह वे उस के साथ देश-विदेश की ठोकरें खाते फिरे, किस तरह उस के संकेत मात्र पर

जान तक निछावर करने को तैयार रहे और अब वे जाना चाहते थे—लता जानती न थी क्यों ? उसे अपने संयम का बाँध टूटता हुआ जान पड़ा।

डाक्टर साहब ने कहा, "रानी मैं आज चला जाऊँगा।" और जैसे उन का जी भर आया और आँसुओं के आवेग को रोकने के लिए रूमाल से मुँह छिपाये वे बरामदे में जा खड़े हुए।

अब लता बैठी न रह सकी। वह पलंग से उतरी, बरामदे में आयी और उन का हाथ थामकर वह उन्हें फिर कमरे में ले गयी।

डाक्टर साहब ने शून्य में देखते हुए कहा, "रानी, मुझे जाने ही दो, मैं वहाँ जाकर दूसरे डाक्टर को भेज दूँगा।"

लता ने उन्हें कुर्सी पर बैठा दिया, उस का गला भर आया, पर वह बोल न सकी, उसने केवल एक बार कहा।

"डाक्टर साहब !"

डाक्टर साहब बोले नहीं, उन की आँखें दीवार पर जमी रहीं और आँसुओं की दो बूँदें कोरों से होकर बह चलीं।

लता आतुर हो उठी, उस का धैर्य, उस का संयम, उस की सब दृढ़ता जैसे आँसुओं की बूँदों में बह गयी। उस ने उन के सिर को अपने सीने से लगा लिया और साड़ी के छोर से उन की आँखें पोंछने लगी। उस का गला रुँध गया। उस ने धीरे से कहा, "डाक्टर साहब, क्यों क्या बात है। और उस की अँगुलियाँ धीरे-धीरे उन के बालों को सुलझाने लगीं।

डाक्टर साहब चुप बैठे रहे। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं, उनकी नस-नस में एक मादक नशा-सा भर गया। उन्होंने चाहा आयु पर्य्यन्त उन का सिर लता के सीने से लगा रहे, उन के कान उस के हृदय के स्पन्दन को सुनते रहें और उन के बाल उस की कोमल अँगुलियों के स्पर्श को महसूस करते रहें।

लता ने प्यार से उन के बालों पर हाथ फेरकर कहा, "डाक्टर

साहब, मुझे छोड़कर चले जाओगे इस विजन में, इस एकान्त में, आखिर क्यों ?"

अमृतराय बोले, "तुम्हारी नज़रों से गिरकर लता मैं एक निमिष भी यहाँ रहना नहीं चाहता।"

"नज़रों से गिरकर !" लता ने विस्मय से पूछा।

"हाँ नज़रों से गिरकर !"—डाक्टर साहब बोले, मैं जानता हूँ, मैं तुम्हारी नज़रों से गिर गया हूँ। इन चन्द दिनों में तुम मुझ से जिस तरह खिंची-खिंची रही हो, जिस तरह तुम ने मुझ से दूर रहने की चेष्टा की है, मैं सब जानता हूँ। मैं समझता हूँ तुम्हारी दृष्टि में मेरी वह प्रतिष्ठा अब नहीं रही। मैंने तुम्हें जिस घड़ी अस्पताल में क्षत-विक्षत दशा में देखा था, उसी समय मेरे हृदय में लता, तुम्हारे लिए असीम श्रद्धा और अनुराग पैदा हो गया था। लेकिन मैंने तुम पर कभी प्रकट नहीं होने दिया कि मैं तुम से कितनी मुहब्बत करता हूँ। हो सकता है, मैं यह रहस्य दिल में लिये हुए ही मर जाता, पर अब जब तुम ने सहानुभूति की दृष्टि से देखा, मेरे अन्तर में दबी हुई आग को भड़का दिया, तुम सब कुछ जान गयीं—अब यह अवहेलना सही नहीं जाती। मुझ से तुम आयु भर बात भी न करतीं, बुलातीं भी न तो भी मैं इसी आशा में कि कभी तो मेरी मूक तपस्या का फल मिलेगा, आयु-पर्य्यन्त तुम्हारे साथ रह सकता था, पर अब जब मुझे मालूम हो गया है कि तुम मेरे दिल के भावों को जान गयी हो और उन्हें जानकर मुझ से उपेक्षा करने लगी हो, तो मैं यहाँ एक पल भी नहीं रहना चाहता।"

लता का दिल जोर-जोर से धड़क रहा था। शब्द उस के ओठों तक आकर रुक जाते थे, वह चाह रही थी कि अपना दिल, अपने समस्त उद्गार डाक्टर अमृतराय के सामने खोलकर रख दे। उन के पाँवों से लिपट जाय और उन्हें बता दे कि वह तो उन की ही है, बहुत समय से है, किन्तु उस की बोलने की शक्ति ही उसे जवाब दे रही थी। कुछ भी कह सकने की हिम्मत वह अपने में न पा रही थी। हाँ, उस

की बाजू की गिरफ़्त और भी मजबूत होती जा रही थी, वह उनके सिर को जैसे अपने वक्षस्थल में छिपा लेना चाहती थी और उसके हाथ की अँगुलियाँ जैसे उनके बालों में उलझ-उलझ जाती थीं।

डाक्टर साहब कह रहे थे, "मैं यहाँ से जाकर भी सुखी न रह सकूँगा, दिल की आग मुझे धीरे-धीरे जलाती रहेगी, तिल-तिल करके दीपक की भाँति मैं जलता रहूँगा, किन्तु मैं तुम्हारी उपेक्षा की दृष्टि तो न देखूँगा, तुम्हारी अवहेलना का शिकार तो न बनूँगा।"

लता बोली नहीं, उसकी आँखें छलछला आयीं। उसने ठोड़ी पकड़कर डाक्टर साहब के सिर को ऊपर उठाया और उनकी आँखों में आँखें डालकर अवरुद्ध कंठ से केवल इतना कहा, "डाक्टर साहब!"

और एक निमिष के लिए वे भूल गये कि वे कहाँ हैं, संसार कहाँ है? एक दूसरे के आलिंगन और फिर विस्मृति की गोद में वे क्षण भर के लिए जा पड़े। मस्तक उनका लता ने चूम लिया और दूसरे क्षण वह निश्चेष्ट-सी बिस्तर पर जा पड़ी। डाक्टर साहब भी आँखें बन्द किये कुर्सी पर लेट गये। कहाँ था लता का वह संयम! इसके विपरीत वह चाहती थी कि जी-जान से डाक्टर अमृतराय पर निछावर हो जाय—वहीं लेटे-लेटे आँखें बन्द किये, उसने धीरे से पूछा, "डाक्टर साहब, मैं आपसे नफ़रत करती हूँ?"

डाक्टर साहब नहीं बोले। कमरे में निस्तब्धता छा गयी। केवल रोशनदान में कबूतरों का एक जोड़ा प्रेम की स्निग्धता में 'गटरगूँ' 'गटरगूँ' कर उठा। और बाहर बन्हे की डाली पर एक नीलकण्ठ आकर अपनी मीठी तानें अलापने लगा।

लता सोच रही थी, किस तरह बात शुरू करे, पर कुछ सूझ न पड़ता था। तभी साथ के कमरे में बंसीलाल कराह उठा और लता को जैसे कुछ कहने को मिल गया।

उठकर उसने कहा, "डाक्टर साहब, मैं अब वापस जाना

चाहती हूँ, वहाँ लाहौर में पिता जी की इच्छा से हम दोनों आराम से जीवन बिता सकते हैं! वे तो चाहते हैं मैं ज्यादा देर इस तरह भटकती न फिरूँ। आप को पाकर उन के उल्लास का ठिकाना न रहेगा, लेकिन सोचती हूँ कि बंसीलाल का क्या किया जाय। इस मांस-पिंड को वापस ले जाया भी जायगा या नहीं? आप ज़रा चलकर देखें तो सही उस की हालत कितनी खराब हो गयी है। उसके शरीर पर घाव-ही-घाव हो गये हैं, मुझे तो उस की दशा देखकर डर लगता है।" और यह कहते हुए लता जैसे काँप उठी—बंसीलाल की दशा की कल्पना ही से।

लता उठी और बंसीलाल के कमरे को चली। डाक्टर साहब भी उसके पीछे हो लिये।

वहाँ चारपाई पर बंसीलाल पड़ा था। नर्स तो कई दिन हुए चली गयी थी और बंसीलाल की देख-भाल नौकर ही करता था और जैसी देख-भाल वह करता था, वह इसी से सिद्ध है कि जो बंसीलाल यहाँ आया था, उसमें और इस बंसीलाल में आकाश-पताल का अंतर था। बंसीलाल जब यहाँ लाया गया था तब भी अपाहिज ही था, किन्तु उस का जो भी अंग था, भरा हुआ था, किन्तु अब बार-बार चारपाई से गिर पड़ने के कारण उस का शरीर छिल गया था, शरीर पर मांस के बदले हड्डियाँ-ही-हड्डियाँ दिखायी देती थीं। नाक बैठी हुई, गाल पिचके हुए, बाल रूखे, आँखें गढ़ों में धँसी हुई, पतली-पतली टाँगें और बाज़ू मुड़े हुए—बंसीलाल का यही अब रह गया था।

डाक्टर साहब ने कहा, "तुम ने व्यर्थ ही इसे इस नरक में रखा है, रानी।"

पहले यदि डाक्टर साहब ऐसा कहते तो शायद लता को बुरा लगता, अपनी धुन में वह उन की बात पर कान न देती, पर अब तो वह स्वयं ऊब गयी थी। उसे डाक्टर साहब का यह वाक्य बुरा नहीं लगा। उस ने कहा, "डाक्टर साहब, सत्य ही इसे इस दशा को पहुँचा-कर मैंने बड़ा भारी पाप किया है और इसे नरक में रखकर मैं और भी

बड़ा पाप कर रही हूँ। कहीं यदि विष मिल जाय तो सच कहती हूँ कि अभी इस की इस दयनीय दशा का खात्मा कर दूँ" फिर अचानक पलटकर उसने डाक्टर साहब से पूछा, "आपके पास तो कोई-न-कोई विष अवश्य होगा?"

डाक्टर साहब उस समय कुछ और ही सोच रहे थे। लता के स्वभाव के इस परिवर्तन पर विचार कर रहे थे, क्या यह वही लता है जिसे उन्होंने अस्पताल में देखा था?

लता ने फिर अनुनय से पूछा, "डाक्टर साहब, कोई विष न होगा आप के पास? जिस से इसे इस नरक से निकाला जा सके। देखिए तो सही, इसकी दशा कितनी दयनीय है!"

और डाक्टर साहब को चुप टकटकी बाँधे बंसीलाल की ओर तकते हुए देखकर लता जल्दी-जल्दी उन के कमरे में गयी और अलमारी खोलकर उनकी दवाइयों की शीशियों में से एक उठा लायी—उस पर लिखा हुआ था 'पोटाशियम साइनाइड'!

शीशी दिखाते हुए उसने डाक्टर साहब से पूछा, "डाक्टर साहब, इसका एक चम्मच काफी होगा?"

डाक्टर साहब दिल-ही-दिल में विषाद से हँसे—एक चम्मच! इस की दो रत्तियाँ मनुष्य को सदैव के लिए मौत की गोद में सुला सकती हैं।

लता ने विष को चमचे में डाला। उस वक्त बंसीलाल ने अपनी करुण आँखों से लता की ओर देखा और हकलाते हुए एक बार 'लदा' 'लदा' कहा।

लता का हाथ निमिष भर के लिए काँपा, किन्तु उसने जी कड़ा करके एक हाथ से उसका मुँह खोलकर दूसरे हाथ से चम्मच उस में उँडेल दिया और धीरे से कहा, "सो जाओ बंसीलाल! मैं ही तुम्हें इस नरक में खींचकर लायी हूँ, मैं ही तुम्हें इससे मुक्त करती हूँ।"

जिह्वा पर विष के पड़ते ही बंसीलाल छटपटाया, उसने आँखें फाड़-

कर एक बार चारों ओर निगाह दौड़ायी। डाक्टर साहब पर उस की निगाहें जम गयीं। चेहरा उस का नीला पड़ गया और फिर लता को देखते-देखते उसकी साँस उखड़ी और दुखी आत्मा छटपटाते हुए शरीर से निकल गयी।

लता ने बायें हाथ से उसकी भयानक आँखों के पलक बन्द कर दिये। उसकी आँखों में आँसू छलक आये। क्षण भर के लिए उसकी आँखों के सामने सारा अतीत घूम गया। उसने घूमकर देखा, डाक्टर साहब वहाँ नहीं थे और नीचे खड्ड से राजरानी एक बैग उठाये चढ़ी आ रही थी। लता ने साड़ी के छोर से अपने चेहरे को ढाँप लिया और वहीं कुर्सी में धँसकर रोने लगी।

—०—

३४

सूरज अपनी अन्तिम साँसों को लिये हुए विदा हो रहा था। और उसकी पीली-ज़र्द कान्ति ऊपर दायीं ओर की पहाड़ी के वृक्षों को भी जैसे उदासी के रंग में रँग रही थी। नीचे खड्ड में कुछ अँधेरा-सा छा गया था, दाह-कर्म-संस्कार कराने वाले आचार्ज (आचार्य) ने जाती हुई धूप की ओर एक छिछलती हुई दृष्टि डालकर अन्तिम पिंड दिया और फिर डाक्टर साहब को उठने का इशारा करते हुए कुछ सूखी पतली लकड़ियों को घी में भिगोकर और उन पर मुश्क-काफ़ूर रखकर चिता में आग लगा दी, दूसरे क्षण भरभराकर ज्वालाएँ आकाश की ओर उठने लगीं और जलती हुई लकड़ियों के चटख़ने की आवाज़ से घाटी की निस्तब्धता भंग हो गयी।

मनुष्य और उसकी महत्वाकाँक्षाएँ! सफलताओं पर उस का गर्व! सब झूठ! सब असत्य! जीवन, जिसका अन्त मृत्यु है, स्वयं क्या एक

महान असफलता नहीं ? लाहौर से मीलों दूर यह पहाड़ी प्रदेश, उसके एक कोने में गहरा ठंडा और सुनसान खड्ड, उस में यह श्मशान भूमि, वहीं बना हुआ टीन का एक ऊँचा, लोहे की चार मोटी सीखों के सहारे खड़ा, छप्पर और उस के नीचे जलती लकड़ियों का एक अम्बार—यह था, जो बंसीलाल को अन्त में प्राप्त हुआ।

संध्या का अँधेरा खड्ड में पूरी तरह छा चला। कभी भड़कते कभी ठंढे होते और कभी हवा के झोंकों से इधर-उधर चारों तरफ़ उड़ते हुए शोलों की रोशनी में, छप्पर से दूर हटकर, एक बड़े से पत्थर पर लता बैठी थी। आग का प्रकाश उसके व्यथित और विरक्त-उदास चेहरे पर प्रतिबिम्बित हो रहा था। और वह जैसे अपने समस्त जीवन का प्रतिबिम्ब इस आग के पर्दे पर देख रही थी। सब घटनाएँ एक-एक करके उस के सामने आयीं और सब मानो आकर अन्त में इस अग्नि में समा गयीं—जीवन का एक-एक क्षण क्या इसी अन्तिम क्षण में विलीन होने के लिए निरन्तर नहीं भागा करता—और मनुष्य अपने दिल में क्या समझता है ? कितना विराट धोखा है ? आशाओं और आकाँक्षाओं, सफलताओं और असफलताओं, मजबूरियों और लाचारियों का यह विचित्र इन्द्रजाल ! बंसीलाल ठगा गया, वह भी ठगी जायगी। सब ठगे जाते हैं। एक पर्दा है जो उन्हें इस इन्द्रजाल की वास्तविकता को देखने से वंचित रखता है। और मानव इस धोखे ही में खुश है, जैसे बच्चा कृत्रिम खिलौनों को ही पाकर प्रसन्न रहता है, समझता है कि उसने असली चीजें पा ली हैं। एक महान् विरक्ति से लता का जी भर आया। उसे इच्छा हुई कि अभी अपने आप को इस अग्नि के अर्पण करके इस महान् प्रवंचना का ख़ात्मा कर दे।

एक ओर बैठे हुए डाक्टर अमृतराय पर लता ने दृष्टि डाली, वे सामने चुपचाप बैठी हुई रानी को अनिमेष दृगों से देख रहे थे। इन कुछ एक घंटों में ही लता ने उनके स्वभाव में अचानक पैदा हो जाने वाले अंतर को देख लिया था। उनमें ही क्या, लता ने अपने-आप में भी

एक महान् अंतर पाया था। मौत ने एक झटके से ही मानो उसे दोनों कंधों से पकड़कर झकझोर डाला था मानो कह दिया था—पागल बार-बार ठगे जाने से लाभ ? क्या एक बार धोखा खाकर तेरी आँखें नहीं खुलीं ? एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, तीसरी के बाद चौथी चीज के लिए लालायित होते रहना और इस तरह सदैव अपने आपको भड़कती हुई ज्वाला में जलाते रहना—यह तो मूर्खता है। और लता ने अपनी दृष्टि हटाकर जलते हुए शोलों में गड़ा दी। तभी जैसे उसने जाना कि एक ही चीज के लिए जीना और मरना, यही ठीक है, इस इन्द्रजाल को तोड़ने का यही साधन है, निरन्तर भटकना तो इस जाल में और भी फँसते जाना है, इसे अपने चारों तरफ और भी बुनते जाना है। तब बंसीलाल का चित्र और भी उज्ज्वल, और भी साफ़ होकर उसे ज्वालाओं पर खेलता हुआ दिखायी दिया। क्या मरकर भी उसने मौत पर विजय नहीं पायी ? धोखा खाकर भी उसने प्रवंचक को धोखा नहीं दिया ?

दायीं ओर छप्पर से ज़रा दूर ऊँचे पर बैठे हुए डाक्टर अमृतराय को इन ज्वालाओं में लता की बेवफ़ाई साफ़ लिखी हुई दिखायी दी। उन्हें आभास हुआ कि जिस चीज़ को उन्होंने सोना समझा था, वह तो पीतल भी नहीं। विमला, फ़्लोरा और लता. इन तीनों में कोई विशेष अंतर नहीं। जिस प्रेम की नींव इतनी कच्ची है, उस पर वे अपने जीवन का भव्य प्रासाद कैसे बनायें ? लता के हाथों उन्होंने बंसीलाल की मृत्यु की कल्पना कभी न की थी और फिर अनुरक्ति के उस क्षणिक आवेग में ! यदि लता ठंडे दिल से सोचकर इस परिणाम पर पहुँचती तो शायद उन्हें तनिक भी दुख न होता। वे स्वयं अपने हाथ से उसे विष ला देते, उसे जीवित रखने के पक्ष में वे पहले ही कब थे ? पर क्षणिक आवेग में इस तरह उसकी हत्या, जिसे जीवित रखने के लिए वह मरने तक को तैयार थी ! कैसी विडम्बना है ! ऐसा तो उन्होंने स्वप्न में भी न सोचा था। वे तो पहले सोचा करते थे कि वे अपने प्रयत्नों में असफल

रहेंगे, लता जैसी वफ़ादार युवती वंसीलाल का नाम जपती रहेगी और अगर कहीं लता उन्हें अपने से परे ही रखती तो शायद उन्हें कुछ संतोष रहता, वे बेचैन होते, तड़पते, रूठते, लेकिन उस का दरवाज़ा छोड़कर कहीं न जाते। अतृप्ति का ही दूसरा नाम मुहब्बत है, अतृप्ति ही प्रेम को आकाश की ऊँचाइयों पर पहुँचा देती है, उसे सुन्दर मनोहर पंख प्रदान करती है, उसे उज्ज्वल तथा पवित्र रूप दे देती है, और तृप्ति—वह तो उसे वासना, घृणा और उपेक्षा की नीचाइयों में ला फेंकती है। वे सोचा करते थे—वंसीलाल बहुत दिन तक जीवित न रहेगा। उसकी मृत्यु के बाद लता बहुत समय तक उस के ग़म में व्यथित रहेगी और तब वे अपने प्रेम, अपने निष्कपट भाव, अपने बलिदान से उसे अपनी बना लेंगे। उस नींव पर बना हुआ प्रेम का दुर्ग कितना मज़बूत होता, पर अब तो वह नींव ही कच्ची निकली। फ़्लोरा, विमला और लता के इन चित्रों में उन्हें फिर उसी सीधी-सादी और भोली-भाली देहाती गिरिजा की याद हो आयी और उन्होंने सोचा— काश! मैं सुन्दरता, शिक्षा और लालित्य के पीछे न पड़ता। तभी रानी उन के सामने आयी और चारों ओर से निराश उनका हृदय कुछ सहारा पाने का आश्रय तकने लगा। इस लड़की में कुछ ऐसी बात थी जो उन तीनों में न थी, वह बहुत कुछ गिरिजा से मिलती थी। उसकी आँखों में सदैव उन्हें ऐसा निमंत्रण मिला जो संकोच के पर्दे में ढका हुआ था, कुछ ऐसा आत्म-समर्पण जो लज्जा के आवरण में लिपटा हुआ था! कुछ ऐसी चंचलता जिस ने गम्भीरता का बाना पहन रखा था। अस्पताल की पिछली सब घटनाएँ उन के सामने घूम गयीं और इस अनाथ के लिए उनके हृदय में हमदर्दी का एक समुद्र उमड़ आया। आते ही वंसीलाल की मृत्यु का समाचार सुनकर जब रानी सन्न खड़ी रह गयी थी तो उस समय उन्हों ने जो सान्त्वना दी थी, उसमें जितनी स्निग्धता थी, इसे उन्होंने भी महसूस किया था और शायद रानी ने भी!

चिता के दूसरी ओर चुपचाप बैठी रानी सुटर-सुटर इस ज्वाला के

पर्दे को तक रही थी। कुछ देर में यह अग्नि भी शांत हो जायगी और इस के साथ ही उसके स्नेह का अन्तिम सहारा भी! सहारा कहाँ था? सहारे की छाया मात्र थी, अब इस अग्नि में उसका भी अस्तित्व मिट जायगा और वह पूर्ण रूप से अनाथ, निराश्रित हो जायगी। मृत-प्रायः तो वह था ही, पर फिर भी नाम लेने को उसका भाई तो था, वह कह तो सकती थी—मेरा भी भाई है, रोगी ही सही, बीमार ही सही, पर जीवित तो है। उसके स्वस्थ होने की कल्पना करके वह आशा के पंखों पर तो उड़ सकती थी, पर अब......और जैसे उसका गला रुद्ध हो जाता, आँखें छलछला आतीं और अग्नि की ज्वाला उसे झिलमिलाती हुई, थरथराती हुई प्रतीत होती, पर वह बरबस आँसुओं को रोक लेती।

आज सुबह जब उसने आते ही अपने भाई के शव को देखा—सूखी हड्डियों की पिंजर देह, लकड़ियों की भाँति पतली तुड़ी मुड़ी टाँगें और भुजाएँ, पिचके गाल, उभरे जबड़े, दन्तहीन खुला करुण मुख—तो वह कुछ देर चुप खड़ी रही थी। रोयी नहीं, चिल्लायी नहीं, बेहोश भी नहीं हुई, कुछ विचित्र प्रकार की विस्मृति में गुम होकर भौंचक्की-सी खड़ी रही थी। जब लता उसे देखकर एकदम सिसकियाँ लेती वहीं-की-वहीं बैठ गयी थी तो स्वयं उसने उसे सान्त्वना दी थी, पर जब डाक्टर ने आकर समवेदना भरे स्वर में कहा था, "तुम कुछ ग़म न करना रानी, तुम्हें कोई कष्ट न होने पायेगा, इस बात की व्यवस्था मैं कर दूँगा," तो न जाने क्यों वह फफक-फफककर रो उठी थी। इस वक्त वह बात याद आते ही उसकी आँखें फिर भर आयीं। डाक्टर साहब के उस स्वर में क्यों कुछ स्निग्धता थी, वह समझ न सकी, उसे क्यों रोना आ गया, यह भी उसने न जाना और क्यों उस करुण परिस्थिति में उसके मन में इस सहानुभूति पर आनन्द की एक हल्की-सी रेखा उठकर मिट गयी, उसे मालूम न हुआ। तब क्या उसने डाक्टर को समझने में ग़लती की थी...?

तभी चिता की ओर आँख भरकर देखते हुए सेठ रामसिंह ने दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा—"इस नश्वर जीवन का क्या भरोसा भाई, किसी दिन हम सब को भी चलना है।" और यह कहते हुए घुटनों पर हाथ रखकर वे उठे और डाक्टर साहब की ओर देखकर बोले—"चलो भाई!"

फिर धीरे-धीरे जैसे मौत की निस्तब्धता को भंग करते हुए सब लोग ऊपर की ओर चढ़ने लगे।

—०—

३५

लता सो रही थी। इतने दिनों की व्यस्तता, व्यग्रता और बेचैनी के बाद जैसे आज उसकी नींद के बन्धन ढीले हो गये थे। अटेची केस पर सिर रखे और बर्थ पर टाँगें पसारे वह बेहोश-सी पड़ी थी। बालों की शुष्क लटें बर्थ के नीचे लटक गयी थीं। साड़ी का आँचल अटेची केस पर खिसक गया था और वेदना भी जैसे पलकों की चादर ओढ़कर गहरी नींद में सो गयी थी। कल सारी रात उसने आँखों में ही काट दी थी। श्मशान भूमि से आने के बाद, सब के सो जाने पर वह चुपचाप बंसीलाल के कमरे में चली गयी थी और अँधेरे ही में उस की सूनी चारपाई के पास बैठकर आँसू बहाती रही थी। उसके जीवन की वाटिका में दो फूल आये थे एक को उसने गले का हार बनाना चाहा, पर वह आकाश-कुसुम-सा बनकर उस की पहुँच से दूर चला गया, दूसरा उसके चरण-स्पर्श के लिए आकुल रहा, पर उसे उसने अपनी अवहेलना के हाथों मसल दिया। आज उसी मसले-मिटे फूल के रिक्त स्थान को वह आँसुओं से सींच रही थी। उसके स्थान पर अब नया फूल आयेगा, इसकी आशा उसे नहीं थी, पर पश्चाताप का जो दाग़

उसके दिल पर लगा, उसे वह रोकर मिटा डालेगी, शायद यही उसने सोचा हो। जब सुबह ने अन्धकार में अपना आलोक भरना शुरू किया और संसार के दुख से बेपरवाह चिड़ियाँ चहचहा उठी थीं तो बंसीलाल के कमरे में जाकर रानी ने देखा था, चारपाई के पाये पर सिर रखे लता बैठी है, आँखें बन्द हैं, पर आँसू चुपचाप उसके गालों पर बह रहे हैं। तब उस एक निमिष में अमृतराय और लता के सम्बन्ध में जो एक सन्देह-सा उसके हृदय में कभी उठा था और कल्पना जिसकी नींव को पक्का किया करती थी, वह एकदम मिट गया और जैसे विवश-सी होकर रानी ने आगे बढ़कर लता को अपने गले से लगा लिया था और भरी हुई आँखों को पोंछकर कहा था, "मुझे देखो बहन, बंसीलाल मेरा कुछ न था!"

फिर सारा दिन वापसी की तैयारी में बीता था। इस दुख में उसने लता से यह तो न बताया था कि उसके पिता कितने बीमार हैं, पर उसने इतना अवश्य कहा था कि अपनी सेहत के खयाल से उसे अब एक पल भी इस निर्जन स्थान में न रहना चाहिए और लाहौर चलकर अपने स्वास्थ्य को सुधारना चाहिए। हाँ, डाक्टर अमृतराय को उस ने सब कुछ बता दिया था। वे स्वयं अब इस स्थान में एक भी पल न रहना चाहते थे। बंसीलाल की वह करुण दृष्टि, जिससे मरते समय उस ने उनकी ओर देखा था, मानो साकार होकर इस स्थान के कण-कण में बस गयी थी और लता भी अब इस स्थान को छोड़ देना चाहती थी। दिन चढ़ते-चढ़ते सब सामान समेटकर मोटर पर सवार हो शाम होते-होते वे पठानकोट आ गये थे और अब तीनों इंटर क्लास के डिब्बे में वापस लाहौर जा रहे थे।

लता के पाँवों के पास खिड़की में बैठी हुई रानी बाहर की ओर देख रही थी। नीलम-निर्मल आकाश में कुछ उनींदे तारे जागते रहने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे और ज्योत्स्ना की हल्की चादर कहीं से

आकर सोयी दुनिया पर छा गयी थी थी, तेज हवा चल रही थी और रानी के बालों की लटें उड़ी-सी जा रही थीं। सामने की सीट पर खिड़की के साथ चुपचाप डाक्टर साहब बैठे थे। सोयी हुई लता की ओर देखकर एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए उन्होंने कहा, "रानी सोओगी नहीं क्या ?"

रानी ने उत्तर नहीं दिया, शायद उनका स्वर बहुत धीमा था। डाक्टर साहब ने सुनी केवल पहियों की गड़गड़हट और हवा की साँय-साँय। गाड़ी चलती रही और तन्द्रिल ज्योत्स्ना के नशे से चूर दृश्य जैसे भागते रहे।

फिर मानो अपना सारा साहस बटोरकर डाक्टर साहब ने पुकारा—"रानी !"

और रानी ने खिड़की में से सिर हटाकर जैसे चौंकी हुई मृगी की तरह डाक्टर साहब की ओर देखा।

"सोओगी नहीं क्या ?"

रानी ने बेसुध सोयी हुई लता की ओर देखा और फिर वह अपनी आँखें उस के चेहरे से न हटा सकी।

डाक्टर साहब ने कहा, "मैं तुम्हारी जगह आ जाता हूँ और तुम इधर सीट पर आकर सो रहो।"

लेकिन रानी ने शायद सुना नहीं, लता के सूखे ज़र्द चेहरे की ओर पूर्ववत् देखते हुए उसने कहा, "बहन तो बहुत कमजोर हो गयी हैं, कहीं ये बीमार तो नहीं डाक्टर साहब......?"

डाक्टर साहब चुप रहे। यह प्रसंग उन्हें रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। वे चुप बैठे प्रतीक्षा करने लगे कि रानी विषय बदल दे, पर रानी ने दबी हुई साँस छोड़कर कहा, "जाते समय तो ऐसी हालत न थी इनकी !"

डाक्टर साहब ने जैसे विवश होकर कहा, "कमज़ोर न होतीं तो और क्या होता, एक दिन भी तो इन्हें चैन करने को नहीं मिला। पहले

बंसीलाल को लेकर तीर्थों में भटकती रहीं, जगह-जगह की खाक छानी, रक्त तो पहले ही कौन इतना अधिक था, फिर यात्रा की कठिनाइयों ने और भी सुखा दिया। तब सोचा कि कुछ समय के लिए पहाड़ पर रहें तो सेहत बने।। यहाँ आये तो बंसीलाल की सेहत गिर गयी, दिन-रात उसी की सेवा-शुश्रूषा में लगी रहीं। फिर मैं बीमार पड़ गया, और मुझे आराम आया तो बंसीलाल......"

रानी की आँखों में आँसू छलछला आये और उस का जी हुआ जैसे इस दुखिया से लिपटकर खूब जी भरकर रो ले। डाक्टर साहब के सामने अपनी बीमारी के दिन घूम गये और लता ने जिस निष्ठा, जिस प्रेम से उनकी सेवा की थी, वह सब उन्हें याद हो आया, किन्तु इसके साथ ही बंसीलाल की मृत्यु का दृश्य भी उनकी आँखों के सामने आया और उसकी वह करुण दृष्टि भी एक बार उनकी आँखों के सामने कौंद-सी गयी। तब जैसे भय और घृणा से अपनी दृष्टि लता के चेहरे से हटाकर डाक्टर साहब बाहर खिड़की में देखने लगे।

आँसू पोंछते हुए रानी ने कहा, "आप बीमार कैसे हो गये थे?"

डाक्टर साहब ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा—वह भी क्या दिन था, उन्माद और विस्मृति के परों पर उड़ते हुए वे बादलों में, वर्षा में तूफान में घूमते रहे थे। आज कहाँ है वह उन्माद, वह उल्लास, वह विस्मृति? कटु सत्य का एक पर्दा वहाँ छाया हुआ है, जो बार-बार उन्हें सतर्क रहने पर विवश कर रहा है और देर से जगी हुई अनुराग की उनकी भूख जैसे और भी तीव्र हो उठी है। क्या उनके प्रेम का पौधा सदैव इसी तरह ही फल-विहीन खड़ा रहेगा? कलियाँ उसमें आयीं, माना फूल भी आया, पर फल की सूरत उसने न देखी और तब आशा से उन्होंने रानी की ओर देखा। एक निमिष के लिए दोनों की आँखें चार हुईं और चाहे डिब्बे के धीमे प्रकाश में उन्होंने न देखा हो—कानों तक रानी का चेहरा सुर्ख हो आया।

क्षण भर बाद रानी ने पूछा, "आप ने बताया नहीं डाक्टर

आकर सोयी दुनिया पर छा गयी थी थी, तेज हवा चल रही थी और रानी के बालों की लटें उड़ी-सी जा रही थीं। सामने की सीट पर खिड़की के साथ चुपचाप डाक्टर साहब बैठे थे। सोयी हुई लता की ओर देखकर एक दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए उन्होंने कहा, "रानी सोओगी नहीं क्या ?"

रानी ने उत्तर नहीं दिया, शायद उनका स्वर बहुत धीमा था। डाक्टर साहब ने सुनी केवल पहियों की गड़गड़हट और हवा की साँय-साँय। गाड़ी चलती रही और तन्द्रिल ज्योत्स्ना के नशे से चूर दृश्य जैसे भागते रहे।

फिर मानो अपना सारा साहस बटोरकर डाक्टर साहब ने पुकारा—"रानी !"

और रानी ने खिड़की में से सिर हटाकर जैसे चौंकी हुई मृगी की तरह डाक्टर साहब की ओर देखा।

"सोओगी नहीं क्या ?"

रानी ने बेसुध सोयी हुई लता की ओर देखा और फिर वह अपनी आँखें उस के चेहरे से न हटा सकी।

डाक्टर साहब ने कहा, "मैं तुम्हारी जगह आ जाता हूँ और तुम इधर सीट पर आकर सो रहो।"

लेकिन रानी ने शायद सुना नहीं, लता के सूखे ज़र्द चेहरे की ओर पूर्ववत् देखते हुए उसने कहा, "बहन तो बहुत कमजोर हो गयी हैं, कहीं ये बीमार तो नहीं डाक्टर साहब......?"

डाक्टर साहब चुप रहे। यह प्रसंग उन्हें रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। वे चुप बैठे प्रतीक्षा करने लगे कि रानी विषय बदल दे, पर रानी ने दबी हुई साँस छोड़कर कहा, "जाते समय तो ऐसी हालत न थी इनकी !"

डाक्टर साहब ने जैसे विवश होकर कहा, "कमज़ोर न होतीं तो और क्या होता, एक दिन भी तो इन्हें चैन करने को नहीं मिला। पहले

बंसीलाल को लेकर तीर्थों में भटकती रहीं, जगह-जगह की ख़ाक छानी, रक्त तो पहले ही कौन इतना अधिक था, फिर यात्रा की कठिनाइयों ने और भी सुखा दिया। तब सोचा कि कुछ समय के लिए पहाड़ पर रहें तो सेहत बने।। यहाँ आये तो बंसीलाल की सेहत गिर गयी, दिन-रात उसी की सेवा-शुश्रूषा में लगी रहीं। फिर मैं बीमार पड़ गया, और मुझे आराम आया तो बंसीलाल......"

रानी की आँखों में आँसू छलछला आये और उस का जी हुआ जैसे इस दुखिया से लिपटकर खूब जी भरकर रो ले। डाक्टर साहब के सामने अपनी बीमारी के दिन घूम गये और लता ने जिस निष्ठा, जिस प्रेम से उनकी सेवा की थी, वह सब उन्हें याद हो आया, किन्तु इसके साथ ही बंसीलाल की मृत्यु का दृश्य भी उनकी आँखों के सामने आया और उसकी वह करुण दृष्टि भी एक बार उनकी आँखों के सामने कौंद-सी गयी। तब जैसे भय और घृणा से अपनी दृष्टि लता के चेहरे से हटाकर डाक्टर साहब बाहर खिड़की में देखने लगे।

आँसू पोंछते हुए रानी ने कहा, "आप बीमार कैसे हो गये थे?"

डाक्टर साहब ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा—वह भी क्या दिन था, उन्माद और विस्मृति के परों पर उड़ते हुए वे बादलों में, वर्षा में तूफान में घूमते रहे थे। आज कहाँ है वह उन्माद, वह उल्लास, वह विस्मृति? कटु सत्य का एक पर्दा वहाँ छाया हुआ है, जो बार-बार उन्हें सतर्क रहने पर विवश कर रहा है और देर से जगी हुई अनुराग की उनकी भूख जैसे और भी तीव्र हो उठी है। क्या उनके प्रेम का पौधा सदैव इसी तरह ही फल-विहीन खड़ा रहेगा? कलियाँ उसमें आयीं, माना फूल भी आया, पर फल की सूरत उसने न देखी और तब आशा से उन्होंने रानी की ओर देखा। एक निमिष के लिए दोनों की आँखें चार हुईं और चाहे डिब्बे के धीमे प्रकाश में उन्होंने न देखा हो, पर कानों तक रानी का चेहरा सुर्ख हो आया।

क्षण भर बाद रानी ने पूछा, "आप ने बताया नहीं डाक्टर साहब,

आपको क्या कष्ट हो गया था !"

डाक्टर साहब कुछ कहना चाहते थे कि लता जाग उठी, ऐसे ही जैसे वह कभी सोयी ही न थी और रानी का हाथ पकड़कर उसे लिटाते हुए उसने कहा, "सो जाओ रानी, सिर दुखने लगेगा।"

और डाक्टर साहब के मुँह से उनकी बीमारी का हाल सुनने और कल्पना-ही-कल्पना में उनकी सेवा का सपना देखने की लालसा दिल ही में लिये हुए रानी लेट गयी और उसने आँखें भी बन्द कर लीं। तब डाक्टर साहब और लता ने एक दूसरे की ओर देखा—केवल अनुराग-हीन आँखों से। क्या कहकर बात शुरू की जाय, दोनों में से कोई न जान सका। बातों का सोता ही जैसे सूख गया था।

चुपचाप दोनों खिड़कियों से बाहर की ओर देखने लगे।

—०—

३६

आज चार दिन बाद मलिक साहब को होश आया। आँखें खोलते हुए उन्होंने अत्यन्त क्षीण आवाज में पुकारा, "रानी बेटी!"

रानी पांयते पर बैठी तलवों को सहला रही थी, उनके पैरों पर सिर रखकर उसने उन्हें प्रणाम किया और मधुर स्वर में बोली, "मैं यह रही पिता जी, कहिए, अब तबीयत कैसी है?"

मलिक साहब ने उस बात का कोई उत्तर नहीं दिया, बोले "कहाँ चली गयी थी बेटी, तू मुझे इस हालत में छोड़कर!"

रानी कुछ क्षण के लिए चुप रही, लता सिरहाने बैठी सिर में तेल लगा रही थी, अचानक उसका हाथ थम गया और दिल धड़कने लगा।

रानी ने कहा, "ज़रा पीछे को तो देखिए, कौन बैठी है?"

उत्तर में लता केवल एक बार उन की ओर देखकर विषाद से हँस दी थी।

मलिक साहब के भावों को समझकर रानी ने आर्द्र स्वर से कहा—"पिता जी, लता बहन ने न जाने कितने कष्ट झेले हैं? किन-किन मुसीबतों में घुला-घुलाकर अपनी देह को काँटा सा बना लिया है!"

और अचानक विह्वल से होकर मलिक साहब ने अपनी दृष्टि पीछे की ओर घुमायी और दूसरे क्षण रोती हुई लता उनकी गोद में गिर गयी।

उसे यह भी नहीं मालूम हुआ कि उसके पिता बेहोश हो गये हैं!

—०—

३७

जिस तरह समुद्र के गर्भ में चलने वाली तीक्ष्ण धारा उसके हृदय में हलचल मचाये रहती है, पर सतह पर उस का कोई आभास नहीं मिलता, इसी तरह डाक्टर अमृतराय के सौम्य तथा गम्भीर चेहरे को देखकर यह जानना कठिन था कि उनके हृदय में कौन सी हलचल मची हुई है।

अस्पताल में उन्होंने पूर्ववत् काम करना शुरू कर दिया था, पर क्या वे वास्तव में पूर्ववत् काम कर रहे थे? क्या उनका मस्तिष्क सब ओर से हटकर रोगी पर, उसकी बीमारी की समस्या पर एकाग्र हो जाता था? क्या वे रोगियों से मीठे स्वर में बातचीत कर सकते थे? क्या वे पहले की भाँति अस्पताल के नियमों का सख्ती से पालन करते थे? सब कुछ अब बदल सा गया था और अस्पताल का साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी इस परिवर्तन को महसूस करता था। वे आते थे, क्योंकि नौकरी उन्हें खींचकर ले आती थी, पर सब काम प्रायः

मेडिकल कालेज के छात्र ही करते थे, वे तो अन्यमनस्क से उनको रोगियों का निरीक्षण करते, उन के घावों की चीर-फाड़ करते देखते रहते। पहले वे काम करते थे और लड़के उन्हें देखते थे, अब लड़के काम करते थे और वे देखते थे, जैसे वे सिखा न रहे हों, सीख रहे हों।

उठते-बैठते, चलते-फिरते उन के मस्तिष्क में एक हलचल-सी मची रहती थी, उनका उद्विग्न मन उन्हें इधर से उधर भटकाया करता था। बंसीलाल की मृत्यु से लता की अस्थिरता के सम्बन्ध में उनका सोया हुआ सन्देह फिर जाग उठा था और आधुनिक वातावरण में पली युवती में वफ़ा नाम की चीज़ पाना उन्हें दुष्कर मालूम होता था। रानी सुन्दर और गम्भीर थी, उन के भग्न-हृदय को सान्त्वना देने के लिए, उनके संदेह को अपने प्रेम, अपनी निष्ठा और अपनी तत्परता से दूर भगा देने को तैयार थी और आघात की पहली चोट से आकुल से होकर डाक्टर साहब उसकी ओर झुके भी थे, पर धीरे-धीरे उनकी पुरानी संदेहशीलता मानो अँगड़ाई-सी लेकर जाग उठी थी और वे सोचने लगे थे कि रानी क्या लता नहीं हो सकती, फ़्लोरा नहीं हो सकती, विमला नहीं हो सकती और तब उनका मन उद्विग्न हो उठता था और जी भर-सा आता था।

यह सब था, लता से उन्हें नफरत थी, उसके और उनके मध्य एक दीवार-सी भी खड़ी हो गयी थी, तब भी जाने कौन सी शक्ति थी जो दिन में एक बार उन्हें मलिक साहब के घर ले जाती थी; जाने क्यों उनका हृदय दिन-प्रति-दिन क्षीण होती हुई उस लता को देखकर घुला सा जाता था ? और एक दिन जब निरन्तर अपने पिता की सेवा करने के बाद, उन्हें मृत्यु के मुँह से बचा लेने के बाद, वह स्वयं मरणासन्न हो गयी तो वे आतुर-से हो उठे थे। कहीं भी उनका जी लगना कठिन हो गया। घर रहते तो शीघ्र अस्पताल जाने को जी चाहता, अस्पताल जाते तो शीघ्र ही वहाँ से जी ऊब जाता और वे घर आने के लिए व्याकुल हो जाते। अकेले होते तो मित्रों की मंडली में

जाने को जी चाहता और मित्र-मंडली में जाते तो एकान्त के लिए आतुर हो जाते। वे जानते थे धीरे-धीरे लता किस ओर जा रही है। निरन्तर सेवा, निरन्तर शुश्रूषा ने उसे एकदम कंकाल बना दिया था और अब उसके अन्त की कल्पना ही से उनकी आत्मा काँप जाती थी।

सोचते थे कि वे कहीं अन्याय तो नहीं कर रहे हैं, कहीं लता का उतनी रूपवती न रहना ही तो उनकी इस विरक्ति का कारण नहीं? अतीत पर जब वे नजर डालते तो उन्हें अपना कृत्य उचित दिखायी न देता। क्या बंसीलाल की हत्या में उनका दोष कुछ भी न था? क्या यदि वे न होते तो लता इस तरह विष दे देती और क्या पहले-पहल उन्हीं ने यह न कहा था कि बंसीलाल का मरना अच्छा है, तो क्या फिर उस हत्या का उत्तरदायित्व उसी पर है? इसके साथ ही, उस के कृत्य के कारण क्या वे उससे जी भर उपेक्षा कर पाये हैं? किन्तु फिर भी जाने क्यों, जहाँ तक लता का सम्बन्ध है, वे अपने आपको उस स्थान से भी दूर पाते थे, जहाँ से वे उसकी ओर बढ़े थे। यही और ऐसी बीसियों बे-सिर-पैर की बातें सोचते-सोचते डाक्टर साहब पागल से हो उठते। जब भी कभी वे संयत होकर सब बातों पर विचार करते, तो एक ही बात बार-बार उनके मन को दुख दिया करती—क्यों अब लता और उन में पहला-सा प्यार नहीं? वे अपने हृदय को टटोलते और उसे शून्य पाते, प्रेम वहाँ दिखायी न देता, केवल उस दुखी, कंकाल, आशाओं की कब्र बनी हुई तरुणी के लिए उनके हृदय में दया होती और वे चाहते कि अपना सब कुछ उस कंकाल, मृत-प्राय नारी के लिए अर्पण कर दें। इसीलिए वे नित्य जाते थे, देर तक उसके सिरहाने खड़े रहते थे, लेकिन पूछ इतना ही सकते कि अब जी कैसा है? और शून्य-दृष्टि से देखकर लता धीरे से कह देती, "अच्छी हूँ!"

इस उदास वातावरण में रानी दबी-दबी, घुटी-घुटी घूमा करती। मलिक साहब स्वस्थ हो गये थे, पर उनकी सेवा में उसने अंतर न

आने दिया था। और अब लता भी बीमार पड़ गयी थी और रानी उसकी भी सेवा में जुट गयी थी। डाक्टर साहब जानते थे कि बीमारी क्या है, और चाहते थे कि रानी लता से दूर रहे, पर यह कहने का वे साहस आज तक न कर सके थे। हाँ, लता का कमरा उन्होंने अलग कर दिया था और मलिक साहब को एक नर्स का प्रबन्ध करने के लिए भी कह दिया था।

सुबह आकाश पर कुछ हल्के बादल छाये हुए थे, हवा भी कुछ ठंडी चल रही थी। डाक्टर साहब अपने मकान की छत पर बिस्तर में पड़े-पड़े यही सोच रहे थे। रात ठीक तरह से सो भी लिये थे, पर जी अब भी उठने का नाम न लेता था। सिर कुछ भारी था, शरीर कुछ टूट-सा रहा था। उदासी न जाने किधर से आकर मन पर छायी जाती थी। मौसम के बदलने के कारण यह सब था, ऐसी बात नहीं। कुछ दिनों से ऐसे ही रोज जी डूबा-डूबा रहता था। प्रति दिन बिस्तर पर अन्यमनस्क से पड़े वे सोचा करते थेऔर संसार एक विचित्र गोरखधंधे का रूप धारण कर उन के सामने आ जाता था। वे चाहते थे कि इस गोरखधंधे से निकल जायँ। कहीं दूर, इस आबादी से बहुत दूर, जाकर अपनी कुटिया अलग बना लें। प्रकृति की गोद में ठंडे, हरे वृक्षों को देखते हुए, निर्मल झरने के किनारे उसका कलकल नाद सुनते हुए, दोपहर को हरी-हरी घास पर घनी छाया के नीचे लेटे हुए, अपना समय बिता दें, पर ज्यों ही नौकर आकर बताता कि आठ बज गये हैं तो वे शीघ्र उठ पड़ते 'और अस्पताल जाने की तैयारियों में लग जाते।

आज उनका जी और दिनों की अपेक्षा कुछ अधिक खराब था। अस्पताल जाने को बिलकुल न हो रहा था और वे चाहते थे कि नौकर के हाथ अपनी अनुपस्थिति की सूचना भेज दें। लता की तबीयत कल बहुत खराब थी। स्नेह सूख चुका था, शुष्क बत्ती जल रही थी। डाक्टर साहब जानते थे कि उसके बुझने में भी अब बहुत देर नहीं।

तभी पिछली स्मृतियाँ मूर्तिमान होकर उनके सामने आ जाती थीं और वे सिहर उठते थे। इच्छा होती थी लता के सिरहाने बैठे रहें। जाते भी थे, पर शायद बीमारी ने लता को बदल दिया था, एक शब्द भी वह न कहती। वे न जानते थे, उस के हृदय में अभी उनके लिए कोई स्थान है या नहीं। उसके सम्बन्ध में क्या, स्वयं अपने सम्बन्ध में वे कुछ न जानते थे। यह सब सोचते-सोचते उनका गला जैसे भर आने को, उनका जी जैसे रो पड़ने को हो जाता। धर्मशाला से आने के बाद लता ने उनसे भूलकर भी दो बातें न कीं थी, उन्होंने चाहा भी तो लता ने अवसर न दिया और अब तो उस में बहुत बातें करने की शक्ति भी न रही थी।

सीढ़ियों का दरवाज़ा जोर से खुला, डाक्टर साहब के विचारों का क्रम टूट गया और वे उठ बैठे। नौकर के साथ रामनारायण बढ़ा चला आ रहा था—बूढ़ी कमर अब उसकी और भी अधिक झुक गयी थी और आकृति पर आतुरता टपकी पड़ती थी। चुपचाप उसने एक पुर्जा डाक्टर साहब के हाथ में दे दिया। रानी के हाथ का लिखा हुआ था—

"बहन की हालत ठीक नहीं है। अन्त समय वे आपसे दो बातें करना चाहती हैं। कृपया शीघ्र आइए।"

डाक्टर साहब का दिल उछलने-सा लगा, पर चेहरा फ़क-सा हो गया। उन्होंने नौकर को एक पुर्जा लिख कर अस्पताल जाने के लिए कहा और स्वयं खुले गले ही पतलून तथा चप्पल पहने रामनारायण के साथ निकल गये।

—o—

३८

लता ने उखड़ी-उखड़ी आवाज़ में कहा, "पिता जी आपने मुझे जितना सुख दिया, उतना कोई माँ भी क्या दे सकेगी, खेद तो यह है कि मैं आपके दुख का कारण बनी......"

मलिक साहब ने अपना काँपता हुआ हाथ उसके रूखे बालों पर फेरा, बोले, "अब तुम सो रहो ! मेरी सेवा से तुमने सब कमी पूरी कर दी, बेटी ! तुम न आतीं तो मैं अब तक जीवित न होता। उस बीमारी से मुझे तुम्हारे सिवा कौन बचा सकता था। पर तुम थक जाओगी, सो रहो।"

लता को जोर की खाँसी आयी, उसने मुँह पर रूमाल रख लिया और फिर कुछ साँस लेकर बोली, "अब तो चिरनिद्रा में ही सोना है, पिता जी......."

मलिक साहब ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया, "सो रहो बेटी, अभी कुछ दिन में तुम ठीक हो जाओगी।"

उन का हाथ हटाते हुए लता ने कहा, "मुझे दो बातें कह लेने दीजिए पिताजी, कौन जाने किस घड़ी साँसों की यह जंजीर टूट जाय। मुझे मरने का दुख नहीं, दुख तो इस बात का है कि आप अकेले रह जायेंगे इस वृद्धावस्था में।

मलिक साहब की आँखों में आँसू आ गये, अपने स्वर में विनीत प्रार्थना लाते हुए लता ने कहा, "मेरी एक विनय है, पिता जी मेरे मरने के बाद जरा भी दुखी न होना, रानी को अपनी बेटी बनाना, इस अनाथ, अबोध लड़की का संसार में कोई नहीं—माँ नहीं, बाप नहीं और अब तो भाई भी नहीं। बंसीलाल का वह ऋण मुझ पर रह गया उसे पूरा कर देना।"

मलिक साहब रूमाल आँखों पर रखे चुप बैठे रहे, लता ने फिर स्वर में कहा, "जैसे मेरा विवाह करते पिता जी, वैसे ही इसका

विवाह करना। डाक्टर अमृतराय से मैं प्रतिज्ञा ले जाऊँगी और फिर दोनों को घर ही में रखना, तभी मुझे सुख मिलेगा।"

मलिक साहब फिर भी चुप बैठे रहे। उनका दिल आँखों के रास्ते बह निकलने को व्यग्र हो उठा। तभी उन्होंने रूमाल को और जोर से अपनी आँखों से लगा लिया।

लता ने कहा, "पिताजी, प्रतिज्ञा कीजिए, तभी मैं चैन से मर सकूँगी—प्रतिज्ञा कीजिए आप ऐसा ही करेंगे...."

और इसके बाद खाँसी से उसका अंग-अंग सिहर उठा। मलिक साहब ने रूमाल से आँखें पोंछीं और प्यार से उसके पिचके गाल को थपथपाते हुए उन्होंने कहा, "जो कहोगी बेटी, वही होगा। तुम अब आराम करो, सोने की कोशिश करो!"

खाँसने के बाद निर्जीव-सी होकर लता पड़ रही। तभी परेशान-से डाक्टर अमृतराय भीतर दाखिल हुए। लता ने आँखों से ही उन्हें प्रणाम कर, कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। मलिक साहब उठे और सिर झुकाये हुए भारी कदमों से बाहर चले गये। तभी रानी आयी और दवा की शीशी में से कुछ बूँद पानी में डालकर उसने लता को दवा पिलायी और फिर एक बार डाक्टर साहब की ओर नीची नज़र से देखकर जैसे दीर्घ-निःश्वास को निकलने से बरबस दबाकर, धीरे-धीरे चली गयी। डाक्टर साहब ने उसकी दृष्टि को महसूस किया और एक बार अस्थिर से हो वे स्थिर होकर कुर्सी पर बैठ गये।

बहुत क्षीण स्वर में लता बोली, "दो-एक बातें आप से करना चाहती हूँ, डाक्टर साहब। अभी कुछ शक्ति है, दो घड़ी तक जाने रहे, न रहे। सुबह से दो बार बेहोश हो चुकी हूँ और कौन जाने अब की बेहोश हूँगी तो उठूँगी भी या नहीं।"

"नहीं, नहीं ऐसा......"

अपना पतला हड्डी-सा हाथ उठकर लता ने उन्हें रोक दिया—"मुझे कहने दो डाक्टर साहब, इतने दिनों से आपसे कुछ कहना

चाहती थी, पर साहस नहीं कर पायी, शायद बंसीलाल को अपने इन्हीं हाथों से विष का घूँट पिलाते देखकर आप ने मुझे हत्यारिन समझा हो, शायद बुरी समझा हो, पर बुरी-भली जैसी भी हूँ, दो घड़ी बाद नहीं रहूँगी।"

और डाक्टर साहब ने देखा कि यह कहते-कहते, दो बड़े-बड़े आँसू लता की गढ़ों में धँसी हुई आँखों के छोरों पर छलक आये हैं। कुछ कहने के लिए वे व्यग्र हो उठे। भर्राये स्वर में बोले, "लता......"

लेकिन लता ने रोक दिया, "मुझे कह लेने दो डाक्टर साहब! वह बोली, "मुझे इस अन्त का खेद नहीं। बहुत दिनों से इस मंज़िल की ओर चली आ रही थी, धीरे-धीरे सरकती आ रही थी, फिर मंज़िल के समीप पहुँचकर दुख कैसा? हाँ अफसोस है उन बातों का जो मैं कर न सकी, उन में आप मेरी सहायता करना, तभी मैं शांति से मर सकूँगी।"

डाक्टर साहब चुप दीवार की ओर देखते रहे। उनकी आँखें भर आयीं।

लता ने फिर क्षीण स्वर में पूछा, "कहो डाक्टर साहब!"

डाक्टर साहब ने आँखें पोंछकर कहा, "मैं क्यों न करूँगा लता, तुमने कोई बात कही हो और मैंने न की हो, कभी ऐसा हुआ है? पर लता पहले मुझे तो शांति का मार्ग बता जाओ। दिन रात मेरे हृदय में एक ज्वाला धधका करती है, किसी तरह मुझे चैन नहीं पड़ता।"

साँस लेकर लता ने कहा, "सारा जीवन ही धधकती हुई ज्वाला है, डाक्टर साहब। पर जहाँ आग है, वहाँ पानी भी है।"

"पानी!" डाक्टर साहब बोले "पानी तो कहीं नहीं लता, मैं तो अपने आपको सदैव जलते हुए पाता आया हूँ और अब तो यह जलन और भी तीव्र, और भी असह हो चली है। मैंने संदेह के क्षण में सोचा था, बंसीलाल को ज़हर पिलाकर तुमने पाप किया और मुझे तुमसे दूर रहना चाहिए, पर अब सोचता हूँ तो अपने आप को भी उतना ही दोषी पाता हूँ और दूर भी मैं तुम से कहाँ भाग पाया हूँ। मैंने तुम से

घृणा करने की कोशिश की, घृणा न कर सका, उपेक्षा करने का प्रयास किया, उपेक्षा न कर सका !"

लता विषाद से हँसी, "बंसीलाल को मारकर पाप किया या पुण्य, यह मैं नहीं जानती, डाक्टर साहब। पर यह सब अच्छा ही हुआ। उस के और मेरे मध्य जो पर्दा-सा छा गया था, मौत ने उसे हटा दिया और उस पर्दे के हट जाने पर वह और मैं फिर आमने-सामने हो गये। मिल हम नहीं पाये, क्योंकि उसके और मेरे मध्य अभी इस संसार का पर्दा तना हुआ है। वह हट गया तो मैं और वह एक हो जायेंगे! रही मेरी और आपकी बात, उसे भूल जायँ डाक्टर साहब, जीवन की एक भूल की भाँति भूल जायँ।"

"भूल कैसे जाऊँ, लता ?" डाक्टर साहब ने उद्विग्नता से कहा। "मैंने भूलने का प्रयास किया, पर भूल न सका। धर्मशाला के वे दिन, वे ही मेरे जीवन की निधि हैं, उन्हें अपनी याद में छिपाकर मैं लाहौर से चला जाऊँगा और संसार के इस मरुस्थल में भटकते हुए भी वे ही मेरे मन का ताप हरते रहेंगे।"

"नहीं, नहीं," लता ने कहा, "आप क्यों भटकेंगे, भावुकता छोड़ दीजिए, स्थिर होकर बैठ जाइए, किसी अनुरागमयी बेल की छाया में। भटकने के लिए आप नहीं बने, बंसीलाल था भटकने के लिए, मैं थी भटकने के लिए ! संसार-सागर को पार करने के लिए भावुकता के चप्पू काम नहीं आते। मँझधार में वे भले ही बहा ले जायँ। किन्तु पार ले जायँगे, ऐसी सम्भावना नहीं। हम ने भावुकता के चप्पू का सहारा लिया, अंजाम आप के सामने है, तब आप ऐसा क्यों करें !"

डाक्टरस ाहब चुप सुनते रहे।

लता ने खाँसकर और भी क्षीण स्वर में कहा, "देखिए डाक्टर साहब, घाव को खुला रखने से वह भर न सकेगा, मरहम तो वहाँ लगानी ही होगी।"

"मैं मरहम कहाँ से पाऊँगा लता !" डाक्टर साहब अवरुद्ध कंठ

पूर्ति का मार्ग सब से अच्छा मार्ग है। और अधिक न कहकर मैं तुम्हारा हाथ डाक्टर साहब के हाथ में देती हूँ। इनसे तुम नफरत नहीं करती, यह मैं जानती हूँ। यह तुमसे प्रेम करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। सन्देह को छोड़कर जीवन की भित्ति को प्रेम और विश्वास की नींव पर रखना और सुख से रहना!"

रानी का मुख लज्जा से अरुण हो गया, उसकी आर्द्र आँखें धरती में गड़ गयीं और एक साँस में इतना कहने पर खाँसी के दौरे से प्रायः निर्जीव-सी होकर लता चित लेट गयी।

—०—

गिरती दीवारें

[श्री शिवदाव सिंह चौहान और श्री शमशेर बहादुर सिंह की आलोचनाओं तथा लेखक की भूमिका के साथ—नवीन संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण]

श्री उपेन्द्र अश्क के बृहद उपन्यास **गिरती दीवारें** की लोकप्रियता दिन-प्रति-दिन बढ़ रही है। आज इतने वर्ष के बाद भी आलोचक इसके गुण दोषों के सम्बन्ध में वाद-विवाद कर रहे हैं और यह बात, जैसा कि श्री अमृतराय सम्पादक हंस ने लिखा है, इस बात का प्रमाण है कि इधर जितने उपन्यास निकले हैं, गिरती दीवारें उनमें एक महत्व-पूर्ण कृति है।

गिरती दीवारें—की शैली और तेकनिक इतनी सुगठित, सुष्ठ परिष्कृत और कलापूर्ण है कि श्री शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के गोदान की यथार्थवादी परम्परा में अश्क का यह उपन्यास एक बड़ा और साहसपूर्ण कदम है। सम्भवतः इस कथन में अत्युक्ति नहीं कि **गिरती दीवारें** हिंदी की यथार्थवादी परम्परा के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में गणना करने योग्य है।

गिरती दीवारें—में हम अपने ही जीवन की झलक पाते हैं। लाख कोशिश करने पर भी उसकी सत्यता में अविश्वास नहीं कर सकते। उपन्यास में वर्णित घटनाएँ छाया की तरह हमारा पीछा करती हैं और उनसे पिंड छुड़ाना कठिन हो जाता है।

गिरती दीवारें—शरबत का गिलास नहीं कि उसे एक ही घूँट में कंठ के नीचे उतार लें, कॉफ़ी (Coffee) के तल्ख़ प्याले की तरह आपको इसे घूँट-घूँट पीना होगा, लेकिन कॉफ़ी की तल्ख़ शीरीनी (कटु मिठास) का जो शख्स आदी हो जाता है, वह फिर शरबत की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता।

बढ़िया कागज पहले संस्करण से लगभग डेढ़ सौ पृष्ठ ज्यादा, सुन्दर मुख पृष्ठ, बढ़िया जिल्द मूल्य १०)

गर्म राख

जैसा कि हिन्दी के एक प्रसिद्ध साहित्यिक ने एक जगह लिखा है—"नारी के प्रति अश्क के मन में असीम श्रद्धा और अगाध वेदना है। 'सितारों के खेल', 'गिरती दीवारें', 'कैद और उड़ान', आदि मार्ग', 'भँवर' 'बरगद की बेटी, और 'दीप जलेगा'—अपने उपन्यासों नाटकों और कविता-संग्रहों में अश्क ने नारी को भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। उसके बन्धनों के प्रति उनके मन में क्रोध है, दुःखों के प्रति समवेदना, सीमाओं के प्रति सहानुभूति, आदर्शों के प्रति श्रद्धा और उसकी महत्वाकाँक्षाओं के प्रति प्रशंसा है अश्क नारी को न दासी देखना चाहते हैं, न खिलौना और न देवी! वे उसे पुरुष के साथ पग-पग पर बढ़ती हुई संगिनी देखने के अभिलाषी हैं!

परन्तु संगिनी के पद को पुनः पाने के लिए संक्रान्ति काल की नारी किन उलझनों में से होकर निकलती है—कुछ अपनी परिसीमाओं और कुछ इस युग के पुरुष की दुर्बलताओं के कारण—इसका बड़ा ही सुन्दर चित्रण अश्क ने अपने इस नये उपन्यास में किया है।

कुमायूँ के प्रसिद्ध चित्रकार श्री उप्रेती द्वारा चित्रित मुख-पृष्ठ, एंटिक कागज, मूल्य ७)

———

बड़ी-बड़ी आंखें

(अश्क जी का नवीन उपन्यास)

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का नवीनतम उपन्यास है। अश्क का यह चौथा उपन्यास है और यद्यपि उनके अन्य उपन्यासों के सामने यह कलेवर में लघु है, पर विचारों की प्रौढ़ता और कला की परिपक्वता में उनसे कहीं आगे हैं।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने इसे पढ़कर 'गीति उपन्यास' का नाम दिया है।

पुस्तक रूप में प्रकाशित होने से पूर्व यह धारावाहिक रूप से दिल्ली के सप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित हुआ था। उपन्यास इतना लोकप्रिय हुआ कि लेखक के पास पाठकों की चिट्ठियों का ढेर लग गया। एक पाठक के उद्‌गार देखिए:—

"...दिल चाह रहा है लिखूँ—बस इसी लिए लिख रहा हूँ। सचमुच इस उपन्यास से मुझ पर उतना ही प्रभाव हुआ जितना कि आई० एस० तुर्गनव के 'नेस्ट आफ दि जैंट्री' को पढ़ने से हुआ। आप की भोली-भाली फूल जैसी सुकुमार निश्छल वाणी तुर्गनेव की लीज़ा जैसी है और खलील जिब्रान की 'सलमा' से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। कालिदास ने नारी की तुलना फूल से की है और मुझे बिलकुल लग रहा है, आपने भी उसी फूल के विमल सौंदर्य की सोलह वर्षीय साध का चित्रण किया है। आपकी कला सचमुच मिट्टी में प्राण भरती है।"

सह-रंगा मुख-पृष्ठ, एंटिक कागज, मूल्य ३ रु० १२ आ०

ये आदमी ये चूहे

(अनुवादक—उपेन्द्रनाथ अश्क)

अमरीका के प्रख्यात उपन्यासकार स्टीन बैक का चौंका देने वाला उपन्यास जिसकी मानवीयता, कथानक, चरित्र-चित्रण और अमरीका के धरती-विहीन किसान मजदूरों के जीवन की कठिनाइयों और साधों का वर्णन अपूर्व है।

स्टीन बैक का यह उपन्यास न केवल नाटक के रूप में बार-बार खेला गया, वरन् इसका फिल्म भी बना और अमरीका के सफलतम फिल्मों में समझा गया।

ये आदमी ये चूहे में कुछ ऐसी चीज है जो बार-बार पाठक के ध्यान को खींचती है; क्रोध से, असंतोष से फेंक देने पर भी जो फिर बुलाती रहती है और पाठक को फिर इसे पढ़ने पर विवश कर देती है। स्तालन पुरस्कार विजेता, रूस के प्रसिद्ध उपन्यासकार इलिया एहरनबुर्ग ने उपन्यास के इस गुण को इसकी 'गहराई' का गुण बताया है और उपन्यासकार के नाम एक पत्र में इसकी प्रशंसा की है।

अमरीकी देहाती भाषा की क्लिष्टता और दुर्गमता को दूर करके अश्क जी ने बड़ी सरल सुगम प्रवहमान हिन्दी में इसे पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

श्री शमशेर बहादुर सिंह का आवरण-चित्र सोने में सुगंध का काम देता है, मूल्य ३)
